गीना देवी शोध संस्थान
द्वारा पटियाला, श्रीगंगानगर व नेपाल से प्रसारित
साहित्य, शिक्षा, संस्कृति एवं शोध का अंतर्राष्ट्रीय मासिक

ISSN : 2321-8037
July-Aug. 2026
Volume 14, Issue 7-8

Impact Factor :
7.834

Gina Shodh SANGAM

AN INTERNATIONAL MULTI DISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED RESEARCH JOURNAL

Editor :
Dr. Rekha Soni
Chief-Editor :
Dr. Naresh Sihag Adv.



संस्थापक सम्पादिका :
स्मृति शेष
डॉ. विश्वकीर्ति

संगम SANGAM

बहुभाषिक बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक

AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED PRINT RESEARCH JOURNAL

www.ginajournal.com



संस्थापक संरक्षक :
स्मृति शेष
श्री हरविन्द्र कमल चौधरी

वर्ष : 14 अंक : 7–8, भाग–3 जुलाई–अगस्त : 2026 आईएसएसएन : 2321–8037

सम्पादक :
डॉ. रेखा सोनी
टांटिया वि.वि., श्रीगंगानगर, राज.

प्रधन सम्पादक :
डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट
सचिव, गीना देवी शोध संस्थान,
भिवानी (हरियाणा)

अंतर्राष्ट्रीय सम्पादक मण्डल :
डॉ. लक्ष्मी जोशी
त्रिभुवन वि.वि. काठमाण्डू।
शिओंग छन श्यू, चीन।
डॉ. ऋतु शर्मा ननंन पाँडे
साहित्यकार, शिक्षाविद, नीदरलैंड।
डॉ. सुनीता शर्मा
हिन्दी साहित्यकार, कवयित्री, संपादक
एवं शिक्षाविद् मेलबोर्न, ऑस्ट्रेलिया
डॉ. अनुरुद्ध बायन
मध्य कामरूप कॉलेज, सुभा
जिला बारपेटा, असम।
डॉ. सृष्टि चौधरी
लेक्चरर, इलेक्ट्रानिक्स एंड
कम्युनिकेशन, सरकारी पॉलिटेक्निक
कॉलेज फॉर गर्ल्स, पटियाला, पंजाब।
श्री श्रेष्ठ चौधरी,
सीनियर मैनेजर,
स्टेट बैंक ऑपफ इंडिया, साहिबजादा
अजित सिंह नगर, मोहाली, पंजाब।

कानूनी सलाहकार :
डॉ. रामफल दलाल एडवोकेट,
श्रीमती रूपिन्द्र कौर, एडवोकेट

सलाहाकार समिति (Advisory Committee)

डॉ. सुलक्षणा अहलावत
अंग्रेजी प्रवक्ता, शिक्षा विभाग
नूंह (हरियाणा)

डॉ. अरूणा अंचल
बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय,
रोहतक (हरियाणा)

डॉ. सुशीला
चौधरी बंसीलाल विश्वविद्यालय, भिवानी।

डॉ. अल्पना शर्मा
आईएएसई विश्वविद्यालय सरदारशहर

डॉ. विजय महादेव गाडे
बाबा साहेब चितले महाविद्यालय
भिलवडी (महाराष्ट्र)

डॉ. लता एस. पाटिल
राजीव गांधी बीएड कॉलेज
धारवाड़ (कर्नाटक)

डॉ. रीना कुमारी
दशमेश गर्ल्स कॉलेज,
अल्ला बक्श, मुकेरिया, पंजाब।

श्री राकेश शंकर भारती
साहित्यकार, अनुवादक, यूक्रेन।

डॉ. हेमराज न्यौपाने
काठमाण्डु, नेपाल।

डॉ. ममता तनेजा
अबोहर, पंजाब।

डॉ. प्रियंका खंडेलवाल
बराण, राजस्थान।

डॉ. संदीप
ओम विश्वविद्यालय, हिसार।

डॉ. मधुबाला
राजकीय महाविद्यालय, लाखनमाजरा।

डॉ. पीयूष कुमार द्विवेदी
जगद्गुरू रामभद्राचार्य दिव्यांग
विश्वविद्यालय, चित्रकूट, उत्तरप्रदेश

डॉ. हवासिंह ढाका
राजकीय महाविद्यालय, हिन्दुमलकोट,
श्रीगंगानगर (राजस्थान)

डॉ. मानसिंह दहिया
संस्कृत प्रवक्ता, शिक्षा विभाग हरियाणा

डॉ. राजेश शर्मा
शिक्षा संकाय, टांटिया विश्वविद्यालय,
श्रीगंगानगर (राजस्थान)

डॉ. मोहिनी दहिया
माती जीतोजी कन्या महाविद्यालय,
सूरतगढ़ (राजस्थान)

डॉ. मुद्दस्सिर अहमद भट्ट
हिन्दी विभाग,
कश्मीर विश्वविद्यालय श्रीनगर, कश्मीर

डॉ. सीहेच वी. महालक्ष्मी
सीहेच एसडीएसटी थेरेसा महिला
महाविद्यालय, एलुरू, आंध्र प्रदेश

डॉ. मोरवे रोशन के.
यूनाईटिड किंगडम।

डॉ. अनुपमा, पूर्व प्रोफेसर,
अंकारा विश्वविधालय, अंकारा, टर्की

डॉ. आर.के विश्वास
अध्यक्ष होम्योपैथिक, लखनऊ।

प्रकाशक, स्वामी एवं मुद्रक **डॉ. नरेश सिहाग**, एडवोकेट ने **मनभावन प्रिन्टर्ज**, पुराना बस स्टैण्ड रोड़, नया बाजार, भिवानी से छपवाकर 202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड, भिवानी–127021 (हरियाणा) से जारी किया।

संगम SANGAM

बहुभाषिक बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक

AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED PRINT RESEARCH JOURNAL

(Journal of Literature, Arts, Science, Commerece, Culture, Humanities and Social Sciences)

सचिव :

डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट

202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड,

भिवानी-127021 (हरियाणा)

Email : grngobwn@gmail.com

मो. 09466532152

संगम मासिक पत्रिका में प्रकाशित रचनाओं/लेखों की मौलिकता का दायित्त्व स्वयं रचनाकारों/लेखकों का है। उससे सम्पादक व प्रकाशक का सहमत होना आवश्यक नहीं। किसी भी प्रकार का विवाद होने पर न्यायक्षेत्र केवल भिवानी (हरियाणा) होगा।
सम्पादन और प्रबंधन के सभी पद पूर्ण रूप से अवैतनिक हैं।

Published by :

Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

202, Old Housing Board,

Bhiwani-127021 (Haryana) INDIA

Email : grsbohal@gmail.com

Facebook.com/bohalshodhmanjusha

Website : www.bohalsm.blogspot.com

WhatsApp : 9466532152

All Right Reserved by Publisher & Editor

Price

Individual/Institutional : 1300/-

Disclaimer :

1. Printing, Editing, Selling and distribution of this Journal is absolutely honorary and non-commercial.
2. All the Cheque/Bank Draft/IPO should be sent in the name of Gugan Ram Educational & Social Welfare Society payable at Bhiwani.
3. Articles in this journal do not reflect the Views or Policies of the Editor's or the Publisher's. Respective authors are responsible for the originally of their views/opinions expressed in their articles.
4. All dispute will be Subject to Bhiwani, Hry. Jurisdication only.

Printed by : Manbhawan Printers, Old Bus Stand Road, Naya Bazar, Bhiwani (Hry.)

अनुक्रमाणिका

क्र.	विषय	लेखक	पृष्ठ
1.	सम्पादकीय	डॉ. रेखा सोनी	07-07
2.	भारतेन्दु हरिश्चंद्र का हिंदी पत्रकारिता में योगदान : एक अंतर्दृष्टि	डॉ. लविन्द्रसिंह लबाना	08-10
3.	कृष्णा सोबती की कहानियों में नारी की संवेदना	डॉ. रतिका पंचारपोईल कोट्टायी	11-15
4.	**Problems in International Marketing of the Indian Leather Industry: A Study with Special Reference to European Union Countries**	**Ritika Jindal, Dr. Jyotsanna Lokhandde**	**16-28**
5.	भारतीय राजनीति में सत्ता, धर्म और सामाजिक व्यवस्था वैदिक काल से समकालीन भारत तक एक विश्लेषणात्मक अध्ययन	कुमुदनी कश्यप, डॉ. जुल्फिकार	29-33
6.	यशपाल के उपन्यासों में स्त्री-विषयक आयाम	नेहा सक्सेना	34-39
7.	**Raushanara Bagh Before Roshanara Garden**	**Anjali Rajput**	**40-44**
8.	डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम के शिक्षादर्शन का वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में निहितार्थ	सोमित सिंह, डॉ. कृपा शंकर यादव	45-50
9.	वेदों में राजा और सैन्य व्यवस्था	डॉ. अश्वनी कुमार	51-54
10.	असगर वजाहत के नाटक 'फिरंगी लौट आए' में अभिव्यक्त सामाजिक यथार्थ	सुचित्रा जे	55-59
11.	KARMA SIDDHANTA IN AŚVAGHOṢA'S BUDDHACARITA	**Sharmila K Thankappan**	**60-65**
12.	गीतांजलि श्रीकृत माई में स्त्री-विमर्श	वी. उमारानी, डॉ. जी. नीरजा	66-69
13.	योगिक ग्रन्थों में वर्णित भक्तियोग की वर्तमान समय में उपादेयता : एक समीक्षात्मक अध्ययन	वंदना, डॉ. नारायण प्रकाश	70-78
14.	भोजपुरी एवं बघेली लोकगीतों में प्रकृति-चित्रण : एक अध्ययन	डॉ. नागेश कुमार त्रिपाठी, गौरी शंकर	79-85
15.	'एक पत्नी के नोट्स' उपन्यास में नारी जीवन का अंतद्वंद्व	डॉ० रेणु देवी, डॉ० राम भरोसे	86-90
16.	डांग एक विश्लेषणात्मक अध्ययन	दीपशिखा कुमारी	91-97

17.	प्रगतिवादी कविता में बदलता ग्रामीण समाज और लोक जीवन की अभिव्यक्ति	डॉ. मरजीना, रघुनाथ मेघवाल	98–101
18.	प्राचीन भारत में मृत्तिका शिल्प	मीनू यादव	102–107
19.	**Potential Socio-Economic Impacts of an Induced War Between Neighbouring Countries on India**	**Dr.Vinod Kumar Girder, Dr. Yograj Goswami**	**108-113**
20.	'एक कहानी यह भी' : संघर्ष के विशेष संदर्भ में	**Dr. Sanu Thomas**	**114-119**
21.	साहित्यिक पत्रकारिता के आलोक में पत्रकारिता का स्वरूप एवं अंतःसंबंध	बबिता मौर्या	120–123
22.	**Preserving Tribal Cultural Identity and Customary Practices through PESA Gram Sabhas in Madhya Pradesh**	**Ravi Verma, J.C. Sinha**	**124-130**
23.	समकालीन समाज में परिवार और मानवीय संबंधों के बदलते स्वरूप का मूल्यांकन	डॉ. बरखा घावरी	131–136
24.	आधुनिक टोटम के रूप में राष्ट्रीय ध्वज : भारतीय तिरंगे के माध्यम से सामूहिक चेतना और राष्ट्र-निर्माण का समाजशास्त्रीय विश्लेषण	डॉ अंशु केडिया	137–142
25.	**Identification of the Buddha Footprint and the Kāṣāya-Robe Rock in the Mountain Spring Northeast of Gṛdhrakūṭa Vihāra : A Regional Archaeological Study in the Light of Xuanzang's Account**	**Lalan Kumar Singh, Prince Kumar**	**143-154**
26.	यात्रा साहित्य में मिश्रजी का योगदान	डॉ. रोसी पी. वर्गीस	155–157
27.	सामाजिक परिवर्तन और राजनीतिक चेतना : समकालीन भारतीय समाज में सत्ता, पहचान और भागीदारी का समाजशास्त्रीय अध्ययन	डॉ. अर्चना गोदारा, डॉ. अभिलाषा आबूसरिया	158–162
28.	डॉ. मिथलेश अवस्थी की लघुकथा में कथ्यागत सौंदर्य	डॉ. मिनाक्षी सोनावणे	163–168
29.	पंचायती राज व्यवस्था में अनुसूचित जाति की महिला जन प्रतिनिधि की भूमिका का विश्लेषणात्मक अध्ययन (सतना जिले के विशेष संदर्भ में)	डॉ. रश्मि पाण्डेय	169–178
30.	बदलती पारिवारिक संरचना में वृद्धजनों की सामाजिक स्थिति : भारतीय समाज का समाजशास्त्रीय अध्ययन	डॉ. गोल्डी चुटैल	179–185

31.	डोगरी क्हानियें च चित्रित परिवार : इक विश्लेशन (सन् 1991 थमां 2000 तगर)	डॉ. प्रीति बाला	186–188
32.	औपनिवेशिक भारत में रेलवे का विकास : आर्थिक एकीकरण और साम्राज्यवादी नियंत्रण का ऐतिहासिक विश्लेषण	श्रीमती माधुरी मालवीय	189–195
33.	पटना के प्रमुख इतिहासकार : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन	हिमांशु कुमार, प्रो.(डॉ.)अविनाश कुमार झा	196–203
34.	नयी कविता और उसके तत्व	डॉ. प्रणव शर्मा	204–208
35.	सांख्य तथा अद्वैत वेदान्त दर्शन में बन्धन और कैवल्य का अवलोकन	अंशु भटनागर, डॉ० मधु श्रीवास्तव	209–216
36.	भारतीय कथा साहित्य में प्रकृति और मनुष्य का अंतर्संबंध : विभिन्न भारतीय भाषाओं की कृतियों के विशेष संदर्भ में	डॉ. शबाब के. आर.	217–223
37.	उस्ताद रईस ख़ाँ की सितार वादन परंपरा, शैली एवं कलात्मक योगदान : एक गुणात्मक अध्ययन	**Prabhjot Kaur, Dr. Ravjot Kaur**	**224-228**
38.	वंशावली के वाहक आदिवासियों के 'रावल महाराज, भुवो और खत्री'	डॉ. सुरेन्द्रकुमार बी. बारीआ	229–232
39.	**A Study of the Cultural and Philosophical Significance of Meghaduta**	**Dr. Dhani Jamod**	**233-237**
40.	क्वांटम मैकेनिक्स और अद्वैत वेदांत का तुलनात्मक अध्ययन (वास्तविकता, प्रेक्षण और चेतना के प्रश्नों का विश्लेषण)	ध्रुव कुमार मिश्र	238–242
41.	**The Psychological Effects of White Beauty Standards, Internalized Racism and the Quest for Identity in Toni Morrison's The Bluest Eye**	**Shamama Bano, Dr. Manju Sharma**	**243-259**
42.	अशोक के धम्म का स्वरूप	**Vijay Singh**	**260-263**

सम्पादक की कलम से.....

साहित्य और समाज : समय के संग संवाद

वर्तमान दौर में जब समाज बहुआयामी संकटों और संभावनाओं के द्वंद्व में फंसा हुआ है, साहित्य की भूमिका और भी अधिक प्रासंगिक हो जाती है। साहित्य केवल कल्पनाओं का ताना–बाना नहीं है, यह समाज की आत्मा का आईना है। 'गीना शोध संगम' के जुलाई–अगस्त अंक में हम इसी आत्मा की पड़ताल करने का विनम्र प्रयास कर रहे हैं – एक ऐसे विमर्श की ओर जो न केवल ज्ञानवर्धक हो, बल्कि संवेदनाओं को भी स्पर्श करे।

यह अंक साहित्य, समाज और संस्कृति की त्रिवेणी में डुबकी लगाने का आमंत्रण है, जहां विचार, संवेदना और विवेक के साथ विभिन्न लेखकों ने समसामयिक विषयों की पड़ताल की है। आज जब तकनीक ने सूचनाओं को तेजी से फैलाना शुरू कर दिया है, तब यह जरूरी हो गया है कि हम इस प्रवाह में मूल्य, मर्यादा और मौलिकता को बनाए रखें। गीना शोध संगम का यह विशेषांक उसी प्रयोजन की एक कड़ी है – जहाँ शोध, समीक्षा और सृजन के तीनों स्तरों को संतुलित दृष्टिकोण से प्रस्तुत किया गया है।

साहित्य महज अक्षरों का संकलन नहीं, बल्कि एक कालबद्ध चेतना है जो युगों को पार कर संवेदना की मशाल थामे चलती है। कबीर, तुलसी, मीरा से लेकर प्रेमचंद, अज्ञेय, नागार्जुन और समकालीन कवियों तक हर युग में साहित्य ने न केवल सामाजिक विसंगतियों को रेखांकित किया, बल्कि वैकल्पिक सोच को जन्म भी दिया। इस अंक में प्रकाशित शोध आलेखों और समीक्षाओं में यह स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है कि साहित्य आज भी मनुष्य को मनुष्यता की ओर लौटने का आमंत्रण देता है। पत्रिका के इस अंक में शामिल शोधार्थियों और लेखकों ने भारतीय साहित्य के विविध पक्षों 'जैसे दलित विमर्श, नारी चेतना, ग्रामीण यथार्थ, शिक्षण में साहित्य की भूमिका, और वैश्विक साहित्य में भारतीयता' पर अत्यंत गंभीर और संतुलित विवेचन किया है। उनकी यह विशेषता रही कि उन्होंने न केवल सैद्धांतिक विमर्श किया, बल्कि व्यावहारिक पहलुओं को भी सामने रखा। यह शोध न केवल विद्वानों के लिए उपयोगी हैं, बल्कि विद्यार्थियों और सामान्य पाठकों को भी दिशा देने में सक्षम हैं।

यह एक सर्वविदित तथ्य है कि साहित्य समाज से कटकर जीवित नहीं रह सकता और न ही समाज साहित्य से विमुख होकर अपनी सांस्कृतिक जड़ों से जुड़ा रह सकता है। इस पत्रिका में प्रकाशित रचनाएँ इस तथ्य की पुष्टि करती हैं। चाहे वह ग्रामीण परिवेश की समस्याओं पर आधारित लघु कथाएँ हों या स्त्री–विमर्श पर केंद्रित आलोचनात्मक लेख, सभी में यह अनुभव किया जा सकता है कि साहित्यकार अपने समय की नब्ज को पहचान रहा है। 'गीना शोध संगम' का यह अंक केवल एक साहित्यिक संकलन नहीं, बल्कि एक संवाद है – शोध और सृजन के मध्य। यह संवाद न केवल पाठक और लेखक के बीच होता है, बल्कि समाज और विचार के मध्य भी एक सेतु का कार्य करता है। इस अंक की विशेषता यह भी है कि इसमें रचनात्मक साहित्य के साथ–साथ विश्लेषणात्मक और आलोचनात्मक दृष्टिकोण को भी समान महत्व दिया गया है।

अंत में, हम गीना शोध संगम के सभी लेखकों, शोधार्थियों, संपादन सहयोगियों और पाठकों का आभार प्रकट करते हैं, जिनकी सहभागिता इस अंक को समृद्ध बनाती है। हम आशा करते हैं कि यह अंक आपको न केवल विचारों में नवीनता देगा, बल्कि आपको आपके सामाजिक सरोकारों के प्रति भी और अधिक सजग करेगा। साहित्य–संधान–संवाद की यह परंपरा यों ही चलती रहे – इसी मंगलकामना के साथ...

–संपादक

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED PRINT RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 14, Issue 7-8
पृष्ठ : 08–10

भारतेन्दु हरिश्चंद्र का हिंदी पत्रकारिता में योगदान : एक अंतर्दृष्टि

डॉ. लविन्द्रसिंह लबाना
सह आचार्य, हिंदी विभाग,
गुजरात केन्द्रीय विश्वविद्यालय, बड़ोदरा।

भूमिका :

भारतेन्दु हरिश्चंद्र आधुनिक युग के प्रवर्तक है। इनका जन्म संवत १९०७ में कशी के एक संपन्न परिवार में हुआ था। इनके पिता गोपालचंद्र भक्त और कवि थे। भारतेन्दुजी को घर पर ही विभिन्न भाषाओं की शिक्षा प्राप्त हुई। ग्यारह वर्ष की छोटी आयु में ही उन्होंने कविता लिखना शुरू किया। जगन्नाथ की यात्रा में उन्होंने बंगला साहित्य की प्रवृतियों से परिचय प्राप्त किया। वहां से वापस लौटकर वे निरंतर साहित्य साधना में लीन रहें। साहित्य के क्षेत्र में ख्याति प्राप्त की उसी तरह सामाजिक लोकप्रियता प्राप्त की। कवि, नाटककार और संपादक होने के साथ ही समाज–सुधारक और सच्चे राष्ट्र भक्त थे। भारतेन्दु सरल स्वभाव के धनि थे। वे उदार व्यक्तित्व के साथ–साथ विनोदी स्वभाव के थे। उनकी समस्त रचनाएँ लगभग १७५ हैं। उनका देहांत संवत १९४१ में हुआ।

भारतेंदु के उदय के पूर्व पत्र–पत्रिकाओं के विकास का प्रथम दौर पूरा हो चुका था। पत्र–पत्रिकाओं का सम्बन्ध सीधे जन–जागरण से है। किसी प्रकार के अन्याय या पक्षपात का प्रतिकार करने के लिए जनता जब उठ खड़ी होती है तो उसे अपनी आवाज बुलन्द करने के लिए पत्र–पत्रिकाओं का सहारा लेना पड़ता है। उन दोनों जन जागरण का केंद्र कोलकाता नगर था। हिंदी–पत्रकारिता का आरंभ वहीं से हुआ। 'प्रथम उत्थान (1826–1867) में प्रकाशित कुछ प्रमुख पत्र पत्रिकाएं निम्नलिखित है : 1. उदन्त मार्तण्ड 1826 साप्ताहिक, कलकत्ता, 2. बंगदूत 1829, साप्ताहिक, कलकत्ता, 3. प्रजामित्र 1834, साप्ताहिक कलकत्ता, 4. बनारस अखबार, 1845, साप्ताहिक, बनारस, 5. मार्तण्ड, 1846, साप्ताहिक, कलकत्ता, 6. मालवा अखबार 1849, साप्ताहिक मालवा, 7. सुधाकर 1850, साप्ताहिक, काशी, 8. बुद्धि प्रकाश, 1852 साप्ताहिक, आगरा, 9. समाचार सुधावर्षण, 1854, दैनिक, कलकत्ता, 10. प्रजाहितैषी, 1855, आगरा, 11. तत्त्वबोधिनी पत्रिका, 1843, ऑर्डर शो 65 बरेली, 12. ज्ञानप्रदायिनी पत्रिका, 1866, मासिक, लाहौर, 13. वृत्तान्त विलास, 1867 मासिक, जम्मू।'[1]

इस प्रकार प्रथम उत्थान में अधिकतर साप्ताहिक पत्रों का ही प्रकाशन हुआ। 'भारतेंदु काल में पत्र–पत्रिका का उद्देश्य जनता में जागरण और सुधार की भावना उत्पन्न करना था। अन्याय का प्रतिकार भी, अपनी सीमाओं में, ये पत्र–पत्रिकाएं करती थी। बहुसंख्यक पत्रिकाएं दो–दो या तीन–तीन भाषाओं में निकलती

थी। इनमें प्रयुक्त हिंदी भाषा टूटी–फूटी और अपरिमार्जित होती थी।'[2]

भारतेंदु हरिश्चंद्र हिंदी साहित्य और पत्रकारिता के इतिहास में एक महत्वपूर्ण नाम है। उन्हें आधुनिक हिंदी साहित्य जनक तथा हिंदी पत्रकारिता का अग्रदूत माना जाता है। उन्होंने अपनी पत्रकारिता के माध्यम से समाज राष्ट्र और भाषा के प्रति जागरूकता उत्पन्न की है। भारतेंदु जी की पत्रिकारिता को केवल समाचार देने का माध यम नहीं माना बल्कि उसे समाज सुधार एवं राष्ट्रीय चेतना जगाने का शक्तिशाली साधन बनाया। भारतेंदु हरिश्चंद्र निबंधकार, कवि और उपन्यासकार होने के साथ–साथ एक बेहतरीन पत्रकार भी थे। उन्होंने सिर्फ 35 साल की आयु में ही मार्गदर्शन बनाकर पत्रकारिता और साहित्य जगत को एक नया आयाम दिया और एक नए युग का प्रारंभ हो गया। इस काल खंड के बाद में 'भारतेंदु युग' के नाम से जाना गया। पत्रकार की भूमिका में भारतेंदु हरिश्चंद्र ने अपनी दायित्वों का पूर्णतः निर्वहन किया। तत्कालीन समय की समस्याओं मसलन, स्वदेशी, सूदखोरी, अंधविश्वास कर्मकांड, विधवा विवाह, असमानता, स्त्री शिक्षा पर उन्होंने जोरदार लेखन और टिप्पणी की। उन्होंने सामाजिक विसंगतियों से लड़ने के लिए अन्य रचनाकारों भी उत्साहित और प्रेरित किया। भारतेंदु ने सामाजिक बहसों को नई दिशा दी। साहित्यकारों की नजर में साहित्यकार के साथ–साथ संपूर्ण पत्रकार भी थे।

वरिष्ठ साहित्यकार प्रो. राजेंद्र कुमार कहते हैं कि 'भारतेंदु हरिश्चंद्र ने भाषा के विकास के साथ एक पत्रकार के संपूर्ण दायित्व को भी बखूबी निभाया। हिंदी पत्रकारिता में चेतना की अलख जगाई। अपनी लेखनी से उन्होंने सामाजिक समस्याओं के प्रति जागरूक और आगे बढ़ते रहने की के लिए प्रेरित किया, जिसके परिणाम स्वरुप भारतेंदु मंडल बना। इसी के बाद कानपुर से 'ब्राह्मण', मिर्जापुर से 'आनंद कादंबिनी' और इलाहाबाद से बालकृष्ण भट्ट ने 'हिंदी प्रदीप' का प्रकाशन शुरू किया।'[3]

भारतेन्दु हरिश्चंद्र द्वारा प्रकाशित प्रमुख पत्रिकाएं :

कविवचन सुधा :

'वर्ष 1868 में महज 18 वर्ष की आयु में ही उनकी पत्रिका 'कवि वचन सुधा' काशी (बनारस) से प्रकाशित हुई।[4] यह पत्रिका हिंदी साहित्यिक रचनाओं के साथ सामाजिक और राष्ट्रीय चेतना जगाने का शक्तिशाली साधन बन गया जिसके बाद हिंदी पत्रकारिता का स्वरूप बदल गया। 1868 से पहले जो पत्र–पत्रिकाएं प्रकाशित होती थी, उसमें ज्यादातर कविताएं लेख या फिर निबंध ही प्रकाशित होते थे। 'कवि वचन सुधा' के प्रकाशन के प्रत्यक्ष जो पत्र–पत्रिकाओं के प्रकाशन का दौर चला, उसने हिंदी भाषा के विकास और समाज सुधार को एक नयी उड़ान दी।

हरिश्चंद्र मैगजीन (1873) :

काशी (बनारस) से शुरू हुई, इसके बाद 'हरिश्चंद्र चंद्रिका' नाम दिया गया। इस पत्रिका में समाज सुधार, राजनीति, शिक्षा और राष्ट्रीय चेतना से जुड़े विषयों को प्रमुखता दी गई। इस पत्रिका ने हिंदी गद्य और आधुनिक हिंदी पत्रिका के विकास में योगदान दिया।

बाला बोधिनी (1874) :

बाला बोधिनी पत्रिका हिंदी की प्रारंभिक पत्रिका मानी जाती हैं। यह महिलाओं की शिक्षा और जागरूकता के लिए काशी से प्रकाशित पत्रिका। इससे भारतेंदु जी के स्त्री शिक्षा और महिला उत्थान के विचार स्पष्ट होते हैं।

भारतेंदु हरिश्चंद्र की पत्रकारिता की विशेषताएँ :

1. राष्ट्रीय चेतना :

भारतेंदुजी ने अंग्रेजी शासन की नीतियों की आलोचना करते हुए भारतीयों में देशभक्ति की भावना जगाई। उनकी पत्रकारिता में राष्ट्रप्रेम स्पष्ट दिखाई देता है।

2. समाज सुधार की भावना :

उन्होंने बाल–विवाह, अंधविश्वास, अशिक्षा और सामाजिक कुरीतियों का विरोध किया। उनकी पत्रकारिता समाज को नई दिशा देने वाली थी।

3. हिंदी भाषा का विकास :

भारतेंदु ने सरल और सहज हिंदी भाषा को अपनाकर हिंदी पत्रकारिता को नई पहचान दी। उन्होंने खड़ी बोली हिंदी को लोकप्रिय बनाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

4. स्त्री शिक्षा का समर्थन :

उन्होंने महिलाओं की शिक्षा और उनके अधिकारों का समर्थन किया। "बालाबोधिनी" जैसी पत्रिका इसका श्रेष्ठ उदाहरण है।

भारतेंदु की पत्रकारिता का महत्व :

भारतेंदु हरिश्चंद्र की पत्रकारिता ने हिंदी समाज में नवजागरण पैदा किया। उन्होंने पत्रकारिता को साहित्य, समाज और राष्ट्र से जोड़कर उसे नई दिशा प्रदान की। उनकी पत्रकारिता में साहित्यिक सौंदर्य, सामाजिक चेतना और राष्ट्रीय भावना का अद्‌भुत समन्वय मिलता है। इसी कारण उन्हें हिंदी पत्रकारिता का पथप्रदर्शक कहा जाता है।

निष्कर्ष :

भारतेंदु हरिश्चंद्र की पत्रकारिता केवल लेखन तक सीमित नहीं थी, बल्कि वह जनजागरण का आंदोलन थी। उनकी पत्रकारिता में तत्कालीन युग की परिस्थितियाँ चित्रित हैं। उन्होंने अपनी लेखनी से समाज में नई चेतना, राष्ट्रीय भावना और हिंदी भाषा के प्रति सम्मान उत्पन्न किया। आज भी हिंदी पत्रकारिता उनके आदर्शों से प्रेरणा प्राप्त करती है।

संदर्भ सूची :

1. हिंदी साहित्य का इतिहास डॉ. नगेन्द्र, मयूर पेपरबैक्स, नयी दिल्ली, पृष्ठ 481
2. वही, पृष्ठ 481
3. साहित्य वीथिका, संपादक डॉ. दिलीप मेहरा, उत्कर्ष पब्लिकर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, डॉ. अनुपमा कुमारी, अप्रैल–जून 2022, पृष्ठ 81
4. वही, पृष्ठ 81

lrlabana@gmail.com

दूरभाष 9879054898

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED PRINT RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 14, Issue 7-8
पृष्ठ : 11-15

कृष्णा सोबती की कहानियों में नारी की संवेदना

डॉ. रतिका पंचारपोईल कोट्टायी
सहायक आचार्य, हिंदी विभाग
श्री. नारायणा कॉलेज, कण्णूर, केरल।

भारतीय परिवार में नारी और पुरुष दोनों के योगदान से परिवार संपन्न बनता हैं। भारतीय संस्कृति में गुरु और पिता से पहले माता का स्थान निश्चित किया गया है, जैसे 'मातृ देवो भव', 'पितृ देवो भव', 'आचार्य देवो भव'। प्राचीन भारतीय समाज में नारी का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण रहा है। प्राचीन कालीन रामायण, महाभारत जैसे पवित्र ग्रंथों में नारी का महत्व विस्तार से किया है। नारी महत्ता के बारे में जगद्गुरु शंकराचार्य ने कहा है – "जगत्माता जगद्गुरु'। यानी नारी को माँ के रूप में देवत्व प्रदान कर आदि शक्ति का रूप माना है। इसलिए कहा गया हैं ' यत्र नारी पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवता' अर्थात् जहां–जहाँ नारी की पूजा होती है, वहां देवता निवास करते है। भारतीय संस्कृति में नारी के अनेक रूप नजर आते हैं। हमारे ग्रंथों में नारी के अलग–अलग रूप अर्थात् माँ, पत्नी, बेटी, बहिन आदि की महत्ता का वर्णन किया गया है।

पुरुष प्रधान संस्कृति के कारण नारी को परिवार में गौण स्थान है। इसी कारण से भारतीय सांस्कृतिक मान्यताओं, रूढ़ियों, परंपराओं और रीति–रिवाजों के कारण नारी को स्वतंत्र स्थान नहीं है। आज भी नारी रूढि–परंपरा मैं फँसी गयी है। इसके संदर्भ में सुरेश सिन्हा कहते हैं–'आचार–विचार, अंधविश्वास, रीति–रिवाज इत्यादि खोखली मान्यताएं समाज में इतनी फैल गई है, जिसे आसानी से निकाल फैकना संभव नहीं है।"[1] इसी प्रकार नारी का समाज में केवल उपभोग किया जाता है।

भारतीय नारी के जीवन में समय के साथ परिवर्तन हुआ है। इसके बारे में रेवा कुलकर्णी का ने कहा है– "समाज में उसको कभी देवता के उदात्त स्थान पर विभूषित किया गया था, तो कभी उसके साथ दासी जैसा व्यवहार किया गया था तो कभी उसका मूल्य मान–बहलाव के खिलौने से अधिक नहीं माना गया।"[2] आजादी के बाद नारी को बंधनों से मुक्त करने के लिए बहुत प्रयत्न किए हैं। तत्पश्चात नागरी नारी के जीवन में बहुत अधिक बदलाव आ गया है। किंतु ग्रामीण परिवेश में अज्ञान, रूढ़ि एवं परंपराओं के कारण नारी के जीवन में परिवर्तन नहीं हुआ हैं। इस स्थिति में सुधार लाने के लिए नारी सुधार अभियान का कार्य करने वाली महिलाओं ने बहुत कोशिश की। इतनी कोशिश करने पर भी ग्रामीण नारी का जीवन परिवर्तित नहीं हुआ है। क्योंकि परंपरागत मान्यताओं रूढियों और परंपराओं से ग्रामीण नारी जकड़ी हुई हैं।

समाज व्यवस्था में नारी का स्थान महत्वपूर्ण था। वैदिक काल से नारी के रूप परिवर्तित होते रहे हैं। यज्ञदत्त शर्मा के नारी के संबन्ध में सही कहा है– "भारतीय संस्कृति में नारी स्थान एकाकी है, उत्तम हैं, स्नेह,

ममता और प्रेम का प्रतीक है। वह मान जीवन का रस है, अमृत हैं और प्राण है।"[3]

स्वतंत्रता के बाद भी नारी की स्थिति में परिवर्तन नहीं हुआ है। आज भी हर क्षेत्र में नारी का शोषण हो रहा है। हमारे समाज में पुरुष की अपेक्षा नारी की स्थिति हीन और दयनीय रही है। नर एवं नारी दोनों ही समाज के आवश्यक अंग है। पद, मर्यादा और अधिकार के आडंबर की रचना करने वाले पुरुषों ने नारी के साथ हमेशा छल, विश्वासघात कर उसका शोषण किया है। ग्रामीण नारियों की भी यही स्थिति हैं। उनका शारीरिक और मानसिक शोषण हो रहा है।

कृष्णा सोबती की कहानियों में नारी संवेदना का चित्रण उनके सशक्त, स्वतंत्र और संघर्षरत नारी पात्रों के माध्यम से किया गया हैं। उन्होंने स्त्री के अस्तित्व और अस्मिता को केन्द्र में रखकर पितृसत्तात्मक समाज की रूढ़ियों और बंधनों के खिलाफ एक चुनौती प्रस्तुत की। उनकी कहानियों की स्त्रियां केवल भावनापूर्ण आदर्श नहीं हैं, बल्कि वे अपनी इच्छाओं केलिए संघर्ष करती हैं और समानता की उपेक्षाओं को ठुकराने में भी सक्षम हैं।

हिंदी के आधुनिक लेखन में सर्व प्रथम कृष्णा सोबती ने नवीन मूल्यों के निष्कर्ष पर स्त्री के अस्तित्व तथा अस्मिता की तलाश और उसके सार्थकता संबन्धी प्रश्नों को अपने अनोखे पात्रों तथा अनूठे कथाओं के जरिए उठाया है। कृष्णा सोबती का लक्ष्य केवल पारिवारिक स्तर पर ही नहीं, सामाजिक स्तर पर भी नारी की प्रगति रहा है। स्त्री विमर्श के सभी पहलुओं को कृष्णा सोबती की कहानियों तथा उपन्यासों में देखा जा सकता है। राजेन्द्र यादव उनके बारे में कहते है – "कृष्णा जी ने लिखा बहुत कम हैं ..... लंबी कहानी या लघु उपन्यास जैसी चार–पाँच चीजें, चार पाँच कहानियां बीस–पच्चीस सालों की पच्चीकारी या जरदोजी की महीन–नफीस कारीगरी शब्द को कोई भी ऐसा नाम दिया जा सके तो हिंदी में वह सिर्फ कृष्णा जी ने किया हैं। एक एक शब्द, वाक्य, कॉमा, फुलस्टाप जैसे हफ्तों के परिश्रम से आया है। वे भयानक परफेक्शनिस्ट है। अपनी कलम से कमी भी उस चीज को बाहर नहीं आने देगी जिसकी सारी नोंक, पलकें उन्होंने दुरूस्त न कर ली हो।"[4]

कृष्णा जी के कथा साहित्य में ग्रामों के सांस्कृतिक जीवन में संयुक्त परिवार पद्धति और बड़ों का सम्मान करना महत्वपूर्ण बात है। ग्रामों में परंपरागत संस्कार भी है, जिसका वे पालन करते है। ग्रामों में संयुक्त परिवार में अधिकतर सास–बहू पर अत्याचार करती हुई नजर आती है। कृष्णा सोबती की कहानियों में नारी एवं परंपरा के कई रूप उद्‌घाटित हुए हैं। उनकी कहानी 'दादी अम्मा' में नारी एवं परंपरा का चित्रण बड़ी स्वाभाविकता से किया है। कहानी का मुख्य पात्र 'दादी अम्मा' परंपरा घोषित नारी है। 'मेहरां' दादी अम्मा की बहू है। मेहरा एक ऐसी स्त्री है जो विवाह के छः वर्षों तक माँ नहीं बन पाती है और समाज तथा सास की कटाक्ष भरी निगाहों को झेलती है। फिर अचानक जीवन में एक नया मोड आता है – वह माँ बनने की अनुभूति पाती है, और यह क्षण उसके जीवन का सबसे पूर्ण अनुभव बन गया है। कहानी का उद्धरण है – "मेहरां की गोद में इस परिवार की बेल बढ़ी है। आज घर में तीन बेटे हैं, उनकी बहुएँ हैं। हल्के–फुल्के कपड़ों में लिपटी उनकी बहुएँ जब उसके सामने झुकती है तो क्षण भर के लिए मेहरां के मस्तक पर घर की स्वामिनी होने का अभिमान उभर आता है। वह बैठे–बैठे उन्हें आशीष देती है और मुस्कुराती है। ऐसे ही, बिल्कुल ऐसे ही वह भी कभी सांस के सामने झुकती थी।"[5]

अतः यहाँ नारी परंपरा का घोषणा कर रही है, जैसे उसकी सास ने किया, वह भी उस परंपरा को निभा रही है। वह अपनी बहू से भी यही चाहती है। अब मेहरा उम्रदराज हो चुकी है। जो कभी सास की कठोर निगाहों,

और निःसंतानता का पीड़ा से गुजरी थी, वही अब अपने घर की स्वामिनी है – तीन बेटों, दो बेटियां और बहुओं से भरे पूरे परिवार की केन्द्रस्थ धुरी बन चुकी है।

कहानी की दादी अम्मा अपने जीवन के अनेक उतार–चढ़ाव देखी हैं। कभी वे परिवार की मुखिया थीं, जिनका आदेश ही सबके लिए नियम का। लेकिन अब समय बदल चुका है। वही दादी अम्मा अपने ही घर से उपेक्षित हैं। कोई उनकी बात नहीं सुनता, कोई उनकी दवा या बीमारी की चिंता नहीं करता। परिवार के समारोहों में भी उनसे कोई सलाह नहीं ली जाती। यह उपेक्षा उन्हें भीतर तक तोड़ देती है। ऐसे क्षणों में, वे अपने अतीत को याद करती है – "एक दिन वह भी दुलहिन बनी थी। बूढ़े फूफी ने सजाकर उसे भी पति के पास भेजा था। तब क्या उसने यह कोठरी देखी थी? ब्याह के बाद वर्षों तक उसने जैसे यह जाना ही नहीं कि फूफी दिन भर काम करने के बाद रात को यहाँ सोती है। आँखें मुँद जाने से पहले जब फूफी बीमार हुई तो दादी अम्मा ने कुलीन बहू की तरह उसकी सेवा करते–करते पहली बार यह जाना था की घर में इतने कमरे होते हुए भी फूफी इस पिछवाड़े में अपने अंतिम दिन–बरस काट गई है। पर यह देखकर जानकर उसे आश्चर्य नहीं हुआ था। घर के पिछवाडे में पड़ी फूफी की देह छाँहकार पेड़ के पुराने तने की तरह लगती थी, जिसके पत्तों की छाँह उससे अलग, उसमें परे, घर–भर पर फैली हुई थी।"[6]

दादी अम्मा को वह पल भी याद आते है जब उन्होंने अपनी बहू मेहरां को पूरे स्नेह से इस घर में लाया था। पर आज वही बहू जो कभी उनके प्रति आदर दिखाती थी, अब सास बनकर उन्हें भुला चुकी है।

इस कहानी में दादी अम्मा का चरित्र स्त्री की आत्मसम्मान और पीड़ा का प्रतीक बन जाता है। वह कहती हैं – "बहुरानी इस घर में अब मेरा इतना सा मान रह गया है!....."[7] कभी–कभी दादी अम्मा को घर के पोथे –पोथियाँ मजाक उठाते हैं। जब छोटा बेटा अपनी बहू को लाकर आया था, तब दादी अम्मा भी पतोहू का माथा चूमकर उसे हाथ का कंगन दिया था। पतोहू ने झुककर दादी अम्मा के पाँव छुए थे और दादी दुल्हन के मुखडे की ओर देखती रही थी। छोटी बेटी ने चंचलता से परिहास कर रहा का "दादी अम्मा, सच कहो भैया की दुल्हन तुम्हें पसंद आई? क्या तुम्हारे दिनों में भी शादी–ब्याह में ऐसे ही कपड़े पहने जाते थे?"[8]

समय बीतता है दादी अम्मा बीमार पड़ जाती हैं। मृत्यु के क्षणों में पूरा परिवार उनके पास एकत्रित होता है। यह देखकर दादी अम्मा के मन का सारा मैल मिट जाता है। मरते समय उन्हें सुकून है कि उनके अंतिम क्षणों में परिवार उनके साथ है। उनकी मृत्यु के साथ कहानी एक गहरी मानवीय करुणा और मौन संदेश छोड जाती है।

'दादी अम्मा' केवल एक वृद्ध स्त्री की कहानी नहीं, बल्कि बदलते सामाजिक मूल्यों और मानवीन संवेदना के ह्रास की कहानी है।

कृष्णा सोबती ने यह दिखाया है कि जब मनुष्य अपने बडों की उपेक्षा करने लगता है, तो परिवार की आत्मा भी खो जाती है। इस कहानी में नारी संवेदना, वृद्धावस्था की व्यथा और पारिवारिक रिश्तों की सच्चाई का गहरा चित्रण है। यह कहानी एक आईना है जो हमें खुद में झांकने पर मजबूर करती है।

कृष्णा सोबती की कहानी 'सिक्का बदल गया' में नारी संवेदना को विभाजन की त्रासदी से उपजे भावनात्मक और सामाजिक बदलाव के रूप में दर्शाया गया है। कहानी में शाहनी का चरित्र नारी की उस संवेदनशीलता का प्रतीक हैं जो अपनी जमीन, थर और स्मृतियों के बिछुड जाने के दर्द को सहती है। वह अपने

ही लोगों के बदलते व्यवहार और विश्वासघात से टूट जाती हैं, और उसकी संवेदनाएं तब सबसे गहरा आघात पाती हैं जब वह देखती है कि उसका अपना ही वफादार शेरा अब उसके प्रति षड्यंत्र रच रहा है।

शाहनी के लिए जमीन सिर्फ एक टुकड़ा नहीं थीं, बल्कि उसके पति, परिवार और बीती जिन्दगी की यादों का संगम थी। विभाजन के कारण उसे सब छोड़कर जाना पड़ा, जिससे उसकी संवेदनाएं गहरे स्तर पर आहत हुईं। कहानी दर्शाती है कि कैसे सत्ता और परिस्थितियों के बदलने पर रिश्तों का स्वरूप भी बदल जाता है। "शाहनी के कदम डोल गए। चक्कर आया और दीवार के साथ लग गई। इसी दिन के लिए छोड़ गए थे शाहजी उसे? बेजान सी शाहनी की ओर देखकर बेगू सोच रहा है – क्या गुजर रही है शाहनी पर ! मगर क्या हो सकता है ! सिक्का बदल गया है।"[9]

पहले वफादार शेरा, जो अब लूटने की सोचता है, और जो लोग पहले उसके साथ थे, वे अब उसके दुश्मन बन जाते हैं। अपनी जमीन और परिवार खोने के बाद शाहनी अकेली रह जाती हैं। वह अपनी ही हवेली और संपत्ति में अजनबी हो जाती हे, जहां उसका अपना कोई नहीं रह गया है। यह अकेलापन गौर शून्यता उसकी संवेदना का मुख्य केन्द्र है। एक स्त्री के कैसे अपनी पहचान, घर और रिश्तों के टूटने के बाद भी एक नई वास्तविकता को स्वीकार करने के लिए विवश हो जाती है यही इस कहानी का सार है। वह अपनी संवेदनाओं को दबाकर, नए हालत में जीने का प्रचास करती है, जबकि अंदर ही अंदर वह पूरी तरह टूट चुकी है।

कृष्णा सोबती की कहानी 'बहनें' में परिवार और समाज में बहनों के अलग–अलग हो रहे जीवन, विवाह के बाद दूरी, और फिर कभी–कभी मिलने पर होने वाली भावनात्मक उथल–पुथल को दर्शाती है। यह कहानी पुरुषसत्तात्मक समाज में स्त्री की स्थिति को उजागर करती है, जहां एक ही आंगन में पली–बढ़ी बहनें विवाह के बाद अलग–अलग हो जाती हैं और एक–दूसरे की भावनाओं को पूरी तरह नहीं समझ पाती हैं।

कहानी में बहनें विवाह के बाद एक–दूसरे से दूर हो जाती हैं। उनके घर, आंगन और रिश्तें बदल जाते हैं, जिससे उनके बीच की निकटता कम हो जाती है। बड़ी बहन एक ही में आंगन पली–बढ़ी बहन को कई वर्षों बाद एक पारिवारिक समारोह में मिलती है। इस मुलाकात में वर्षों से मन में बैठी भावनाओं का ज्वार उमड़ता है, और वे दोनों ही अलग–अलग जीवन की विडंबनाओं से जुझ रही होती हैं।

बड़ी ने कंधे पर से हल्के से मंझली का सिर उठाया और माथा चूमकर गीले स्वर में बोली – 'मंझली, यह दिन आ गया हैं तुम्हारी राह देखने। धर्म के ब्याह में न आती, तो मन का तार तुम्हारी ओर ही बजता रहता।"[10] 'बहनें' कहानी में स्त्रियों के जीवन और भावनाओं का मार्मिक चित्रण है, जहां वे समाज के बंधनों को महसूस करती हैं और कभी–कभी स्त्री समानता के लिए संघर्ष करती हैं। स्त्री के पारंपरिक और आधुनिक जीवन के बीच के संघर्ष को दिखाया गया हैं, जहाँ वे अपनी पहचान और स्वतंत्रता के लिए लड़ती है।

'बादलों के घेरे' में स्त्री संवेदना को कई स्तरों पर उजागर करती हैं, जिसमें मन्नो और रवि के पात्रों के माध्यम से सामाजिक वर्जनाओं, प्रेम और शारीरिक संबंधों को लेकर झिझक और घुटन को दर्शाया गया है। इस कहानी में स्त्री की शारीरिक और मानसिक जकड़न को दर्शाया गया है जो प्रेम और इच्छाओं के साथ ही सामाजिक नियमों के कारण भी उत्पन्न होती है। कहानी के माध्यम से सोबती के स्त्री की स्वतंत्रता, प्रेम और आत्म–सम्मान की भावना का दर्शाया है, जो अपनी पहचान और स्वतंत्रता के लिए संघर्ष कर रही है।

कहानी में मन्नो का चरित्र सामाजिक बंधनों के कारण उत्पन्न हुई झिझक और घुटन का प्रतीक है, जबकि रवि का चरित्र इस सामाजिक और मानसिक जकड़न के प्रति उसकी असहायता को दर्शाता है।

"आज जब स्वयं भी मन्नो–सा बन गया है, सौ बार अपने को न्यौछावर कर उसी क्षण को लौटा लेना चाहता हूं। मैं कुर्सी पर बैठा–बैठा क्यों उस बाँह को छू नहीं सका था? क्यों उस हाथ को सहला, नहीं सका था? उमड़ते मन को किसी ने जैसे जकड़कर वहीं, उस कुर्सी पर ठहरा लिया था।"[11]

कहानी में स्त्री की स्वतंत्रता, प्रेम और आत्म–सम्मान की भावना को दर्शाया गया है, जो अपनी पहचान और स्वतंत्रता के लिए संघर्ष कर रही है। मन्नो और रवि दोनों के अंतरिक संघर्ष को इसमें दिखाया गया है, जो समाज और स्वयं के साथ अपनी भावनाओं और इच्छाओं से जूझ रहे हैं।

कृष्णा सोबती ने ग्रामीण नारी को न तो केवल दया की पात्र बनाया हैं और न ही क्रांति की नायिका। उन्होंने उसे एक जीती–जागती, संवेदनशील इंसान के रूप में दिखाया है–जो अपने अस्तित्व के लिए धीरे–धीरे जाग रही है।

कृष्णा सोबती की ग्रामिण स्त्रियां केवल संघर्ष का प्रतीक नहीं, बल्कि ममता, करुणा और संवेदना की मूर्तियां भी हैं। वे परिवार और समय दोनों के लिए त्याग करती है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची :

1. सुरेश सिन्हा– हिंदी उपन्यास, पृ. 135
2. डॉ. रेवा कुलकर्णी– हिंदी सामाजिक उपन्यासों में नारी।
3. यज्ञदत्त शर्मा – प्रबंध सागर, पृ. 153
4. राजेन्द्र यादव – औरों के बहाने, पृ. 37
5. कृष्णा सोबती– बादलों के घेरे, दादी अम्मा, पृ. 33
6. कृष्णा सोबती– बादलों के घेरे, दादी अम्मा, पृ. 38
7. कृष्णा सोबती– बादलों के घेरे, दादी अम्मा, पृ. 34
8. कृष्णा सोबती– बादलों के घेरे, दादी अम्मा, पृ. 36
9. कृष्णा सोबती– बादलों के घेरे, दादी अम्मा, पृ. 138
10. कृष्णा सोबती– बादलों के घेरे, दादी अम्मा, पृ. 56
11. कृष्णा सोबती– बादलों के घेरे, दादी अम्मा, पृ. 19

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED PRINT RESEARCH JOURNAL
Vol. 14, Issue 7-8
पृष्ठ : 16–28

Problems in International Marketing of the Indian Leather Industry: A Study with Special Reference to European Union Countries

Ritika Jindal, Author
Dr. Jyotsanna Lokhandde, Research Supervisor & Assistant Professor,
Department of Commerce and Management,
SHRI KHUSHAL DAS UNIVERSITY, HANUMANGARH, RAJASTHAN.

Abstract :

The Indian leather industry is one of the country's leading export-oriented manufacturing sectors. It has made a significant contribution to foreign exchange earnings, employment generation and industrial growth. The industry now operates in a highly competitive global market. Changing consumer preferences and evolving international trade regulations have created both challenges and new business opportunities. The European Union (EU) remains one of the most important destinations for Indian leather and leather products. However, entry into this market requires strict compliance with standards related to product quality, environmental sustainability, product safety and social responsibility. Although these requirements increase compliance costs, they also provide access to premium international markets.

This paper examines the major issues affecting the international marketing of the Indian leather industry, with particular reference to the European Union. The study is based entirely on secondary sources, including research articles, government reports, industry publications, trade statistics and relevant academic literature. A comparative analysis of these sources has been undertaken to evaluate the influence of tariff and non-tariff barriers, environmental regulations, global competition, technological advancement and supply chain constraints on India's leather export performance.

The findings indicate that the Indian leather industry possesses several competitive strengths, including strong production capacity, a skilled workforce and a diversified product portfolio. At the same time, sustained success in international markets requires continuous improvement in quality

management, sustainable manufacturing practices, technological modernisation, brand development and strategic marketing. Stronger coordination among industry stakeholders, government agencies and export promotion institutions can further enhance the global competitiveness of Indian leather products and strengthen India's position in the European Union market.

Keywords : Indian leather industry, international marketing, European Union, leather exports, non-tariff barriers, quality standards, environmental compliance, global competition.

1. Introduction :

The Indian leather industry is one of the country's most important export-oriented manufacturing sectors. It plays a significant role in economic growth, export earnings and employment generation. After agriculture, it supports the livelihood of millions of people through direct and indirect employment. India's large livestock population, traditional craftsmanship and strong manufacturing base have helped the industry establish a recognised position in international markets. Today, the sector extends far beyond the production of finished leather. It manufactures and exports footwear, bags, belts, garments, travel goods and fashion accessories, making it an integral part of the global leather value chain.

Globalisation, trade liberalisation and rapid advances in digital technology have transformed the nature of international marketing. Market success now depends on more than production capacity. Product quality, design, innovation, timely delivery, brand reputation and compliance with international standards have become equally important. For the Indian leather industry, these factors are particularly significant because a substantial share of its exports is directed towards developed markets, especially the member countries of the European Union.

The European Union is one of the world's largest importers and consumers of leather products. Buyers in this market place strong emphasis on quality, environmental responsibility, worker welfare, chemical safety and transparency throughout the production process. As a result, Indian exporters must satisfy a wide range of regulatory and technical requirements in addition to maintaining price competitiveness. Compliance with quality certification, environmental regulations, product traceability and social standards has therefore become essential for sustained access to the European market. Consequently, the European Union represents both a valuable business opportunity and a highly regulated competitive marketplace for the Indian leather industry.

In recent years, discussions on a proposed India–European Union Free Trade Agreement (FTA) have further highlighted the strategic importance of bilateral trade relations. A reduction in trade barriers and greater regulatory harmonisation could create new opportunities for Indian leather exports. At the same time, non-tariff barriers, stringent environmental requirements, rising production costs,

technological upgradation and increasing global competition continue to influence the industry's international performance.

Against this background, a comprehensive assessment of the international marketing of the Indian leather industry has become increasingly important. Particular attention must be given to the factors affecting India's export performance in the European Union and to the strategies that can strengthen its market position. This study examines the major challenges associated with the international marketing of the Indian leather industry and proposes practical as well as policy-oriented measures to improve its long-term competitiveness in the European Union market.

2. Literature Review :

Mukhopadhyay et al. (2020) examined the global competitiveness of the Indian leather industry. The study argued that production capacity alone cannot sustain export growth. Greater emphasis should be placed on product quality, advanced manufacturing technologies and value-added leather products. The authors also highlighted that compliance with international quality standards is essential for expanding exports to developed markets, particularly the European Union.

Shahriar et al. (2021) analysed the competitive position of major Asian leather-exporting countries. The findings showed that India faces strong competition from China, Vietnam and Bangladesh. The study recommended that Indian manufacturers should reduce their dependence on cost-based competition and strengthen innovation, product quality and brand development to improve their international market position.

Hira et al. (2022) investigated sustainable production practices and environmental compliance in the leather sector. The study concluded that cleaner tanning technologies, effective wastewater treatment and improved worker safety are essential for long-term access to European markets. It identified sustainable production as a key element for future export competitiveness.

Reshma et al. (2023) evaluated the impact of non-tariff barriers on Indian leather exports. The study found that technical regulations, product certification, labelling requirements and quality standards increase export costs and create additional compliance challenges. It suggested that stronger standardisation systems and technical support could help exporters overcome these barriers more effectively.

According to the **APLF Industry Report (2024)**, Germany, Italy, France, Spain and the Netherlands remain the principal destinations for Indian leather products within the European Union. The report further noted rising demand for premium, environmentally sustainable and value-added leather goods. These trends indicate significant opportunities for Indian exporters seeking to expand their presence in high-value market segments.

The **Department-related Parliamentary Standing Committee on Commerce (2025)** presented a detailed assessment of the Indian leather industry. The report identified technological modernisation, quality raw materials, skill development and investment in research and development as critical requirements for export growth. It also emphasised the importance of close coordination between government institutions and industry stakeholders.

The **Council for Leather Exports (CLE, 2026)** analysed India–European Union trade relations and the expected impact of the proposed Free Trade Agreement (FTA). The report indicated that lower tariff barriers, improved compliance with quality standards and greater regulatory alignment could strengthen India's export performance in the European Union. It also recognised sustainable manufacturing, design innovation and global branding as key priorities for future growth.

Research Gap :

The reviewed studies published between 2020 and 2026 primarily focus on export competitiveness, environmental compliance, non-tariff barriers, sustainable production and India–European Union trade relations. However, limited research has examined the international marketing of the Indian leather industry from an integrated perspective. Existing studies rarely combine export performance, marketing challenges, non-tariff barriers, quality standards, environmental compliance and long-term marketing strategies within a single analytical framework. The present study addresses this gap by providing a comprehensive assessment of the major problems and future prospects of the international marketing of the Indian leather industry, with special reference to the European Union.

3. Objectives of the Study :

The present study aims to examine the current status of the international marketing of the Indian leather industry, with particular emphasis on the European Union market. It seeks to identify the major issues affecting export performance and evaluate the factors influencing the industry's competitiveness. The specific objectives of the study are as follows -

- To analyse the present status of the international marketing of the Indian leather industry.
- To examine the major economic, technological and regulatory factors influencing the export of Indian leather and leather products to the European Union.
- To identify the key challenges faced by Indian exporters, including non-tariff barriers, quality standards, environmental compliance and global competition.
- To suggest suitable policy measures and strategic interventions for improving the international competitiveness of the Indian leather industry.
- To assess the long-term export prospects of the Indian leather industry in the European Union market.

4. Research Questions :

The study attempts to answer the following research questions :

- Which factors have the greatest influence on the export performance of the Indian leather industry in the European Union?
- What are the major trade and regulatory challenges affecting the international marketing of Indian leather products?
- Do environmental and quality standards act only as compliance costs, or can they also create a competitive advantage for Indian exporters?
- Which policy and business strategies can strengthen the competitive position of the Indian leather industry in the European Union market?

5. Research Methodology :

This study adopts a qualitative and analytical research approach. It is based entirely on secondary data. Information has been collected from published academic literature, government reports, international trade publications, industry reports and other credible documentary sources. A comparative and critical review of these materials has been undertaken to understand the major issues associated with the international marketing of the Indian leather industry.

The study relies on information published by the Ministry of Commerce and Industry, Government of India, the Council for Leather Exports (CLE), India Brand Equity Foundation (IBEF), the International Trade Centre (ITC), European Union trade documents, peer-reviewed journal articles and previously published academic studies. Industry reports, trade statistics and policy documents have also been consulted wherever relevant.

Rather than presenting descriptive information alone, the study integrates findings from multiple sources through critical synthesis. Comparative analysis has been used to evaluate export performance, trade barriers, environmental compliance, quality standards and competitive issues affecting the Indian leather industry in the European market.

5.1 Sources of Data :

The study is based exclusively on secondary sources. The following data sources have been used -

- National and international research articles
- Reports of the Ministry of Commerce and Industry, Government of India
- Council for Leather Exports (CLE)
- India Brand Equity Foundation (IBEF)
- International Trade Centre (ITC)
- European Union trade documents

- Theses, dissertations and academic databases
- Industry reports and trade publications

5.2 Limitations of the Study :

The study has the following limitations -

- The analysis is based entirely on secondary data. No primary survey or field investigation has been conducted.
- The research focuses specifically on India's leather trade with the European Union. Other international markets are beyond the scope of the study.
- Since the available data have been collected from different sources and reporting periods, the comparative analysis is based on the most recent and reliable information.
- The study is intended to provide analytical and policy-oriented insights. It does not include econometric modelling or advanced financial analysis.

6. Results and Data Analysis :

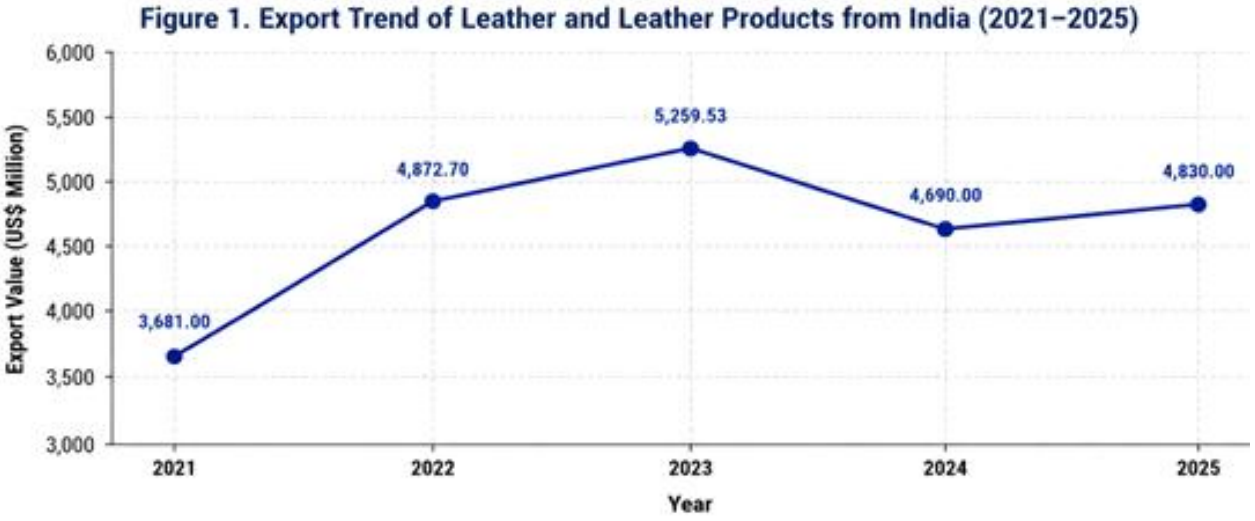
The international marketing performance of the Indian leather industry is influenced by a combination of economic, technological and policy-related factors. The European Union is one of the largest destinations for Indian leather exports. Changes in this market directly affect India's export performance. Based on secondary data, published research and industry reports, this section analyses export trends, major importing countries, product composition and the key challenges associated with international marketing.

6.1 Export Performance of the Indian Leather Industry :

The Indian leather industry has remained one of India's major foreign exchange earning sectors. Export performance fluctuated during the study period because of changing global economic conditions, the COVID-19 pandemic, supply chain disruptions and evolving international trade policies. Despite these challenges, the European Union continued to be one of the most important destinations for Indian leather and leather products.

Table 1. Year-wise Export of Leather and Leather Products from India

Year	Export Annual Value (US$ Million)	Annual Change (%)
2021	3,681.00	-27.40
2022	4,872.70	+32.37
2023	5,259.53	+7.94
2024	4,690.00	-10.83
2025	4,830.00	+2.98



Analysis :

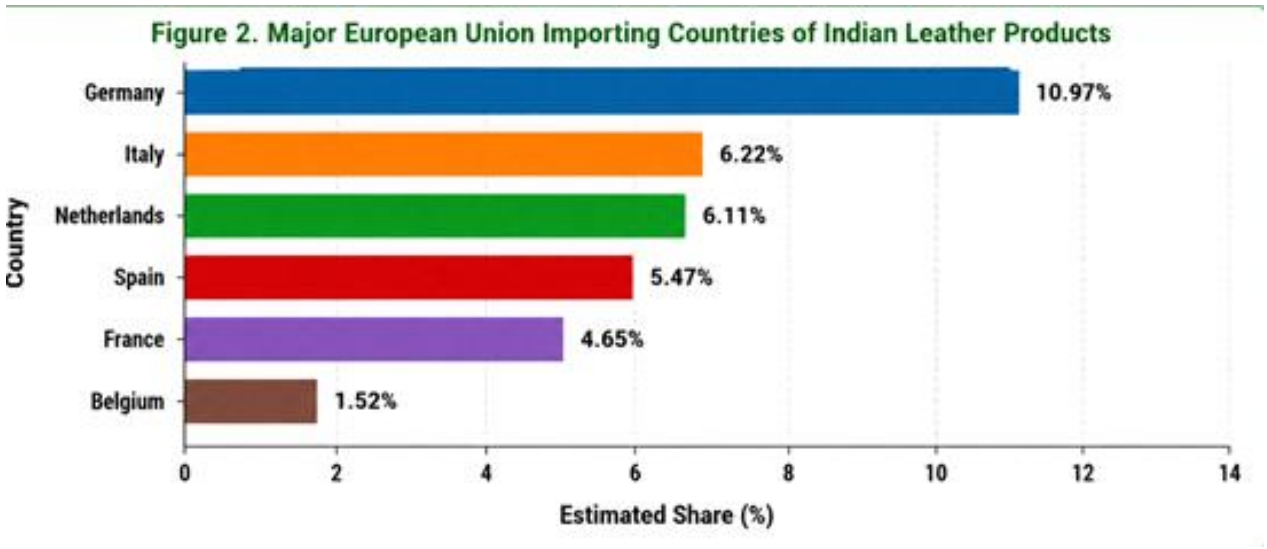
The export data reveal noticeable fluctuations during the study period. Exports declined significantly in **2021**, recording a **27.40%** decrease. A strong recovery followed in **2022**, when exports increased by **32.37%**. Growth continued in **2023**, although at a slower rate of **7.94%**. Export earnings declined again in **2024** by **10.83%**, reflecting changes in global demand and international market conditions. In **2025**, exports recovered moderately with a growth rate of **2.98%**. Overall, the data suggest that although export performance remained volatile, the Indian leather industry maintained its position in international markets, particularly within the European Union.

6.2 Analysis of Major Importing Countries in the European Union :

The European Union represents one of the most significant export markets for Indian leather products. Export demand, however, varies across member countries. Germany, Italy, the Netherlands, Spain, France and Belgium account for a substantial share of India's leather exports. These countries differ in consumer preferences, industrial demand and product requirements. Therefore, market-specific export strategies are essential.

Table 2. Major Importing Countries in the European Union

Country	Major Imported Product	Estimated Share (%)
Germany	Leather Footwear	**10.97**
Italy	Finished Leather	**6.22**
Netherlands	Mixed Leather Products	**6.11**
Spain	Leather Garments	**5.47**
France	Leather Goods	**4.65**
Belgium	Leather Accessories	**1.52**



Analysis :

Germany is the largest European destination for Indian leather exports, accounting for an estimated **10.97%** share. Leather footwear constitutes the principal export category in this market. Italy follows with a **6.22%** share, mainly importing finished leather for further processing. The Netherlands contributes **6.11%** and serves as an important distribution and re-export hub within Europe. Spain (**5.47%**) imports mainly leather garments, while France (**4.65%**) has a strong demand for leather goods. Belgium, although representing a relatively smaller share (**1.52%**), remains an important market for leather accessories. These findings indicate that Indian exporters should adopt country-specific marketing strategies, strengthen product quality and expand value-added product offerings to improve their competitiveness across European Union markets.

6.3 Product-wise Export Structure :

The export portfolio of the Indian leather industry has expanded beyond finished leather. Value-added products now account for an increasingly important share of international trade. Leather footwear, bags, belts, wallets, gloves and fashion accessories continue to record strong demand in overseas markets, particularly in the European Union.

Table 3. Major Export Products

Product	**Global Demand**	**Market Potential in the European Union**
Leather Footwear	High	Very High
Leather Goods	High	High
Finished Leather	Moderate	Moderate
Leather Garments	Moderate	High
Leather Accessories	High	High

Analysis :

The findings indicate that value-added leather products are expanding more rapidly than traditional finished leather exports. This trend suggests that Indian manufacturers should focus on producing high-quality finished goods rather than depending primarily on raw or semi-processed leather. Greater investment in product diversification, design innovation and quality enhancement can improve export earnings and strengthen India's competitive position in the European Union market.

6.4 Major Factors Influencing Export Performance :

The analysis identifies the following factors as the principal determinants of export performance -

- Quality and safety standards prescribed by the European Union.
- Non-tariff trade barriers.
- Environmental compliance, including REACH regulations.
- Growing global competition.
- Rising production costs.
- Technological modernisation.
- Brand development and international marketing strategies.
- Supply chain efficiency.

These factors collectively shape the international competitiveness of the Indian leather industry. Exporters that invest in quality improvement, technological innovation, environmental compliance and efficient supply chain management are better positioned to achieve sustainable growth in the European Union market.

6.5 Key Findings :

The analysis of available literature and secondary data leads to the following key findings-

- The **European Union** continues to be the largest and most strategic export market for the Indian leather industry.
- Demand for **value-added leather products** is increasing faster than that for traditional finished leather.
- **Quality standards, environmental compliance and product traceability** have become essential determinants of competitiveness in EU markets.
- **Non-tariff barriers** remain a major challenge for Indian exporters.
- **Technological upgradation, design innovation and global branding** are critical for improving export performance.
- Stronger policy support, trade facilitation and industry modernisation can significantly enhance

India's global competitiveness.

7. Major Problems in the International Marketing of the Indian Leather Industry :

Although India is one of the world's leading producers and exporters of leather products, exporters continue to face several challenges in international markets, particularly within the European Union. The findings of this study identify the following major constraints.

7.1 Non-Tariff Barriers and Regulatory Compliance :

Technical standards, product certification, labelling req uirements, REACH regulations and documentation procedures increase both compliance costs and processing time. These requirements create greater difficulties for MSMEs and reduce their international competitiveness.

7.2 Environmental Standards and Technological Constraints :

Compliance with environmental regulations requires investment in cleaner tanning technologies, wastewater treatment and pollution control systems. Limited technological modernisation in many Indian leather units affects productivity and restricts access to premium European markets.

7.3 Global Competition and Quality Management :

India faces intense competition from China, Vietnam and Bangladesh. Competitive advantage now depends on product quality, innovation, design, international certification and consistent quality management rather than low production costs alone.

7.4 Branding, Supply Chain and Market Access :

Weak global branding, dependence on contract manufacturing, logistics constraints and supply chain disruptions reduce export efficiency. Delays in delivery and limited marketing capability further affect India's position in international markets.

7.5 Sustainability, Innovation and Policy Support :

Growing emphasis on ESG standards, traceability, research and development and skilled human resources is reshaping global leather trade. Greater government support, institutional coordination, innovation and skill development are essential for improving the long-term competitiveness of the Indian leather industry.

Overall Analysis :

The findings indicate that the challenges faced by the Indian leather industry extend beyond production. Long-term success in the European Union depends on quality improvement, environmental compliance, technological advancement, strong branding, efficient supply chains and sustainable manufacturing practices. Addressing these areas can significantly strengthen India's competitive position in international leather markets.

8. Discussion :

The findings indicate that the international competitiveness of the Indian leather industry is no longer determined by production capacity or low manufacturing costs alone. Product quality, environmental compliance, technological capability, innovation and effective marketing have become the key drivers of export success, particularly in the European Union. Compliance with EU regulations should not be viewed merely as an additional cost. Instead, it can strengthen product credibility, improve market acceptance and create long-term competitive advantages.

The study also shows that India possesses significant strengths, including abundant raw materials, skilled labour and strong manufacturing capabilities. However, limited technological modernisation, weak global branding and dependence on contract manufacturing continue to restrict export growth. Increasing competition from China, Vietnam and Bangladesh further highlights the need to shift from cost-based competition towards quality-driven and value-added production.

From a business perspective, greater investment in digital marketing, product traceability, design innovation and customer-oriented strategies can improve export performance. At the policy level, stronger coordination among government agencies, research institutions and industry bodies is essential. Support for cleaner production technologies, quality infrastructure, skill development and export facilitation will strengthen the long-term competitiveness of the Indian leather industry in the European Union market.

9. Conclusion :

The study concludes that the Indian leather industry remains one of India's leading export-oriented sectors with considerable potential for long-term growth. Although the industry benefits from abundant raw materials, skilled human resources and diversified product manufacturing, maintaining competitiveness in the European Union requires much more than production efficiency.

The analysis shows that quality standards, environmental compliance, technological advancement, innovation and strategic marketing have become essential for sustained export growth. Challenges such as non-tariff barriers, REACH regulations and increasing global competition can also serve as opportunities for industrial upgrading if addressed through appropriate policy support and technological investment.

Overall, the future competitiveness of the Indian leather industry depends on continuous improvement in quality management, sustainable manufacturing, design innovation, branding and international marketing. A coordinated approach involving industry, government, research institutions and export promotion agencies can significantly strengthen India's position in the European Union market.

10. Policy Recommendations :

Based on the findings of the study, the following policy measures are recommended -

- Promote technological modernisation, automation and digital quality management across the leather industry.
- Provide technical and financial support to help industries comply with European Union quality, environmental and social standards.
- Strengthen R&D, product design, innovation and value-added leather manufacturing.
- Expand global branding, digital marketing and international trade promotion for Indian leather products.
- Encourage sustainable production through cleaner tanning technologies, CETPs, ESG practices and product traceability.
- Improve logistics, skill development, export infrastructure and institutional coordination to enhance long-term export competitiveness.

References :

- **Mukhopadhyay, K., (2020).** Competitiveness and Export Performance of the Indian Leather Industry.
- **Shahriar, S., (2021).** Competitiveness of Asian Leather Exporting Countries: A Comparative Analysis.
- **Hira, A., (2022).** Sustainable Leather Processing, Environmental Compliance and Global Market Competitiveness.
- **Reshma, R., (2023).** Non-Tariff Barriers and Export Challenges for Indian Leather Products in International Markets.
- **APLF. (2024).** *Leather Market Report 2024: Global Trade and European Market Outlook.*
- **Department-related Parliamentary Standing Committee on Commerce. (2025).** *Report on the Development and Export Competitiveness of the Indian Leather Industry.*
- **Council for Leather Exports (CLE). (2026).** *Annual Report 2025–26.*
- **Ministry of Commerce & Industry, Government of India. (2026).** *Export-Import Data and Trade Statistics.*
- **India Brand Equity Foundation (IBEF). (2026).** *Leather Industry Report.*
- **International Trade Centre (ITC). (2026).** *Trade Map: Leather and Leather Products Statistics.*
- **Directorate General of Foreign Trade (DGFT). (2026).** *Export Data for Leather and*

Leather Products.

- **European Commission. (2026).** *EU Trade Policy and Market Access for Leather Products.*
- **World Trade Organization (WTO). (2025).** *World Trade Statistical Review.*
- **UN Comtrade Database. (2026).** *International Trade Statistics for Leather Products.*
- **Organisation for Economic Co-operation and Development (OECD). (2024).** *Global Value Chains and Sustainable Manufacturing.*

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED PRINT RESEARCH JOURNAL
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. 14, Issue 7-8
पृष्ठ : 29–33

भारतीय राजनीति में सत्ता, धर्म और सामाजिक व्यवस्था वैदिक काल से समकालीन भारत तक एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

कुमुदनी कश्यप, शोधार्थी
डॉ. जुल्फिकार,
राजनीतिशास्त्र विभाग, श्री खुशाल दास विश्वविद्यालय, हनुमानगढ़, राजस्थान।

प्रस्तावना :

भारत विश्व की उन प्राचीन सभ्यताओं में से एक है, जहाँ राजनीतिक, सामाजिक तथा धार्मिक विचारों का विकास अत्यंत प्राचीन काल से निरंतर होता रहा है। भारतीय समाज की संरचना केवल राजनीतिक संस्थाओं पर आधारित नहीं रही, बल्कि इसका निर्माण धर्म, संस्कृति, परंपराओं, नैतिक मूल्यों तथा सामाजिक व्यवस्थाओं के समन्वय से हुआ है। भारतीय इतिहास का अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि यहाँ सत्ता (राजनीतिक शक्ति), धर्म (नैतिक एवं सांस्कृतिक व्यवस्था) तथा सामाजिक व्यवस्था (समाज की संगठनात्मक संरचना) सदैव एक–दूसरे के पूरक रहे हैं। इन तीनों तत्वों ने समय–समय पर भारतीय समाज और राजनीति को नई दिशा प्रदान की है तथा राष्ट्र के विकास की प्रक्रिया को प्रभावित किया है।

भारतीय राजनीतिक चिंतन की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता यह रही है कि यहाँ सत्ता को केवल शासन करने का साधन नहीं माना गया, बल्कि उसे समाज के कल्याण, न्याय की स्थापना तथा धर्म की रक्षा का माध्यम समझा गया। प्राचीन भारतीय ग्रंथों 'जैसे वेद, उपनिषद, रामायण, महाभारत, मनुस्मृति तथा कौटिल्य के अर्थशास्त्र' में शासन व्यवस्था, राजधर्म, सामाजिक उत्तरदायित्व तथा नैतिक मूल्यों का विस्तृत वर्णन मिलता है। इन ग्रंथों में राजा को सर्वोच्च शासक अवश्य माना गया है, किंतु उसकी शक्ति को धर्म, न्याय तथा लोककल्याण के सिद्धांतों से नियंत्रित बताया गया है। इस प्रकार भारतीय राजनीति की मूल अवधारणा में सत्ता का उद्देश्य केवल शासन करना नहीं, बल्कि समाज में संतुलन, शांति, सुरक्षा तथा समृद्धि स्थापित करना था।

वैदिक काल में समाज का संगठन परिवार, कुल, ग्राम, जन तथा राष्ट्र जैसी इकाइयों पर आधारित था। उस समय की राजनीतिक व्यवस्था में राजा का चुनाव कई स्थानों पर जनसमर्थन अथवा सभा और समिति जैसी संस्थाओं की स्वीकृति से होता था। इससे यह स्पष्ट होता है कि भारतीय लोकतांत्रिक विचारधारा के प्रारंभिक तत्व प्राचीन काल में भी विद्यमान थे। राजा का प्रमुख कर्तव्य प्रजा की रक्षा करना, न्याय प्रदान करना तथा धर्म के अनुसार शासन करना था। इस काल में धर्म का अर्थ किसी विशेष संप्रदाय या पूजा–पद्धति से नहीं था, बल्कि धर्म का तात्पर्य सत्य, न्याय, कर्तव्य, नैतिकता तथा सामाजिक अनुशासन से था। इसलिए सत्ता और

धर्म के मध्य घनिष्ठ संबंध स्थापित था।

समय के साथ भारतीय समाज में अनेक परिवर्तन हुए। उत्तर वैदिक काल में वर्ण व्यवस्था अधिक संगठित हुई और धीरे–धीरे सामाजिक व्यवस्था जन्म–आधारित होने लगी। प्रारंभ में वर्ण व्यवस्था का आधार व्यक्ति के गुण, कर्म और योग्यता को माना गया था, किंतु बाद के समय में यह कठोर सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तित हो गई। इस परिवर्तन का प्रभाव राजनीतिक सत्ता पर भी पड़ा, क्योंकि शासन व्यवस्था में विभिन्न वर्गों की भूमिका और अधिकारों का निर्धारण सामाजिक संरचना के आधार पर होने लगा। इस प्रकार सामाजिक व्यवस्था और राजनीतिक सत्ता के बीच गहरा संबंध स्थापित हुआ।

महाजनपद काल में भारतीय राजनीति अधिक संगठित और केंद्रीकृत हुई। अनेक छोटे–छोटे जनपद शक्तिशाली राज्यों में परिवर्तित हुए तथा प्रशासनिक व्यवस्था का विकास हुआ। इसी काल में गणराज्यों की परंपरा भी देखने को मिलती है, जहाँ सामूहिक निर्णय लेने की व्यवस्था विद्यमान थी। इसके पश्चात मौर्य साम्राज्य के उदय ने भारतीय राजनीति को नई दिशा प्रदान की। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में राज्य, प्रशासन, न्याय, कर व्यवस्था, विदेश नीति तथा राजधर्म का अत्यंत वैज्ञानिक और व्यावहारिक विश्लेषण मिलता है। कौटिल्य ने राज्य को समाज की सुरक्षा, आर्थिक विकास तथा राजनीतिक स्थिरता का प्रमुख साधन माना। उनके अनुसार सुदृढ़ शासन के बिना समाज का समुचित विकास संभव नहीं है।

मौर्य सम्राट अशोक के शासनकाल में सत्ता और धर्म के संबंधों का एक नया स्वरूप सामने आया। कलिंग युद्ध के पश्चात अशोक ने हिंसा का त्याग कर 'धम्म' की नीति अपनाई। उन्होंने शासन को नैतिक मूल्यों, धार्मिक सहिष्णुता, अहिंसा तथा जनकल्याण से जोड़ने का प्रयास किया। अशोक के अभिलेखों से यह स्पष्ट होता है कि उन्होंने किसी एक धर्म का प्रचार करने के बजाय नैतिक जीवन, मानवता, सहिष्णुता तथा सभी धर्मों के सम्मान पर बल दिया। यह भारतीय राजनीतिक इतिहास का महत्वपूर्ण चरण था, जहाँ सत्ता को नैतिक उत्तरदायित्व के साथ जोड़ा गया।

गुप्त काल में भारतीय संस्कृति, साहित्य, कला तथा धर्म का व्यापक विकास हुआ। इस काल में ब्राह्मण धर्म को राजकीय संरक्षण प्राप्त हुआ तथा सामाजिक व्यवस्था अधिक संगठित हुई। मंदिर केवल धार्मिक केंद्र ही नहीं रहे, बल्कि शिक्षा, अर्थव्यवस्था और सामाजिक जीवन के भी महत्वपूर्ण केंद्र बन गए। राजसत्ता और धार्मिक संस्थाओं के मध्य सहयोग ने समाज की संरचना को स्थिरता प्रदान की, किंतु इसके साथ–साथ सामाजिक असमानताएँ भी अधिक स्पष्ट होने लगीं।

मध्यकालीन भारत में विभिन्न धर्मों, संस्कृतियों तथा राजनीतिक परंपराओं का समन्वय देखने को मिलता है। इस काल में इस्लामी शासन की स्थापना के साथ भारतीय राजनीति में नए प्रशासनिक सिद्धांतों और सांस्कृतिक मूल्यों का प्रवेश हुआ। कुछ शासकों ने धार्मिक नीतियों को शासन का आधार बनाया, जबकि कुछ ने धार्मिक सहिष्णुता और सामाजिक समन्वय को महत्व दिया। विशेष रूप से सम्राट अकबर की 'सुलह–ए–कुल' नीति भारतीय इतिहास में धार्मिक सहिष्णुता तथा सामाजिक एकता का उत्कृष्ट उदाहरण मानी जाती है। इसी काल में भक्ति आंदोलन तथा सूफी आंदोलन ने समाज में समानता, प्रेम, मानवता तथा सामाजिक समरसता के विचारों को प्रोत्साहित किया। इन आंदोलनों ने धर्म को सामाजिक सुधार और जनजागरण का माध्यम बनाया तथा जातिगत भेदभाव और सामाजिक रूढ़ियों का विरोध किया।

औपनिवेशिक काल भारतीय राजनीति के इतिहास में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन का काल था। ब्रिटिश शासन के दौरान भारत में आधुनिक प्रशासनिक व्यवस्था, न्याय प्रणाली, शिक्षा व्यवस्था तथा प्रतिनिधिक संस्थाओं का विकास हुआ। साथ ही अंग्रेजों की 'फूट डालो और शासन करो' की नीति ने धर्म, जाति और समुदाय आधारित राजनीतिक पहचान को भी प्रोत्साहित किया। धार्मिक और सामाजिक संगठनों का राजनीतिक महत्व बढ़ा तथा राष्ट्रीय आंदोलन में धर्म, संस्कृति और राष्ट्रवाद के बीच नए संबंध स्थापित हुए। महात्मा गांधी ने सत्य, अहिंसा तथा नैतिक मूल्यों को स्वतंत्रता आंदोलन का आधार बनाया, जबकि डॉ. भीमराव आंबेडकर ने सामाजिक न्याय, समानता तथा संवैधानिक अधिकारों को भारतीय लोकतंत्र की आधारशिला माना। इन दोनों विचारधाराओं ने भारतीय राजनीति को गहराई से प्रभावित किया।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भारत ने स्वयं को एक संप्रभु, समाजवादी, धर्मनिरपेक्ष तथा लोकतांत्रिक गणराज्य के रूप में स्थापित किया। भारतीय संविधान ने सभी नागरिकों को समान अधिकार प्रदान किए तथा धर्म, जाति, भाषा, लिंग अथवा क्षेत्र के आधार पर किसी भी प्रकार के भेदभाव को अस्वीकार किया। संविधान निर्माताओं ने ऐसी राजनीतिक व्यवस्था की कल्पना की जिसमें सत्ता का स्रोत जनता हो तथा शासन संविधान के सिद्धांतों के अनुसार संचालित हो। भारतीय लोकतंत्र की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यहाँ विविध धर्मों, भाषाओं, संस्कृतियों तथा सामाजिक समूहों के लोग समान रूप से लोकतांत्रिक प्रक्रिया में भाग लेते हैं।

यद्यपि संविधान ने भारत को धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र घोषित किया है, फिर भी समकालीन भारतीय राजनीति में धर्म का प्रभाव पूरी तरह समाप्त नहीं हुआ है। चुनावी राजनीति, सामाजिक आंदोलनों, सांस्कृतिक पहचान तथा जनमत निर्माण में धार्मिक प्रतीकों और मान्यताओं की भूमिका आज भी महत्वपूर्ण है। अनेक राजनीतिक दल धार्मिक एवं सांस्कृतिक मुद्दों को अपने राजनीतिक एजेंडे का हिस्सा बनाते हैं। इसके साथ ही जाति, वर्ग, भाषा, क्षेत्रीय पहचान तथा सामाजिक न्याय जैसे विषय भी भारतीय राजनीति के महत्वपूर्ण आयाम बन चुके हैं। इस प्रकार वर्तमान भारत में सत्ता, धर्म और सामाजिक व्यवस्था के संबंध अत्यंत जटिल, बहुआयामी तथा परिवर्तनशील हैं।

भारतीय समाज की सबसे बड़ी विशेषता इसकी विविधता है। यहाँ अनेक धर्म, भाषाएँ, संस्कृतियाँ तथा सामाजिक परंपराएँ एक साथ विद्यमान हैं। यही विविधता भारतीय लोकतंत्र की शक्ति भी है और चुनौती भी। लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था का उद्देश्य इन सभी समूहों के बीच समानता, न्याय, स्वतंत्रता तथा बंधुत्व की भावना को सुदृढ़ करना है। इसलिए आधुनिक भारतीय राजनीति में सत्ता का मूल्यांकन केवल राजनीतिक सफलता के आधार पर नहीं, बल्कि सामाजिक न्याय, आर्थिक विकास, धार्मिक सहिष्णुता, संवैधानिक मूल्यों तथा लोकतांत्रिक आदर्शों के आधार पर भी किया जाता है।

वर्तमान वैश्वीकरण, सूचना प्रौद्योगिकी, डिजिटल संचार, आर्थिक उदारीकरण तथा सामाजिक परिवर्तन के दौर में भारतीय राजनीति निरंतर नए आयाम ग्रहण कर रही है। आज सत्ता की प्रकृति केवल पारंपरिक शासन तक सीमित नहीं है, बल्कि मीडिया, न्यायपालिका, नागरिक समाज, सामाजिक आंदोलनों तथा जनमत की भूमिका भी अत्यंत महत्वपूर्ण हो गई है। इसी प्रकार धर्म केवल व्यक्तिगत आस्था का विषय नहीं रह गया है, बल्कि सामाजिक पहचान, सांस्कृतिक विरासत तथा राजनीतिक विमर्श का भी प्रमुख आधार बन चुका है। दूसरी ओर सामाजिक व्यवस्था भी निरंतर परिवर्तनशील है, जहाँ शिक्षा, शहरीकरण, आर्थिक विकास, महिला सशक्तिकरण

तथा सामाजिक न्याय की नीतियाँ नए सामाजिक संबंधों का निर्माण कर रही हैं।

इन्हीं ऐतिहासिक, सामाजिक तथा राजनीतिक परिवर्तनों की पृष्ठभूमि में प्रस्तुत शोध 'भारतीय राजनीति में सत्ता, धर्म और सामाजिक व्यवस्था : वैदिक काल से समकालीन भारत तक – एक विश्लेषणात्मक अध्ययन' का उद्देश्य यह समझना है कि भारतीय इतिहास के विभिन्न कालखंडों में सत्ता, धर्म और सामाजिक व्यवस्था ने किस प्रकार एक–दूसरे को प्रभावित किया है। साथ ही यह अध्ययन यह भी स्पष्ट करने का प्रयास करेगा कि आधुनिक लोकतांत्रिक भारत में इन तीनों तत्वों की भूमिका क्या है, इनके बीच किस प्रकार का संबंध विकसित हुआ है तथा भविष्य में भारतीय लोकतंत्र और सामाजिक समरसता को सुदृढ़ बनाने के लिए किन मूल्यों और सिद्धांतों को प्राथमिकता दी जानी चाहिए।

निष्कर्ष :

भारतीय राजनीति में सत्ता, धर्म और सामाजिक व्यवस्था का संबंध अत्यंत प्राचीन, जटिल और बहुआयामी रहा है। वैदिक काल से लेकर समकालीन भारत तक के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि भारतीय राजनीतिक व्यवस्था का विकास केवल शासन प्रणालियों के परिवर्तन तक सीमित नहीं रहा, बल्कि इसमें धार्मिक विचारों, सामाजिक संरचनाओं, सांस्कृतिक परंपराओं और नैतिक मूल्यों की भी महत्वपूर्ण भूमिका रही है।

प्राचीन भारत में सत्ता को धर्म और नैतिकता से जोड़ा गया था। राजा को केवल शासक नहीं, बल्कि प्रजा के रक्षक और कल्याणकारी व्यवस्था के संचालक के रूप में देखा जाता था। राजधर्म की अवधारणा इस बात को दर्शाती है कि राजनीतिक शक्ति का प्रयोग समाज के हित और न्याय की स्थापना के लिए किया जाना चाहिए। वैदिक काल की सभा और समिति जैसी संस्थाएँ यह संकेत देती हैं कि भारतीय राजनीतिक चिंतन में जनभागीदारी के तत्व प्रारंभ से मौजूद थे।

मौर्य और गुप्त काल में राजनीतिक सत्ता अधिक संगठित और शक्तिशाली हुई। मौर्य काल में कौटिल्य के विचारों ने राज्य को प्रशासन, सुरक्षा और आर्थिक विकास का प्रमुख माध्यम बताया, वहीं अशोक के शासन में सत्ता को नैतिकता, सहिष्णुता और जनकल्याण से जोड़ा गया। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि भारतीय राजनीतिक परंपरा में सत्ता को केवल शक्ति के रूप में नहीं, बल्कि सामाजिक उत्तरदायित्व के रूप में भी देखा गया।

मध्यकालीन भारत में धर्म और राजनीति के संबंधों में अनेक परिवर्तन आए। विभिन्न धार्मिक और सांस्कृतिक परंपराओं के संपर्क से भारतीय समाज में नए विचारों का विकास हुआ। भक्ति और सूफी आंदोलनों ने सामाजिक समानता, मानवता और धार्मिक सह–अस्तित्व को बढ़ावा दिया। इससे यह सिद्ध होता है कि धर्म केवल राजनीतिक नियंत्रण का माध्यम नहीं रहा, बल्कि कई अवसरों पर सामाजिक सुधार और एकता का आधार भी बना।

औपनिवेशिक काल में सत्ता की प्रकृति में बड़ा परिवर्तन आया। ब्रिटिश शासन ने आधुनिक प्रशासनिक संस्थाओं का विकास किया, लेकिन साथ ही धार्मिक और सामाजिक पहचानें राजनीतिक संघर्ष का आधार भी बनीं। स्वतंत्रता आंदोलन ने यह स्पष्ट किया कि भारत जैसे विविधतापूर्ण समाज में राजनीतिक एकता के लिए समानता, स्वतंत्रता और सामाजिक न्याय आवश्यक हैं।

स्वतंत्र भारत में संविधान ने सत्ता के स्वरूप को लोकतांत्रिक और जनकल्याणकारी बनाया। भारतीय संविधान ने सभी नागरिकों को समान अधिकार प्रदान किए और धर्मनिरपेक्षता के माध्यम से राज्य को सभी धर्मों के प्रति

समान दृष्टिकोण रखने का सिद्धांत दिया। आधुनिक भारत में सत्ता का वास्तविक आधार जनता की इच्छा, संविधान और लोकतांत्रिक संस्थाएँ हैं।

अध्ययन से यह भी स्पष्ट होता है कि समकालीन भारतीय राजनीति में धर्म, जाति, क्षेत्र और सामाजिक पहचान अभी भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। धर्म राजनीतिक विमर्श को प्रभावित करता है, लेकिन लोकतांत्रिक व्यवस्था की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि धार्मिक विविधता और सामाजिक समानता के बीच संतुलन कैसे स्थापित किया जाता है। सामाजिक न्याय, संवैधानिक मूल्यों और नागरिक अधिकारों की रक्षा आधुनिक भारतीय राजनीति की प्रमुख आवश्यकता है।

कूंजी शब्द :

भारतीय राजनीति, सत्ता, धर्म, सामाजिक व्यवस्था, राजधर्म, वैदिक काल, प्राचीन भारतीय राजनीतिक चिंतन, महाजनपद व्यवस्था, मौर्य साम्राज्य, कौटिल्य का अर्थशास्त्र।

संदर्भ सूची :

1. कौटिल्य अर्थशास्त्र, संस्कृत ग्रंथ, भारतीय राजनीतिक एवं प्रशासनिक चिंतन का प्रमुख स्रोत।
2. ऋग्वेद वैदिक साहित्य, प्राचीन भारतीय सामाजिक, धार्मिक एवं राजनीतिक व्यवस्था का महत्वपूर्ण स्रोत।
3. रामायण महर्षि वाल्मीकि, भारतीय राजधर्म और सामाजिक मूल्यों का महत्वपूर्ण ग्रंथ।
4. महाभारत वेदव्यास, विशेष रूप से शांति पर्व में राजधर्म और शासन व्यवस्था का वर्णन।
5. मनुस्मृति मनु, प्राचीन भारतीय सामाजिक व्यवस्था और धर्म संबंधी विचारों का स्रोत।
6. शर्मा, राम शरण प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
7. कोसांबी, डी. डी. प्राचीन भारत की संस्कृति और सभ्यता, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
8. थापर, रोमिला प्राचीन भारत का इतिहास, पेंगुइन/अलेफ प्रकाशन, नई दिल्ली।
9. चंद्र, बिपिन भारत का स्वतंत्रता संघर्ष, हिंदी माध्यम संस्थान, नई दिल्ली।
10. आंबेडकर, डॉ. भीमराव – जाति का विनाश, सामाजिक समानता और जाति व्यवस्था पर महत्वपूर्ण ग्रंथ।

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED PRINT RESEARCH JOURNAL
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. 14, Issue 7-8
पृष्ठ : 34–39

यशपाल के उपन्यासों में स्त्री–विषयक आयाम

नेहा सक्सेना
शोधार्थी, हिंदी विभाग, अलीगढ मुस्लिम विश्वविद्यालय।

शोध पत्र सार :

आधुनिक हिंदी साहित्य में नारी–चेतना एक महत्त्वपूर्ण विमर्श के रूप में उभरती है। भारतीय समाज में नारी की स्थिति समय, सामाजिक संरचना, पारिवारिक व्यवस्था तथा पुरुष–प्रधान मानसिकता के कारण निरंतर परिवर्तित होती रही है। प्रस्तुत शोध में यशपाल के उपन्यासों में चित्रित नारी–जीवन, नारी–चेतना, नारी–अस्मिता, स्वतंत्रता तथा सामाजिक संघर्ष का अध्ययन किया गया है। यशपाल ने अपने उपन्यासों में नारी को केवल करुणा या सहानुभूति की पात्र के रूप में प्रस्तुत न करके उसके सामाजिक, आर्थिक और वैचारिक अस्तित्व को भी प्रमुखता दी है। यशपाल के उपन्यासों में नारी के विविध रूप दिखाई देते हैं। उनकी स्त्री–पात्रों को मुख्यतः उच्चवर्गीय, मध्यमवर्गीय और निम्नवर्गीय सामाजिक परिस्थितियों के संदर्भ में देखा जा सकता है। झूठा सच की तारा, मनोरमा, मिसेज अग्रवाल और कनक, दादा कामरेड की यशोदा, पार्टी कामरेड की गीता, देशद्रोही की राज और चंदा, तेरी–मेरी–उसकी बात की उषा, बारह घंटे की विनी और जेनी तथा मनुष्य के रूप की सोमा आदि पात्र नारी–जीवन के विभिन्न पक्षों को उद्घाटित करते हैं। इन पात्रों के माध्यम से यशपाल ने स्त्री के संघर्ष, साहस, आत्मनिर्भरता, प्रेम, पारिवारिक दायित्व, सामाजिक रूढ़ियों और स्वतंत्र अस्तित्व की आकांक्षा को अभिव्यक्ति दी है। अध्ययन से स्पष्ट होता है कि यशपाल की नारी–पात्रों में विशेष रूप से मध्यमवर्गीय नारी का स्वरूप अधिक प्रभावशाली रूप में सामने आता है। वह पारिवारिक दायित्वों और सामाजिक रूढ़ियों से बंधी होने के बावजूद अपने व्यक्तित्व और अधिकारों के प्रति जागरूक होती है। तारा जैसी स्त्री विपरीत परिस्थितियों में भी आत्मविश्वास बनाए रखती है, जबकि यशोदा और गीता के माध्यम से नारी के सामाजिक तथा राजनीतिक दायित्वों को रेखांकित किया गया है।

इसी प्रकार राज का राजनीतिक गतिविधियों में सहयोग और यशोदा द्वारा क्रांतिकारी की सहायता नारी की सक्रिय सामाजिक भूमिका को सामने लाता है। यशपाल ने नारी के शोषण के अनेक रूपों को भी रेखांकित किया है। पितृसत्तात्मक व्यवस्था, विवाह संस्था की रूढ़ियाँ, आर्थिक निर्भरता, सामाजिक मर्यादाएँ तथा स्त्री के चरित्र को लेकर निर्मित दोहरे मानदंड उनके साहित्य में आलोचना के विषय बनते हैं। मनुष्य के रूप की सोमा के माध्यम से विधवा–जीवन की कठिनाइयों को सामने लाया गया है, वहीं देशद्रोही की चंदा और झूठा सच की मनोरमा के माध्यम से यह स्पष्ट होता है कि शिक्षित और आधुनिक स्त्री भी सामाजिक एवं पारिवारिक मानसिकता

के बंधनों से पूरी तरह मुक्त नहीं हो पाती। यशपाल के यहाँ नारी–मुक्ति का प्रश्न आर्थिक स्वावलंबन और सामाजिक समानता से भी जुड़ा हुआ है। वे स्त्री को पुरुष की अधीनस्थ सत्ता के रूप में स्वीकार नहीं करते, बल्कि दोनों को परस्पर पूरक मानते हैं। उनके साहित्य में प्रेम, सहानुभूति, समानता और स्वतंत्र व्यक्तित्व को स्वस्थ स्त्री–पुरुष संबंधों का आधार माना गया है। विवाह संस्था के संदर्भ में भी यशपाल प्रेम और विश्वास को प्रमुख मानते हैं तथा केवल सामाजिक दिखावे अथवा बंधन के रूप में विवाह की आलोचना करते हैं। इस प्रकार यशपाल के उपन्यासों में नारी–चित्रण तत्कालीन भारतीय समाज की वास्तविक परिस्थितियों से गहरे रूप में जुड़ा हुआ है। उनके स्त्री–पात्र परंपरा और आधुनिकता, बंधन और स्वतंत्रता, शोषण और प्रतिरोध तथा आश्रितता और आत्मनिर्भरता के बीच संघर्ष करती हुई दिखाई देती हैं। यशपाल ने नारी को केवल परिवार की सीमा में देखने के बजाय उसे सामाजिक परिवर्तन की सक्रिय शक्ति के रूप में प्रस्तुत किया है। अतः उनके उपन्यासों में व्यक्त नारी–चेतना आधुनिक स्त्री–विमर्श के अनेक प्रश्नों की पूर्वपीठिका निर्मित करती है और हिंदी उपन्यास में नारी–अस्मिता तथा स्वतंत्रता के विकास को समझने के लिए महत्त्वपूर्ण आधार प्रदान करती है।

मूल शब्द : नारी–चेतना, नारी–सर्जना, नारी–अस्मिता, नारी–मुक्ति, स्त्री–स्वतंत्रता, पितृसत्तात्मक व्यवस्था, स्त्री–शोषण, आर्थिक स्वावलंबन, सामाजिक समानता।

मूल आलेख :

आधुनिक हिंदी साहित्य में नारी, चेतना और सर्जना के बीचों–बीच खडी दिखाई देती है पश्चिम के प्रभाव के कारण इस काल में नई चेतना का विकास हुआ। हिंदी साहित्यकारों ने स्त्री पात्रों के प्रति पूरी संवेदना के साथ उनकी महानता का चित्रण किया है। औरतों को लेकर पिछले ५० वर्षों में काफी काम हुआ है मगर समाज–शास्त्र की दृष्टि से स्त्री–विमर्श हिंदी साहित्य में बहुत बाद में बहस का मुद्दा बना। सं १९७४ में श्प्रगतिशील महिला संगठन का गठन हुआ। इसके बाद महिला मुद्दों को अखबारों पत्रिकाओं आदि में प्रमुख स्थान मिलने लगा। वैदिक काल नारी का उतकर्ष काल रहा है, किन्तु धीरे–धीरे समय चक्र के परिवर्तन के कारण नारी के पराभव और शोषण का युग प्रारम्भ हो गया। स्त्री के प्रति व्यवस्था का रवैया निश्चित मानदंडों, आदर्शों के नियम व्यवहारों से संचालित होता रहा है। जिसमें स्त्री को तय कर दी गई भूमिका में निर्धारित आदर्श आचरण संहिता के अनुसार जीना है, जिसके निर्धारण का अधिकार शताब्दियों से पुरुषों ने अपने पास सुरक्षित रखा है। जिसके कारण नारी को आत्म संघर्ष करना पड़ता है।

यदि एक नारी अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष करती है और अपने अधिकारों की मांग है तो उसे परिवार के ही सदस्यों की ही बगावत सहन करनी पड़ती है। स्वयं नारी को भी यह भय होता है कि कहीं अधिकारों की चाह में उसका परिवार ही नहीं बिखर जाए लेकिन अब यह स्थिति प्रत्येक नारी की नहीं है। कुछ हद तक नारियां आगे बढ़ गई है, वह अपने अधिकारों को प्राप्त करती है क्योंकि वह आज शिक्षित एवं आत्मनिर्भर है।

यशपाल ने अपने उपन्यासों में काल्पनिक दुनिया से दूर हटकर वास्तविक सामाजिक व्यवस्था को उकेरा। भारतीय समाज ३ वर्गों के परिवारों में विभाजित हुआ है। पहले वर्ग में उच्च वर्गीय नारी होती है जो कामकाज में आलसी, अमीर और सम्पन्न घरों की मालकिन होती है। उन्हें किसी प्रकार का बंधन पसंद नहीं होता है। वह उन्मुक्त वातावरण में जीना पसंद करती हैं। 'झूठा सच' में मिसेज अग्रवाल आधुनिकता व फैशन अपनाने वाली

उच्चवर्गीय नारी का प्रतिनिधित्व करती है। इन्हें दूसरे की भावनाओं की कोई कदर नहीं रहती। वे अपनी नौकरानी का भी जब चाहे अपमान करने से नहीं चूकती।

'तुम यहां नौकरी करती हो या रंगरलिया करने आई हो? कहाँ गई थी?'[1]. दूसरी और कनक एक स्वतंत्र व उन्मुक्त वातावरण में पली बढ़ी उच्चवर्गीय नारी है, जो सम्पन्न व् आधुनिक होते हुएभी किसी किस्म का दिखावा नहीं करती।

दूसरा वर्ग मध्यम वर्गीय नारी का है जो समाज का अहम भाग है। यदि मध्यम वर्गीय नारी पात्रों की बात की जाए तो तारा (झूठा सच), यशोदा (दादा–कामरेड). गीता (पार्टी कामरेड), उषा (तेरी मेरी उसकी बात), विनी, जेनी (बारह घंटे) आदि नारियां मध्यम वर्गीय नारी का प्रतिनिधित्व करती हैं। 'झूठा सच' की नायिका तारा ऐसी नारी का प्रतिनिधित्व करती है। जिसका मन चिंता में डूब रहा था जो विपत्तियों के बाद भी साहस नहीं छोड़ती। वह अपने आत्मविश्वास से समाज से टक्कर लेने का भी प्रयास करती है। दादा कामरेड की पात्रा यशोदा एक ऐसी मध्यम वर्गीय नारी है जो शादी के बाद अपने घर संसार के कर्तव्यों के प्रति स्वयं को समर्पित कर घर की चारदीवारी में ही अपनी दुनिया समेटे हुए रखती है। इस तरह यशपाल की मध्यम वर्गीय नारी पात्र संघर्ष शील, साहसी व् प्रगतिशील नारी के रूप में प्रकट होती है जो स्वयं को सामाजिक रूढ़ियों से ऊपर उठाने व अपनी अस्मिता को पहचानने को प्रयासरत हो उठती है।

तीसरा वर्ग निम्नवर्गीय नारियों का है जो अभाव और हीनता से ग्रसित होकर अपना जीवन बिताती है। एक निम्नवर्गीय नारी किस तरह विषम परिस्थितियों में अपना जीवन बिताती है, कभी बदलती है और कभी उसे मर्यादित सीमाओं का भी उललंघन करना पड़ता है। जिस प्रकार सीता एक ऐसी नारी है, जो निम्नवर्गीय परिवार से है। जो आर्थिक अभावों के कारण अपने जीवन में आजादी और सुख सुविधायें प्राप्त करने के गलत राह पर चल पड़ती है तारा उसे समझाने का भी भरसक प्रयत्न करती है। 'तारा कहती है 'सीता – यह ढंग ठीक नहीं है तुझे कुछ लिहाज शर्म नहीं हैष। सीता क्या किया है मैंने क्या हँसे खेले भी नहीं।'[2].

इस प्रकार यशपाल जी ने विभिन्न वर्ग की नारी की स्थिति को स्पष्ट किया है लेकिन वास्तविक रूप में यदि उपन्यासों की मुख्य पात्रों को देखा जाए तो मध्यम वर्गीय नारी ही इनके उपन्यासों की प्रमुख पात्रा रही है जैसे देशद्रोही अर्थात कहने का अभिप्राय यह है कि मध्यमवर्गीय नारी के रूप का यह पहलू इनके साहित्य में परिलक्षित होता है। यशपाल जी एक महान क्रान्तिकारी रहे हैं। इनके स्वाधीनता आंदोलन का संघर्ष इनकी साहित्य रचना पर भी बखूबी दिखाई देता है। 'गीता पार्टी कामरेड' उपन्यास की नायिका गीता कम्युनिस्ट पार्टी से संबंध रखती है। वह अपनी पार्टी के लिए सम्पूर्ण निष्ठां से कार्य करती है। उसकी यही निष्ठां भावरिया जैसे युवक को भी सुधरने पर मजबूर कर लेती है। इसी तरह दादा कामरेड की पात्रा यशोदा एक ऐसी मध्यम वर्गीय नारी है जो अपने घर में शरण लेने आए क्रांतिकारी की छिपकर मदद करती है क्योंकि उसके मन में देश के लिए असीम प्यार छुपा हुआ है।' उसका अपना लड़का दादी की बगल में सुरक्षित सोया हुआ है परन्तु किसी दूसरी माँ का लड़का मौत के विकराल दांतों से निकल भागने की चेष्टा में उसके आँचल में आ पड़ा है।[3] 'देशद्रोही की पात्रा राज भी ससुराल वालों के विरोध के बावजूद कांग्रेस पार्टी के कार्यों में अपना भरपूर सहयोग देती है।

नारी के विविध रूपों के संसर्ग में यदि देखा जाए तो यशपाल जी का 'मनुष्य के रूप' का विशेष महत्व है। सोमा इस उपन्यास की प्रमुख पात्रा युवावस्था में ही विधवा हो जाती है। एक शोषित विधवा के जीवन की शोचनीय दशा को जिस तरह यशपाल जी ने चित्रित किया है। वह विधवा के जीवन की शोचनीय दशा को प्रस्तुत करता है। 'लड़की तो पराए घर की अमानत है पर भाई, विधवा बहू तो जिंदगी भर का जंजाल है परन्तु सोमा पर इन बातों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता वह परिश्रमी बनकर एक प्रगतिवादी नारी के रूप में नजर आती है।'[4].

कहा जाता है पति–पत्नी एक ही गाड़ी के दो पहिए हैं लेकिन फिर भी इनके विचारों में असमानता होती है। पत्नी का अपनी इच्छानुसार आचार व्यवहार करना पुरुष को कभी अच्छा नहीं लगता। समानता के दावे का अर्थ पति के अधिकार को चुनौती देना है। पुरुष सोचता है प्रेम में समानता का क्या प्रश्न? 'देशद्रोही' की पात्रा चंदा अपने पति राजाराम के अनुरूप ही अपना जीवन व्यतीत करती थी लेकिन फिर भी वह चंदा पर संदेह की दृष्टि रखता है। उसके पति राजाराम के कहे शब्दों से आहत हो उठती है 'पुण्य और धर्म के विराट शब्दों की आड में राजाराम की पीढ़ी स्त्री की समस्त को निगल कर उन्हें पैर की जूती का अस्तित्व प्रदान करती है'।[5]. शिक्षित व आधुनिक सोच की होकर भी नारी पूरी तरह स्वतंत्र नहीं है। घर व् समाज की दकियानूसी सोच उसे असहाय बना देती है। इसका चित्रण यशपाल ने झूठा सच श्की नायिका मनोरमा के माध्यम से किया है। कहने का आशय है कि सामाजिक व्यवस्था पूरी तरह बदल गई है परन्तु पितृसत्तात्मक सोच वहीं है। एक औरत पूरी तरह स्वतंत्र होकर जीवन जीना चाहे तो भी उसे ऐसा अधिकार नहीं है। ऐसा भी नहीं है कि सभी जगह पुरुष ही अत्याचारी बनें। यशपाल ने झूठी आदर्शवादिता का पर्दा ओढ़ने वाली नारी की स्वार्थ परक स्थिति को चित्रित किया है। 'मनुष्य के रूप' की सोमा, जो एक संघर्ष शील नारी रही है, लेकिन जब वह सफलता को प्राप्त कर लेती है तो वह अपने पति धनसिंह को, जिसने सोमा के बुरे वक्त में उसके लिए काफी कष्ट उठाए, जेल भी जाना पड़ा, लेकिन सोमा उसे पहचानने से इनकार कर देती है। एक नारी के कितने रूप हो सकतें हैं, उसका वर्णन यशपाल ने अपने उपन्यासों में बखूबी किया है।

यशपाल के उपन्यासों पर इस संदर्भ में दृष्टिपात किया जाए तो विवाह पर उनके विचार इनके विविध भावों के माध्यम से प्रकट होते हैं। ये मानते हैं कि विवाह की सार्थकता वही है जहां स्त्री पुरुष में प्रेम और विश्वास हो। यदि विवाह से रिश्तों में अलगाव ही महसूस हो तो वह रिश्ता अवांछनीय होता है। श्क्यों फसें श्का नायक भास्कर विवाह संस्था को पूरी तरह नकारता है। वह अपने नजदीकी रिश्तों में दाम्पत्य संबंधों की टूटन व् अविश्वसनीयता देख कर वैवाहिक बंधन में फंसना नहीं चाहता और न ही किसी स्त्री को फँसाना अर्थात पुरुष की ही भांति नारी भी विवाह जैसे बंधन को दिखावे के तौर पर ही निभाती है। यशपाल के उपन्यासों में नारी की यही धारणा वर्तमान नारी की विचारधारा से साम्य रखती है। यशपाल ने उपन्यासों के माध्यम से तत्कालीन सामाजिक और आर्थिक व्यवस्था की ओर दृष्टि डाली है उनकी अच्छाइयों की ओर ध्यान आकर्षित किया है इन्होने अपने उपन्यासों में समाज के यथार्थ रूप का वर्णन किया है।

ये मानते है कि परिवार से ही समाज बनता है। समाज में हर समय कुछ न कुछ परिवर्तन होते ही रहते हैं। जिसके फलस्वरूप उसके व्यक्तित्व, संबंध तथा सामाजिक स्थिति में बहुत से दोष पनपने लगते है। यशपाल ने अपने जीवन में आए व्यक्तियों के प्रसंगों के माध्यम से इस परिवर्तन को समीपता से शब्दबद्ध किया है इन्होने

मनुष्य के मन में आए विकारों के साथ साथ दूषित समाज व्यवस्था में विशेषकर नारी के साथ होने वाले भेदभाव को प्रस्तुत किया है। इनके उपन्यासों में स्त्री चरित्रों के मुख्यतः दो रूप देखने को मिलते हैं, जिसमें पहला रूप उन स्त्री चरित्रों का है जो हमारे अतीत के गौरव, सम्मान, आदर्शों, धर्म. संस्कृति, परम्पराओं ओर रीति–रिवाजों मान्यताओं को लेकर चलती है, दूसरा रूप वह है जो इन सबका विरोध करती है।

यशपाल स्त्री स्वतंत्रता के पूर्ण समर्थक हैं। उनका मत है कि यदि युवक तथा युवती का परस्पर शुद्ध व्यवहार हो तो सहशिक्षा से भी किसी प्रकार की हानि नहीं है। यह मानना चाहिए कि जब पुरुष और स्त्री का आपस में स्नेह और सहानुभूति हो तो कामुकता का अंश थोड़ा ही रह जाता है। वैसे भी कामुकता विषयक पवित्रता को ही स्त्री के आधार की एकमात्र कसौटी नहीं माननी चाहिए और भी अनेक ऐसे गुण हैं, जिन्हे प्राप्त कर वह महान बन सकती है। स्त्री और पुरुष दोनो एक दूसरे के पूरक हैं, एक के अभाव में स्त्री और पुरुष की दुर्गति मानते है। सच ही है इनके साहित्य में जहाँ एक और युग का सच्चा चित्रण हुआ है, वहीं दूसरी और प्रेम, सहानुभूति, तपस्या, सेवा आदि मूल्यों का जोरदार समर्थन उनमें है। स्त्री जीवन में आने वाले कष्टों को सहकर वह मैले कुचले, पुराने वस्त्र पहनकर, आभूषण विहीन होकर, आधे पेट सूखी रोटी खाकर, झोंपड़े में रहकर, मेहनत मजदूरी कर, सब कष्टों को सहकर भी आनंद से जीवन बिताती है परन्तु तभी, जब उसे समाज में आदर प्राप्त हो, परिवार में प्रतिष्ठा हो। यशपाल ने अनुभव किया है कि नारी धन की नहीं बल्कि प्रेम की भूखी है।

नारी अपने जीवन में माँ, बहन, पत्नी, पुत्री आदि विविध रूपों में जीवन व्यतीत करती है। वह परिवार व् समाज के विकास में अपना बहुमूल्य योगदान देती है परन्तु फिर भी उसके अस्तित्व का पुरुष प्रधान समाज में कोई मूल्य नहीं रहता। एक साहित्यकार की रचनाओं पर उस युग की परिस्थितियों का प्रभाव पड़ता है। यदि यशपाल के उपन्यासों पर दृष्टिपात किया जाए तो ऐसा प्रतीत होगा कि उन्होनें आज के मुखर हो रहे प्रश्नों को अपने ही युग में पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया है। वर्णवादी व्यवस्था में नारी की स्थिति देखी जाई तो नारी के प्रेम को हमेशा शंका की दृष्टि से देखा जाता है। नारी की स्थिति अत्यंत दयनीय होती है। उच्च कुल में जन्म लेकर भी 'दिव्या' उपन्यास की पात्रा पुरुष समाज के शोषण का शिकार बनती है। 'स्त्री केवल पुरुष के विलास की वस्तु है, जिसे कुल के लिए संतान उतपन्न उस कुल के गौरव के लिए ही जीना और मरना है'[6]. एकस्थान पर दिव्या कहती है, 'ज्ञानी आचार्य, कुलवधू का सम्मान, कुलमाता का आदर और कुल महादेवी का अधिकार आर्यपुरुष का प्रश्रय मात्र है। वह नारी का सम्मान नहीं, उसे भोग करने वाले पुरुष का सम्मान है?

यशपाल उन सभी सभी सामाजिक रूढियों का विरोध करते हैं जो नारी को एक पिंजरे रूपी घर में बांधकर रखतें हैं। यशपाल नारी को स्वतंत्र विचरण करने का भरपूर अवसर देतें है। इसलिए उनके उपन्यास स्थलों पर लेखन में कई स्थलों पर नारी स्वतंत्रता, नारी अस्मिता, नारी चेतना जैसे प्रश्नों पर अपनी मताभिव्यति दी है तथा वह चाहतें हैं कि नारी आर्थिक स्वावलम्बी बने तथा पुरुषों के समान अधिकार प्राप्त करके समाज में अपनी पृथक पहचान बनाए।

संदर्भ सूची :

1. झूठा सच यशपाल, लोकभारती प्रकाशन, इलाहबाद,।'० १५७, संस्करण २००५

2. झूठा सच यशपाल, लोकभारती प्रकाशन, इलाहबाद, पृ० २५८, संस्करण २००५
3. दादा कामरेड– यशपाल, लोकभारती प्रकाशन, इलाहबाद, पृ० ७, संस्करण १९९७
4. यशपाल व्यक्तित्व और कृतित्व प्रदीप सक्सेना (यशपाल समाज और इतिहास की जनवादी पड़ताल) (आलेख), प्रि० ५९, सरोज गुप्त, ।'० ५९, अनुराग प्रकाशन, अजमेर संस्करण १९७९
5. यशपाल व्यक्तित्व और कृतित्व प्रदीप सक्सेना, यशपाल, रचनात्मक पुनर्निवास की एक कोशिश (आलेख), मधुरेश, ।'० २९०, अनुराग प्रकाशन, अजमेर संस्करण १९७९
6. दिव्या– यशपाल, पृ० २०२, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली–110002 संस्करण १९८६
7. मनुष्य के रूप दिव्या, पृ० २७ लोकभारती प्रकाशन, इलाहबाद संस्करण १९९६

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED PRINT RESEARCH JOURNAL
Vol. 14, Issue 7-8
पृष्ठ : 40–44

Raushanara Bagh Before Roshanara Garden

Anjali Rajput
M.A (History), University of Delhi.

Abstract :

Gardens or *Baghs* in the 17th century were not just a glorious symbol of mughal architecture, but also a "physical marker" for a royal woman to mark her identity, legitimacy and sovereignty in the social and political domain. Gardens were the 'visible contribution' of females in the architectural spaces; where they can host gatherings and have leisure time in an open air. Raushanara Bagh, one of a living remnant of 17th century mughal city- Shahjahanabad; is one of the gardens which shows the identity, power and sovereignty of mughal emperor Aurangzeb's sister and Shahjahan's second daughter- Raushanara Begum. This article, seeks into the life of raushanara begum as a royal woman through her commissioned garden and, explores the chronology of raushanara bagh from the time of it's building to the time before it was converted into a colonial era- Roshanara Club in 1922.

Keywords - Gardens, Mughal Architecture, legitimacy, Visible Contribution. Raushanara Begum, Shahjahanabad, Aurangzeb, Roshanara Club, Colonial Era.

Introduction :

In mughal architecture, gardens have always been a space for "private" gatherings with limited access for royal members. They were built to serve the purpose of pleasure and leisure time for royal members of the family, in a cool atmosphere through inbuilt water channels and greenery. Mid-17th century indicates the shift in the purpose of making these garden from the "private spaces" to the places of "public gatherings", "intentional hosting" and "political meetings" of royals in a monumental space. Now, in late 1600s gardens were used as extended palace compartments to stay or to host ceremonies and assemblies. Although, the gardens were not essentially "women dominated spaces" but surely an architectural space "commissioned by women". we can see the references of *baghs* in primary texts like- *Baburnama, Humayunama* and *Tuzuk-i Jahangiri* or foreign travelogues like- Bernier's "*travel in the mughal empire*" and Manucci's "*Storio do Mogor*" describing gardens as a space for formal meetups of royal family members including royal men and women or a regular

space used by male and female visitors and officials also. On one hand the usage of gardens was for both men and women with strict protocols but, on the other hands; according to travelogues, gardens were predominantly owned, designed, maintained and organised by royal women, solely. The gardens of the city *Shahjahanabad,* particularly- Raushanara Garden, show the 'curatorship' and perfect organisations of *baghs/*gardens by women.

Princess Raushanara Begum :

Raushanara- "the light of princesses" or "the princess of enlightened mind", as Bernier describes[1]; was born in 1617 A.D(1026 A.H) in Burhanpur[2]. She was the second daughter of Shahjahan and Mumtaz Mahal. She was younger from Dara Shikoh and Jahanara Begum, but elder from the Aurangzeb, Murad Baksh and third sister Gauharara Begum. Foreign Travellers like- Tavernier[3], Bernier[4] and Manucci[5] had described her as "beautiful", "intelligent" and "bright" but "less than" her elder sister Jahanara. Contemporary imperial sources defined her personality in comparison to her sister Jahanara and within the discussion on war of succession where she took the stand for her dear brother Aurangzeb. Despite having qualities and being talented, she was a level lower in the status and power of Jahanara begum and less loved by her father in compare of Jahanara and Dara Shikoh, which made them the "enemies" in eyes of raushanara begum. In the war of succession also, similar experiences sided her with Aurangzeb, who succeeded in getting the throne after his father. During the war, Raushanara helped her brother Aurangzeb by sending all the important news and activities against him happening in the palace. She even sent secret spies to sent urgent messages and information for Aurangzeb, while in deccan[6]. Her affection was acknowledged by Aurangzeb, after victory, where he promoted raushanara to the rank of "Padshah Begum" and grant her the right to issue *Nishans* (imperial orders)[7]. She enjoyed power and prestige during this time and within this period, she also commissioned the making of her first and last independent work – Raushanara Bagh (1650 A.D).

But after some time, tensions began to arose between Aurangzeb and Raushanara, due to lack of loyalty. There are two key issues documented in the sources. First, Tavernier records the incident of young men found in the apartment of raushanara begam, late at night[8]. As of consequences, Aurangzeb fired the eunuchs and officers on duty that night. This is where, Aurangzeb started losing faith in her. The second incident is witnessed and mentioned by Manucci[9] where raushanara asked her brother Aurangzeb to grant her the same apartment where once Jahanara lived. Aurangzeb denied that request of raushanara. This incident gave a shock to his affectionate sister raushanara. Apart from Aurangzeb, she was toxic to all her relatives as described by Bernier[10;] as he recalls the episode after the death of Dara Shikoh as how raushanara treated his daughter Jani begum, ruthlessly. But above all, she stood firmly with Aurangzeb till her last breath in 1671 A.D.



Princess Raushanara Begum

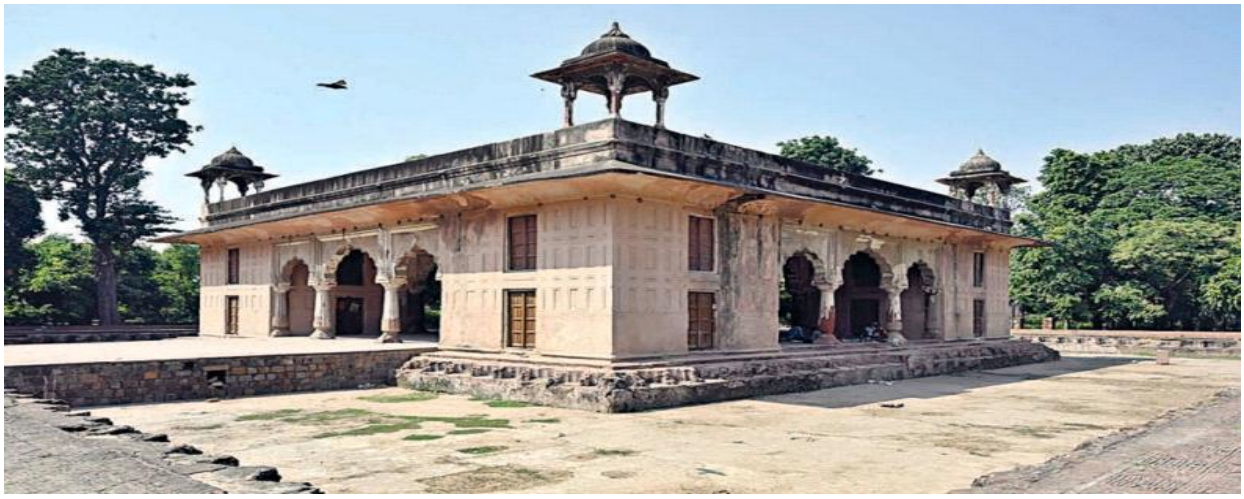
Raushanara Bagh – From the Beginning to the death of Raushanara Begum :

Each part of Raushanara garden features the deep details of a mid-17th century mughal architecture's elegance and beauty. The garden spanning in the area of 130 acres, is 3 foot high; as Sir Brij Krishna Chandiwala had described in his book- *Dilli ki Khoj*[9]. The original complex was a classic charbagh, divided into four quadrants by raised water channels and paved pathways. These channels were fed by the canal system developed by the chief architect- Ali Mardan Khan, which brought water from the Yamuna to inland areas of the city. The presence of fountains and water-chutes (*chaddars*) served both an aesthetic and a climatic multifunctional element, cooling the air as it passed through pavilions, pointed by garden historian Ebba Koch. The central attraction of the garden is the white marble baradari that now serves as the tomb of raushanara begum. The tomb is primarily composed of Lakhori Bricks, which were then coated with lime plaster adorned with intricate ornamental carvings. The use of the white marble in the central hall highlights the imperial status. The pavilion is elevated on a raised platform or *Kursi*, a common feature in mughal architecture to protect the building from flooding and to enhance its visual prominence.

Inside the *baradari,* the grave of raushanara begum remains open to the sky, covered only with earth and grass. This stylistic choice, is also seen in the tomb of Jahanara Begum at the Nizamuddin Dargah, reflects a late mughal preference for humility in death, contrasting with the monumental domes of earlier emperors. Each part of Raushanara garden features the deep details of a mid-17th century mughal architecture's elegance and beauty. The original complex was a classic charbagh, divided into four quadrants by raised water channels and paved pathways. These channels were fed by

the canal system developed by the chief architect- Ali Mardan Khan, which brought water from the Yamuna to inland areas of the city. The presence of fountains and water-chutes (*chaddars*) served both an aesthetic and a climatic multifunctional element, cooling the air as it passed through pavilions, pointed by garden historian Ebba Koch. The central attraction of the garden is the white marble baradari that now serves as the tomb of raushanara begum. The tomb is primarily composed of Lakhori Bricks, which were then coated with lime plaster adorned with intricate ornamental carvings. The use of the white marble in the central hall highlights the imperial status. The pavilion is elevated on a raised platform or *Kursi*, a common feature in mughal architecture to protect the building from flooding and to enhance its visual prominence.

Inside the *baradari,* the grave of raushanara begum remains open to the sky, covered only with earth and grass with an inscription written- "God's own slave". This stylistic choice, is also seen in the tomb of Jahanara Begum at the Nizamuddin Dargah, reflects a late mughal preference for humility in death, contrasting with the monumental domes of earlier emperors.



The Tomb of Raushanara Begum, Surrounded with *Baradari* Structure

Raushanara Bagh- From 1857 to 1922 :

The fall of the Mughal Empire and capture of Delhi by the British in post-1857 disrupted the spatial logic of Raushanara Bagh. In 1875, the Commissioner of Delhi, Col. Cracroft, oversaw the modernisation of Raushanara Bagh. This process involved the demolition of almost all original structures, like lakhori brick walls, fruit orchards and outer compounding walls, except the baradari, which was spared because it housed the grave of the princess. The traditional charbagh quadrants were replaced with an English-style landscape park, characterized by open lawns and winding paths rather than the rigid symmetry of mughal water channels. Sir Syed Ahmed Khan, had mentioned a visual representation of the bagh before its demolition; in his book - *Asad ud-Sandid*[10]:

"The garden is outside the city, towards the west. It was built by Raushan Ara Begum, daughter

of Shah Jahan, in 1060 A.H(1650 A.D). The garden is very large, and has a tomb of brick and lime, which is very beautiful. On four corners of this tomb are four stone *chattris*. In centre is her grave, which has no roof over it, and around it, is a stone *jaalis* (lattice screen). Inside the grave, earth is filled up, and grass grows on it."

Conclusion :

Today, Raushanara Bagh is more of a club than a leisure garden it used to be in a post 17th century. It is now; used as sports club, cricket ground, gardening school and a gathering park by neighbouring people. It, indeed shows the "adaptive reuse" of architectural heritage, but also shows the degrading value of precious architectural remains of mughal era commissioned by royal women, which are very few in numbers. However, the site is currently under the preservation of ASI, DDA and MCD that handles the garden as "divided landscape".

References :

- Bernier, Francois. 1891. *Travels in the Moghul Empire, A.D. 1656-1668.* Trans. By Archibald Constable. London: Archibald Constable and Company
- Nath, Renuka.1990. *Notable Mughal and Hindu Women in the 16th and 17th Centuries A.D.* New Delhi: Inter-India Publications.
- Tavernier, Jean-Baptiste. 1925. *Travels in India, vol. II.* Trans. By V. Ball. Edited by William Crooke. London: Oxford University Press.
- Bernier, *Travels in the Moghul Empire, A.D. 1656-1668.* Pg. no. 14-15.
- Manucci, Niccolo. *Storio do Mogor; or, Mogul India, 1653-1708, Vol.I.* Trans. By William Irvine. London; John Murray, 1907-08.
- Ibid., Vol. I, pg. no. 229.
- Ibid., Vol. II, pg. no. 54-55.
- Tavernier, *Travels in Moghul Empire, Vol. I.* pg. no. 377-378.
- Chandiwala, Brij Krishna. 1964. *Dilli ki Khoj.* New Delhi: Publications Division, Ministry of Information and Broadcasting, Government of India, 1964.
- Khan, Sayyid Ahmad. *Asar-us-Sanadid*. Translated by Rana Safvi. New Delhi: Tulika Books, 2018. (Original work published 1847).

Email Id: anjalirajput1302@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED PRINT RESEARCH JOURNAL
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. 14, Issue 7-8
पृष्ठ : 45–50

डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम के शिक्षादर्शन का वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में निहितार्थ

सोमित सिंह, शोध छात्र (शिक्षा शास्त्र)
डॉ. कृपा शंकर यादव, असिस्टेण्ट प्रोफेसर, शिक्षक–शिक्षा विभाग
नेहरू ग्राम भारती (मानित विश्वविद्यालय), प्रयागराज।

सारांश :

प्रस्तुत शोध–पत्र के माध्यम से ''डॉ0ए0पी0जे0 अब्दुल कलाम के शिक्षादर्शन का वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में निहितार्थ का अध्ययन'' किया गया है। इसके अन्तर्गत अब्दुल कलाम के शिक्षा का अर्थ एवं उद्देश्य, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी शिक्षा, नैतिक एवं मानवीय मूल्यों, शिक्षक, विद्यार्थी, रचनात्मकता एवं नवाचार, आत्मनिर्भरता एवं कौशल विकास, स्त्री शिक्षा, राष्ट्रीय एवं धार्मिक शिक्षा, प्रौद्योगिकी एवं डिजिटल शिक्षा एवं पर्यावरणीय शिक्षा पर निहितार्थ प्रस्तुत किये गये है। समग्र रूप से कहा जा सकता है कि डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम का शैक्षिक चिंतन वैज्ञानिक दृष्टिकोण, नैतिक मूल्यों, रचनात्मकता, आत्मनिर्भरता, राष्ट्रीय चेतना तथा मानवीय संवेदनाओं का संतुलित समन्वय प्रस्तुत करता है। उन्होंने शिक्षा को व्यक्ति, समाज और राष्ट्र के समग्र विकास का सबसे प्रभावी माध्यम माना। उनके विचार आज भी शिक्षकों, विद्यार्थियों, नीति–निर्माताओं तथा शोधकर्ताओं के लिए समान रूप से प्रेरणास्रोत हैं। यदि शिक्षा व्यवस्था में उनके सिद्धांतों को प्रभावी रूप से अपनाया जाए तो ऐसी पीढ़ी का निर्माण संभव होगा जो ज्ञानवान होने के साथ–साथ चरित्रवान, उत्तरदायी, नवाचारी तथा राष्ट्र के प्रति समर्पित होगी। यही डॉ. कलाम के शैक्षिक दर्शन का वास्तविक संदेश और स्थायी शैक्षिक निहितार्थ है।

मुख्य शब्द – डॉ0 ए0पी0जे0 अब्दुल कलाम, शैक्षिक विचार, शिक्षा दर्शन, शिक्षा का अर्थ एवं उद्देश्य, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी शिक्षा, नैतिक एवं मानवीय मूल्यों, शिक्षक, विद्यार्थी, रचनात्मकता एवं नवाचार, आत्मनिर्भरता एवं कौशल विकास, स्त्री शिक्षा, राष्ट्रीय एवं धार्मिक शिक्षा, प्रौद्योगिकी एवं डिजिटल शिक्षा एवं पर्यावरणीय शिक्षा।

प्रस्तावना –

डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम का शैक्षिक चिंतन भारतीय शिक्षा जगत के लिए प्रेरणादायी, प्रगतिशील तथा दूरदर्शी माना जाता है। यद्यपि उन्हें विश्व स्तर पर एक महान वैज्ञानिक, मिसाइल मैन तथा भारत के पूर्व राष्ट्रपति के रूप में अधिक जाना जाता है, किन्तु उनके व्यक्तित्व का सबसे प्रभावशाली पक्ष एक समर्पित शिक्षक का था। उन्होंने स्वयं अनेक अवसरों पर कहा कि यदि उन्हें किसी एक पहचान का चयन करना हो तो वे स्वयं को सबसे पहले एक शिक्षक कहलाना पसंद करेंगे। उनका विश्वास था कि किसी भी राष्ट्र की वास्तविक शक्ति उसके

प्राकृतिक संसाधनों में नहीं, बल्कि उसके शिक्षित, नैतिक, सृजनशील तथा नवाचारी युवाओं में निहित होती है। इसी कारण उन्होंने शिक्षा को केवल रोजगार प्राप्त करने का माध्यम न मानकर राष्ट्र निर्माण, सामाजिक परिवर्तन तथा मानवीय विकास का सर्वोत्तम साधन स्वीकार किया।

समस्या कथन –

''डॉ0ए0पी0जे0 अब्दुल कलाम के शिक्षादर्शन का वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में निहितार्थ।''

अध्ययन का उद्देश्य –

1. डॉ0ए0पी0जे0 अब्दुल कलाम के शैक्षिक विचारों का अध्ययन करना।
2. डॉ0ए0पी0जे0 अब्दुल कलाम के शैक्षिक विचारों के सन्दर्भ में राष्ट्रीय शिक्षा नीति– 2020 में निहितार्थ का अध्ययन करना।

शोध विधि –

प्रस्तुत अध्ययन डॉ0ए0पी0जे0 अब्दुल कलाम के शैक्षिक विचारों के अध्ययन हेतु ऐतिहासिक विधि तथा वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में निहितार्थ हेतु वर्णनात्मक अनुसंधान विधि का प्रयोग किया गया है।

उद्देश्यों का विश्लेषण एवं व्याख्या –

शिक्षा का अर्थ एवं उद्देश्य सम्बन्धित विचारों का वर्तमान में निहितार्थ –

डॉ. कलाम के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य केवल तथ्यों का संग्रह या परीक्षाओं में सफलता प्राप्त करना नहीं है। वास्तविक शिक्षा वह है जो व्यक्ति के भीतर छिपी हुई प्रतिभा को पहचानने, उसे विकसित करने तथा समाज के हित में उसका सदुपयोग करने की क्षमता उत्पन्न करे। उनका मानना था कि प्रत्येक बालक अपने भीतर विशिष्ट संभावनाएँ लेकर जन्म लेता है और शिक्षक का दायित्व उन संभावनाओं को जागृत करना है। इस दृष्टि से शिक्षा को रचनात्मक, प्रेरणादायक तथा जीवनोपयोगी बनाया जाना आवश्यक है। वे ऐसी शिक्षा व्यवस्था के समर्थक थे जिसमें विद्यार्थी केवल पाठ्य–पुस्तकों तक सीमित न रहकर प्रयोग, अनुसंधान, नवाचार तथा अनुभव के माध्यम से सीखें।

डॉ. कलाम ने शिक्षा को राष्ट्रीय विकास की आधारशिला माना। उनका विश्वास था कि विकसित भारत का निर्माण तभी संभव है जब प्रत्येक नागरिक को गुणवत्तापूर्ण, समावेशी तथा मूल्यपरक शिक्षा प्राप्त हो। उन्होंने ग्रामीण तथा शहरी क्षेत्रों के बीच विद्यमान शैक्षिक असमानताओं को दूर करने पर विशेष बल दिया। उनका मत था कि आधुनिक विज्ञान, सूचना प्रौद्योगिकी तथा डिजिटल संसाधनों का उपयोग करके गुणवत्तापूर्ण शिक्षा देश के प्रत्येक कोने तक पहुँचाई जा सकती है। यदि शिक्षा का अवसर सभी वर्गों को समान रूप से प्राप्त होगा तो सामाजिक न्याय, आर्थिक प्रगति तथा राष्ट्रीय एकता को भी मजबूती मिलेगी।

डॉ. कलाम व्यावहारिक शिक्षा के प्रबल समर्थक थे। उनके अनुसार शिक्षा तभी सार्थक है जब वह जीवन की वास्तविक समस्याओं का समाधान प्रस्तुत करे। विद्यालयों तथा महाविद्यालयों में विद्यार्थियों को केवल सैद्धान्तिक ज्ञान ही नहीं, बल्कि प्रयोगशालाओं, कार्यशालाओं, परियोजनाओं, नवाचार केन्द्रों तथा सामुदायिक गतिविधियों के माध्यम से सीखने का अवसर मिलना चाहिए। वे चाहते थे कि शिक्षा विद्यार्थियों में समस्या समाधान, निर्णय क्षमता, नेतृत्व, सहयोग, संचार कौशल तथा उद्यमिता जैसे गुणों का विकास करे। उनका विचार था कि व्यावहारिक अनुभव से प्राप्त ज्ञान अधिक स्थायी, प्रभावी तथा उपयोगी होता है।

विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी शिक्षा सम्बन्धित विचारों का वर्तमान में निहितार्थ –

उनके शैक्षिक दर्शन का एक महत्वपूर्ण पक्ष विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी का समुचित समावेश है। वे विज्ञान को केवल प्रयोगशाला तक सीमित विषय नहीं मानते थे, बल्कि जीवन की गुणवत्ता सुधारने का माध्यम समझते थे। उनका विश्वास था कि वैज्ञानिक दृष्टिकोण व्यक्ति को तार्किक सोच, जिज्ञासा, खोज की प्रवृत्ति तथा नवाचार की दिशा में प्रेरित करता है। इसलिए उन्होंने विद्यालयी शिक्षा में विज्ञान, गणित, अनुसंधान तथा तकनीकी शिक्षा को विशेष महत्व दिया। साथ ही उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि तकनीक तभी सार्थक है जब उसका उपयोग मानव कल्याण, पर्यावरण संरक्षण तथा सामाजिक विकास के लिए किया जाए।

नैतिक एवं मानवीय मूल्यों सम्बन्धित विचारों का वर्तमान में निहितार्थ –

डॉ. कलाम ने शिक्षा में नैतिक एवं मानवीय मूल्यों को अत्यंत आवश्यक माना। उनका कहना था कि यदि शिक्षा केवल तकनीकी दक्षता प्रदान करे और नैतिक चेतना का विकास न करे तो समाज में अनेक प्रकार की समस्याएँ उत्पन्न हो सकती हैं। इसलिए शिक्षा के माध्यम से सत्यनिष्ठा, ईमानदारी, अनुशासन, सहिष्णुता, करुणा, सेवा, उत्तरदायित्व तथा राष्ट्रभक्ति जैसे मूल्यों का विकास होना चाहिए। उनके अनुसार नैतिक शिक्षा ही व्यक्ति को श्रेष्ठ नागरिक बनाती है और उसे व्यक्तिगत सफलता के साथ–साथ सामाजिक उत्तरदायित्व निभाने के लिए प्रेरित करती है।

शिक्षक सम्बन्धित विचारों का वर्तमान में निहितार्थ –

डॉ. कलाम के विचारों में शिक्षक की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। उनका मानना था कि शिक्षक केवल ज्ञान प्रदान करने वाला व्यक्ति नहीं, बल्कि विद्यार्थियों के व्यक्तित्व का निर्माता होता है। एक आदर्श शिक्षक अपने आचरण, व्यवहार तथा कार्यशैली से विद्यार्थियों को प्रेरित करता है। शिक्षक को स्वयं निरंतर अध्ययनशील, अनुसंधानशील तथा नवीन ज्ञान के प्रति उत्सुक रहना चाहिए ताकि वह विद्यार्थियों को समयानुकूल शिक्षा प्रदान कर सके। वे यह भी कहते थे कि अच्छा शिक्षक विद्यार्थियों में आत्मविश्वास, जिज्ञासा तथा बड़े सपने देखने की प्रेरणा उत्पन्न करता है। शिक्षक और विद्यार्थी के बीच विश्वास, संवाद तथा सहयोग का संबंध शिक्षा की सफलता का आधार है।

विद्यार्थियों सम्बन्धित विचारों का वर्तमान में निहितार्थ –

डॉ. कलाम ने विद्यार्थियों को शिक्षा प्रक्रिया का केन्द्र माना। उनका विश्वास था कि प्रत्येक विद्यार्थी में कुछ विशिष्ट क्षमताएँ होती हैं जिन्हें पहचानना और विकसित करना आवश्यक है। उन्होंने विद्यार्थियों को सदैव बड़े लक्ष्य निर्धारित करने, कठिन परिश्रम करने तथा असफलताओं से सीखने की प्रेरणा दी। उनका प्रसिद्ध विचार था कि सपने वे नहीं होते जो सोते समय दिखाई देते हैं, बल्कि सपने वे होते हैं जो व्यक्ति को सोने न दें। इस विचार का शैक्षिक अर्थ यह है कि शिक्षा विद्यार्थियों में उद्देश्यपूर्ण जीवन, आत्मविश्वास तथा सतत प्रयास की भावना विकसित करे।

रचनात्मकता एवं नवाचार सम्बन्धित विचारों का वर्तमान में निहितार्थ –

रचनात्मकता और नवाचार डॉ. कलाम के शैक्षिक चिंतन का प्रमुख आधार रहे हैं। उनका मत था कि बदलते वैश्विक परिवेश में केवल रटकर सीखी गई जानकारी पर्याप्त नहीं है। विद्यार्थियों को नए विचार उत्पन्न करने, समस्याओं का नवीन समाधान खोजने तथा समाजोपयोगी आविष्कार करने के लिए प्रोत्साहित किया जाना

चाहिए। विद्यालयों में विज्ञान प्रदर्शनी, नवाचार प्रयोगशालाएँ, स्टार्टअप गतिविधियाँ, अनुसंधान परियोजनाएँ तथा समूह आधारित अधिगम जैसी गतिविधियाँ विद्यार्थियों की सृजनात्मक क्षमता को विकसित करती हैं। उनके अनुसार शिक्षा तभी प्रभावी कही जाएगी जब वह विद्यार्थियों को ज्ञान के उपभोक्ता नहीं, बल्कि ज्ञान के सृजनकर्ता बनाए।

आत्मनिर्भरता एवं कौशल विकास सम्बन्धित विचारों का वर्तमान में निहितार्थ –

डॉ. कलाम ने आत्मनिर्भरता तथा कौशल विकास को भी शिक्षा का आवश्यक अंग माना। उनका विचार था कि शिक्षा का उद्देश्य केवल नौकरी प्राप्त करना नहीं होना चाहिए, बल्कि ऐसा व्यक्तित्व विकसित करना चाहिए जो स्वयं रोजगार सृजित करने की क्षमता रखता हो। इसलिए उन्होंने तकनीकी शिक्षा, व्यावसायिक प्रशिक्षण, उद्यमिता तथा कौशल आधारित अधिगम को विशेष महत्व दिया। इससे युवाओं में आत्मनिर्भरता की भावना विकसित होती है तथा वे देश के आर्थिक विकास में सक्रिय योगदान देने में सक्षम बनते हैं।

स्त्री शिक्षा सम्बन्धित विचारों का वर्तमान में निहितार्थ –

महिला शिक्षा के संबंध में भी डॉ. कलाम के विचार अत्यंत प्रगतिशील थे। उनका विश्वास था कि किसी भी समाज का समग्र विकास महिलाओं की शिक्षा के बिना संभव नहीं है। यदि एक महिला शिक्षित होती है तो उसका सकारात्मक प्रभाव पूरे परिवार तथा समाज पर पड़ता है। उन्होंने महिलाओं को विज्ञान, तकनीक, अनुसंधान तथा नेतृत्व के क्षेत्र में आगे बढ़ने के लिए निरंतर प्रेरित किया। उनके अनुसार शिक्षा के अवसरों में किसी प्रकार का लैंगिक भेदभाव नहीं होना चाहिए और प्रत्येक बालिका को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्राप्त करने का समान अधिकार मिलना चाहिए।

राष्ट्रीय एवं धार्मिक शिक्षा सम्बन्धित विचारों का वर्तमान में निहितार्थ –

डॉ. कलाम ने शिक्षा को राष्ट्रीय चरित्र निर्माण का साधन माना। उनका विश्वास था कि शिक्षित नागरिक ही लोकतांत्रिक मूल्यों, सामाजिक समरसता तथा राष्ट्रीय एकता को सुदृढ़ बना सकते हैं। उन्होंने विद्यार्थियों में संविधान के प्रति सम्मान, पर्यावरण संरक्षण, सामाजिक उत्तरदायित्व तथा नागरिक कर्तव्यों के प्रति जागरूकता विकसित करने पर बल दिया। उनका विचार था कि शिक्षा व्यक्ति को केवल व्यक्तिगत सफलता की ओर नहीं, बल्कि समाज और राष्ट्र के विकास के लिए कार्य करने की प्रेरणा भी प्रदान करे।

प्रौद्योगिकी एवं डिजिटल शिक्षा सम्बन्धित विचारों का वर्तमान में निहितार्थ –

उनका शैक्षिक दर्शन वैश्विक दृष्टिकोण और भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों का सुंदर समन्वय प्रस्तुत करता है। वे आधुनिक विज्ञान, डिजिटल तकनीक तथा वैश्विक प्रतिस्पर्धा को आवश्यक मानते थे, किन्तु साथ ही भारतीय संस्कृति, आध्यात्मिकता, नैतिकता तथा मानवीय संवेदनाओं को भी समान महत्व देते थे। उनका मत था कि आधुनिकता और परम्परा के बीच संतुलन स्थापित करके ही ऐसी शिक्षा व्यवस्था विकसित की जा सकती है जो विद्यार्थियों को विश्वस्तरीय क्षमता के साथ–साथ सांस्कृतिक चेतना भी प्रदान करे।

पर्यावरणीय शिक्षा सम्बन्धित विचारों का वर्तमान में निहितार्थ –

डॉ. कलाम ने पर्यावरणीय चेतना को भी शिक्षा का अभिन्न अंग माना। उनके अनुसार विद्यार्थियों में प्रकृति के प्रति संवेदनशीलता, ऊर्जा संरक्षण, जल संरक्षण, वृक्षारोपण तथा सतत विकास के सिद्धांतों की समझ विकसित की जानी चाहिए। इससे वे भविष्य में जिम्मेदार नागरिक बनकर पर्यावरण संरक्षण में सक्रिय भूमिका निभा सकेंगे।

उनके विचारों में शिक्षा का मनोवैज्ञानिक पक्ष भी स्पष्ट दिखाई देता है। वे विद्यार्थियों पर अनावश्यक दबाव, भय तथा प्रतिस्पर्धा आधारित शिक्षा के पक्षधर नहीं थे। उनका विश्वास था कि सीखने का वातावरण प्रेरणादायक, सहयोग पूर्ण तथा आनंददायक होना चाहिए। शिक्षक को विद्यार्थियों की व्यक्तिगत रुचियों, क्षमताओं तथा सीखने की गति को ध्यान में रखते हुए शिक्षण कार्य करना चाहिए। ऐसी व्यवस्था विद्यार्थियों में आत्मविश्वास, जिज्ञासा तथा सकारात्मक सोच को बढ़ावा देती है।

यदि समकालीन भारतीय शिक्षा व्यवस्था का अध्ययन किया जाए तो स्पष्ट होता है कि डॉ. कलाम के अनेक विचार आज भी अत्यंत प्रासंगिक हैं। कौशल आधारित शिक्षा, अनुभवात्मक अधिगम, डिजिटल शिक्षा, अनुसंधान, नवाचार, उद्यमिता, मूल्य शिक्षा, समावेशी शिक्षा तथा बहुविषयक अध्ययन जैसी अवधारणाएँ वर्तमान शिक्षा सुधारों का महत्वपूर्ण भाग हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि उनका शैक्षिक दर्शन केवल अपने समय तक सीमित नहीं था, बल्कि भविष्य की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर विकसित किया गया था।

निष्कर्ष –

समग्र रूप से कहा जा सकता है कि डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम का शैक्षिक चिंतन वैज्ञानिक दृष्टिकोण, नैतिक मूल्यों, रचनात्मकता, आत्मनिर्भरता, राष्ट्रीय चेतना तथा मानवीय संवेदनाओं का संतुलित समन्वय प्रस्तुत करता है। उन्होंने शिक्षा को व्यक्ति, समाज और राष्ट्र के समग्र विकास का सबसे प्रभावी माध्यम माना। उनके विचार आज भी शिक्षकों, विद्यार्थियों, नीति–निर्माताओं तथा शोधकर्ताओं के लिए समान रूप से प्रेरणास्रोत हैं। यदि शिक्षा व्यवस्था में उनके सिद्धांतों को प्रभावी रूप से अपनाया जाए तो ऐसी पीढ़ी का निर्माण संभव होगा जो ज्ञानवान होने के साथ–साथ चरित्रवान, उत्तरदायी, नवाचारी तथा राष्ट्र के प्रति समर्पित होगी। यही डॉ. कलाम के शैक्षिक दर्शन का वास्तविक संदेश और स्थायी शैक्षिक निहितार्थ है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :

- अख्तर, एस. (2021). अ स्टडी ऑन एक्सप्लोरिंग द एजुकेशनल थॉट्स एंड कॉन्ट्रिब्यूशन्स ऑफ डॉ. ए. पी.जे. अब्दुल कलाम. इंटरनेशनल जर्नल ऑफ ट्रेंड इन साइंटिफिक रिसर्च एंड डेवलपमेंट (आई.जे.टी. एस.आर.डी.), 5(4), 1148–1151.
- अर्जुना, एन. के. (2010). डॉ. कलाम्स कॉन्ट्रिब्यूशन टू एजुकेशन : फिलॉसॉफिकल एंड सोशियोलॉजिकल बेसिस ऑफ एजुकेशन. पलक्काड, केरल : युगा पब्लिकेशन्स.
- कौर, एस. एवं नीना. (2018). साइंटिफिक थॉट्स ऑफ डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम एंड इट्स रेलिवेंस इन 21स्ट सेंचुरी : एन एक्सप्लोरेटरी स्टडी. इंटरनेशनल जर्नल ऑफ क्रिएटिव रिसर्च थॉट्स, 6(1), 1205–1212.
- ग्रोवर, पी. एण्ड कौर, आर. (2023). एजुकेशनल थॉट्स ऑफ डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम. आयुषी इंटरनेशनल इंटरडिसिप्लिनरी रिसर्च जर्नल (ए.आई.आई.आर.जे.), 8(10), 54–57.
- चौहान, के. एण्ड कुमार, आर. (2017). स्टडी ऑफ थिंकिंग ऑन एजुकेशन सिस्टम ऑफ डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम. इंटरनेशनल जर्नल ऑफ रिसर्च इन ऑल सब्जेक्ट्स इन मल्टी लैंग्वेजेज, 5(8), 17–22.
- जोशी, एम. एण्ड अंकिता. (2018). डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम ऐज अ टीचर. इंटरनेशनल जर्नल ऑफ

रिसर्च इन ऑल सब्जेक्ट्स इन मल्टी लैंग्वेजेज, 6(10), 25–27.

- दोडिया, आर. एस. (2018). ए.पी.जे. अब्दुल कलाम्स थॉट्स ऑन लीडरशिप इन एजुकेशन ऐज रिफ्लेक्टेड इन हिज राइटिंग्स. इंटरनेशनल जर्नल ऑफ रिसर्च एंड एनालिटिकल रिव्यूज, 5(2), 543–545.
- पारेख, हनुमान प्रसाद एन. (2017). डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम्स विजन अबाउट एजुकेशन. इंटरनेशनल जर्नल ऑफ रिसर्च इन ऑल सब्जेक्ट्स इन मल्टी लैंग्वेजेज, 5(4), अप्रैल 2017, 36–40.
- शर्मा, आर. (2021). डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम के शिक्षा दर्शन का राष्ट्र निर्माण में विश्लेषणात्मक अध्ययन, शोध–प्रबन्ध (शिक्षाशास्त्र), श्री जगदीशप्रसाद झाबरमल टीबड़ेवाला विश्वविद्यालय, विद्यानगरी, झुंझुनूं।
- त्रिवेदी, अतुल. (2017). द एजुकेशनल थॉट्स ऑफ डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम. इंटरनेशनल एजुकेशनल एंड रिसर्च जर्नल, 3(5), 262–264.यूनिवर्सिटी.

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED PRINT RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 14, Issue 7-8
पृष्ठ : 51-54

वेदों में राजा और सैन्य व्यवस्था

डॉ. अश्वनी कुमार
सहायक आचार्य (अतिथि संकाय),
हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय, क्षेत्रिय केन्द्र, धर्मशाला।

किसी भी देश अथवा राष्ट्र का मुखिया राजा होता है और उसकी सुरक्षा तब तक नहीं हो सकती जब तक उसके पास एक सुदृढ़ सेना न हो। वेदकालीन समाज में राजा को सर्वोच्च अधिकारी तथा कर्णधार माना गया है। ऐतरेय ब्राह्मण में वर्णित देवासुर संग्राम में जब देवताओं की पराजय हुई तो उन्होंने विचार करके निष्कर्ष निकाला कि राजा के अभाव में उनकी दुर्दशा हुई। अतः उन्होंने राजा की नियुक्ति की।[1] राष्ट्रोपयोगी होने के कारण राजा का चयन किया जाने लगा। राजा वंशानुगत भी बनता था। लोगों द्वारा राजा का चयन साक्षात् रूप से न करके समाज के प्रमुख व्यक्तियों की समिति द्वारा किया जाता था। अथर्ववेद के एक मन्त्र में वर्णन मिलता है कि राजा का चयन भद्र, सूत तथा ग्रामीण किया करते थे।[2] इसके बाद जब किसी को राजा बना दिया जाता था तो उसके लिए प्रार्थना की जाती थी कि वह तेजस्वी, प्रजापालक, समस्त प्रजाओं का प्रिय तथा प्रजा द्वारा स्वीकार्य हो। समस्त प्रजा तथा अधिकारियों का उसे पूर्ण सहयोग प्राप्त हो।[3]

ऋग्वेद में राजा के लिए कामना की गई है कि वह पृथ्वी पर उसी प्रकार निवास करे जिस प्रकार स्वर्ग में इन्द्र करते हैं। वैदिककाल में वही व्यक्ति राजा बनने के योग्य माना जाता था जो सत्य का पालन करने वाला नियमानुसार चलने वाला तथा क्षत्रिय हो।[4] राजा को राष्ट्र का रक्षक तथा कर्णधार माना गया है। राजपद की गरिमा को बनाए रखने के लिए राजा का श्रेष्ठगुण सम्पन्न होना अत्यावश्यक है, क्योंकि राजा क्षत्रिय बल से युक्त तथा आजीवन स्थायी होता है। जिस प्रकार नदी के प्रवाह को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है, उसी प्रकार राजा हमारे जीवन प्रवाहों को देखता रहता है।[5]

वेदों में उल्लेख मिलता है कि राजा शक्तिशाली, अन्नसम्पन्न तथा धन–धान्य का संग्रहकर्ता, दिव्यजनों द्वारा सेवित, शीघ्रगामी, रथ से सम्पन्न, संकटों को दबाने वाला, शत्रु को जीतने वाला, प्रजा का उत्तम रक्षक और उनका कल्याण करने वाला, शूरवीर, निर्भीक तथा शक्तिशाली होना चाहिए। उसके पास कभी भी धन का अभाव न हो।[6]

वेदाकालीन समाज में लोगों की राजा के सम्बन्ध में सुदृढ़ धारणा थी कि राजा अग्नि के समान शत्रु को दग्ध करने वाला, सूर्य के सदृश गुणों वाला, सौम्य तथा धर्माचरण युक्त हो।

राजा अपने राष्ट्र की रक्षा एक सुदृढ़ सेना की सहायता से ही कर सकता है। ऋग्वेद में सेना को धन बताया गया है।[7] यजुर्वेद में सेना के महत्त्व को दर्शाने के लिए सैनिकों के प्रति सम्मान एवं सत्कार के लिए उन्हें

नम्न किया है। राष्ट्र की रक्षा के लिए तथा युद्ध के लिए वीरों को एकत्रित कर सेना का गठन किया जाता था। सेना में वीरों का क्रम निश्चित होता था। सेना को संचालन हेतु भिन्न–भिन्न विभागों में विभक्त किया जाता था। प्रत्येक विभाग का एक नेता होता था जो अपनी दक्षता के आधार पर सेना का संचालन करता था।

सेना के संगठन एवं सैनिकों को युद्ध प्रशिक्षण प्रदान करने के लिए राजा एक सेनापति की नियुक्ति भी करता था। सेनापति के पद पर ऐसा व्यक्ति नियुक्त किया जाता था जो शत्रु को नियन्त्रित कर सके, सैनिकों की रक्षा कर सके, अस्त्र–शस्त्र चलाने में निपुण, सज्जनों का प्रिय, सेना को प्रसन्न रखने वाला, शत्रुसंहारक तथा शत्रु से स्वयं की रक्षा करने वाला हो।[8] यजुर्वेद में सेनापति के गुणों का वर्णन करते हुए कहा गया है कि वह रूद्र की भांति शत्रु को रुलाने वाला, श्रेष्ठों के लिए प्राणवत् प्रिय, विविध प्रकार के शुभ गुण कर्म स्वभाव वाला, नीलमणि से युक्त गर्दन वाला, शत्रु के विरुद्ध प्रस्थान करने पर अंगरक्षकों द्वारा रक्षित तथा जल की भांति हमेशा अग्रसरित सेना के द्वारा अनुगम्यमान एवं संरक्षित हो।[9] सेना के महत्त्वपूर्ण पद के कारण वेदों में उसे राजा के रत्नों में सर्वोच्च रत्न का स्थान प्राप्त था।

ऋग्वेद में सेना के लिए "त्रयनीकः" अर्थात् तीन सेनाओं वाला शब्द आता है, जिससे अनुमान लगाया जा सकता है कि उस समय तीन प्रकार की सेना रही होगी। एक अन्य स्थान पर भी उल्लेख मिलता है कि विजय प्राप्ति के लिए इन्द्र ने दुन्दुभि की ध्वनि से घोर नाद करती हुई पताकायुक्त अश्वरोही, पदाति और रथी सेना के साथ युद्ध किया था[10] परन्तु इनके स्वरूप के विषय में कुछ नहीं कहा जा सकता। सेना के प्रकारों का स्पष्ट रूप से उल्लेख नहीं मिलता।

ऋग्वेद में कुछ स्थलों पर रथ में जोड़ने के लिए अश्वों के उपयोग का वर्णन है। वीर पुरुष अश्व का प्रयोग ग्राम पर विजय प्राप्त करने के लिए तथा वेगपूर्वक शत्रु पर आक्रमण करने के लिए करते थे।[11] यजुर्वेद में अश्व तथा अश्वपति दोनों को ही नमन किया गया है।[12]

वेदकालीन समाज में युद्ध के अवसर पर रथ पर आरूढ़ होकर भी युद्ध लड़ते थे। रथ में दो से लेकर चार–पाँच अश्व जुते होते थे। साधारण रथ में प्रायः दो चक्र होते थे, किन्तु अश्विन देवों का रथ अश्व रहित, परन्तु तीन पहियों वाला, तीन बन्धनों से युक्त तथा तीन भुजाओं वाला बतलाया गया है।[13] रथ को लकड़ी से बनाया जाता था तथा गोचर्म की रस्सियों से उसे कस कर बांधा जाता था और उसे इन्द्र के वज्र के समान सुदृढ़ माना जाता था। अश्वों को नियन्त्रित करने के लिए कशा का प्रयोग किया जाता था। रथी सेना अनेक रूपों में भयंकर शब्द करती हुई आगे प्रस्थान करती थी।[14]

वैदिक आर्य प्रायः युद्ध में पैदल सेना का ही प्रयोग करते थे। वेदों में देवताओं तथा उनके वीरों के लिए रथ प्रयोग तो पर्याप्त मात्रा में मिलता है। परन्तु शूरवीरों के लिए रथादि का प्रयोग बहुत कम मिलता है। वीरों में उत्साह के लिए उनकी वीरता के गुणों को स्मरण कराया जाता था। मरुत् वीर यह कार्य स्वयं किया करते थे।[15] ये शूरवीर पैदल ही युद्ध किया करते थे। अश्वों तथा रथों से रहित इन्द्र से प्रेरित होकर मरुद्गण दस्युओं का वध करने के लिए पैदल ही गए थे।[16]

वेदों में स्त्रियों द्वारा भी युद्ध करने का वर्णन प्राप्त होता है। मनुष्यों का पालन करने वाली अविच्छिन साधन सम्पन्न देव–पत्नियों से सुरक्षा के लिए कामना की गई है। इससे यह पता चलता है कि देव–पत्नियों का ऐसा संगठन था जो आवश्यकता पड़ने पर रक्षा भी करता था। ऋग्वेद के एक मन्त्र में वर्णित है कि इन्द्र के द्वारा नमुचि

नामक दास का विनाश करने के अवसर पर दासों ने स्त्रियों का आयुद्ध के रूप में उपयोग किया था। तैत्तिरीय संहिता में इन्द्र की पत्नी इन्द्राणी सेना की प्रेरक देवी मानी गई है।[17] वीरांगनाओं की वीरता के विवरण अथर्ववेद के प्रथम काण्ड के सत्ताइसवें सूक्त में विस्तार से दिए गए हैं।[18]

सेना चाहे किसी भी प्रकार की थी, परन्तु अस्त्र–शस्त्रों से युक्त होती थी। ऋग्वेद में वर्णन मिलता है कि वैदिक वीर अपने अस्त्र–शस्त्रों को चमकाते थे।[19] शत्रु के साथ युद्ध में उसकी क्षमता के अनुसार अस्त्र–शस्त्रों का प्रयोग किया जाता था। युद्ध में प्रायः सबसे अधिक प्रयोग धनुष का होता था। यजुर्वेद में एक स्थल पर वर्णन आता है कि "आ राष्ट्रे राजन्यः शूरऽइषव्योऽतिव्याधी महारथो जायताम्" अर्थात् हमारे राष्ट्र के क्षत्रिय बाण चलाने की विद्या में निपुण शत्रु के विनाशक महारथी हों। वीर सैनिकों का मानना था कि तीव्र युद्ध में शत्रु के ऊपर धनुष से विजय पाई जा सकती है।[20] ऋग्वेद में धनुष की संरचना का भी वर्णन मिलता है।

युद्ध में धनुष के साथ गदा का भी प्रयोग किया जाता था। परन्तु इसका उल्लेख वेदों में कम ही हुआ है, जिससे पता चलता है कि वैदिक काल में गदा का प्रयोग कम ही किया जाता था। शत्रु को भयभीत करने के लिए परशु अथवा फरसे का प्रयोग भी किया जाता था। परन्तु इसका भी वेदों में बहुत कम उल्लेख मिलता है। ऋग्वेद में मरुतों द्वारा युद्ध के लिए प्रस्थान करने के समय अपने रथ में भाले रखने का वर्णन प्राप्त होता है।[21] इससे पता चलता है कि भाले का प्रयोग उस समय प्रचलन में था।

धनुष के बाद सबसे अधिक प्रयोग तलवार का होता था। मरुत् वीर उसका प्रयोग शत्रुओं तथा पशुओं को नष्ट करने के लिए करते थे। शत्रु उनकी तलवार से भयभीत हो जाते थे।[22] वैदिक काल में तलवार का बहुत उपयोग होता था। इन्द्र भी शत्रुओं के संहार के लिए तलवार धारण करते थे। अथर्ववेद में पर्वतों पर युद्ध के लिए लाठी का उपयोग हथियार के रूप में करने का वर्णन प्राप्त होता है। जहाँ इसका प्रयोग पर्वतों पर आरोहण के लिए सहायक के रूप में होता था, वहीं अवसर पड़ने पर यह आत्मरक्षा के काम भी आती थी।[23]

इसके अतिरिक्त भी युद्ध में कई प्रकार के दैवी अस्त्र–शस्त्रों का प्रयोग किया जाता था। अपने शरीर की सुरक्षा के लिए वीर सैनिक कवच धारण करते थे जो विभिन्न प्रकार की धातुओं से बने होते थे। अथर्ववेद में वर्णन मिलता है कि प्रजाओं की सुरक्षा के लिए वायु द्वारा निर्मित कवच दिशाओं तथा उपदिशाओं में व्याप्त थे।[24]

वेदों में सैनिकों की नियुक्ति से सम्बन्धित कोई विशेष जानकारी नहीं मिलती। इनमें केवल उनके गुणों से सम्बन्धित जानकारी ही मिलती है। जैसे कि सैनिक राष्ट्र के अनुकूल, भूमि विजेता, शक्तिशाली, युद्ध में विजय प्राप्त करने वाले तथा शत्रु को परास्त करने वाले हों। वे उग्र स्वभाव वाले, ग्रामों तथा गौओं के विजेता, इन्द्रियों के वशकर्ता, वज्रधारी, बल से शत्रुओं का नाश करने वाले तथा अपने राजा के अनुकूल कार्य करने वाले हों।[25]

इसी प्रकार ऋग्वेद में भी कामना की गई है कि वीर, उग्र स्वभाव वाले, तेजस्वी, शारीरिक तथा मानसिक बल वाले, उत्साही, सर्वत्र विजय प्राप्त करने वाले, सत्यवेत्ता, ज्ञानी, अत्यन्त सराहनीय तथा अपने प्रचण्ड बल से राष्ट्र को सुरक्षा प्रदान करने वाले होने चाहिए।[26] यजुर्वेद में भी कुछ इसी से मिलती–जुलती कामना की गई है।

सन्दर्भ :

1. ऐतरेय ब्राह्मण, 1/14

2. ये राजानो राजकृतः सूता ..... सर्वान्कृण्वमितो जनान्।। अथर्ववेद, 3/5/7
3. वही, 3/4/1–3
4. ऋतावना निःषेदतुः साम्राज्याय ..... क्षत्रिय क्षत्रमाशतुः।। ऋग्वेद, 8/25/8
5. राजा राष्ट्रानां पेशो नदीनामनुत्तमस्मै क्षत्रं विश्रवायु। वही, 7/34/11
6. अथर्ववेद, 7/86–88
7. ऋग्वेद, 5/74/7
8. वही, 6/20, 7/37, 8/53, 27/37
9. वही, 16/17
10. आमूरजं प्रत्यावर्तयेकाः ..... रथिनो जयन्तु।। ऋग्वेद, 6/47/31
11. नियुत्वन्तो ग्रामजितो यथा नरोऽर्यमणो न मरुतः कबन्धिनः। वही, 5/54/8
12. नमोऽश्वेभ्योऽश्वपतिभ्यश्च। यजुर्वेद, 16/24
13. त्रिबन्धुरेण त्रिवृता रथेन ..... वर्धयतमश्विना वीरमस्मै।। ऋग्वेद, 1/118/2
14. अनस्वति वाहिनी विश्वरूपां कुरूटिनी। अथर्ववेद, 10/1/15
15. जयता तन्यतु मरुतोमति धृष्णुया यच्छुनं याथनानरः। ऋग्वेद, 1/23
16. अनश्वासो ये पवयोऽरथा इन्द्रेषिता अभ्यवर्तन्त दस्यून्। ऋग्वेद, 5/31/5
17. इन्द्राणी वै सेनायै देवतान्तै। तैत्तिरीय संहिता, 2/2/81
18. अथर्ववेद, 1/27/1–4
19. ऋग्वेद, 1/92/1
20. वही, 6/75/2
21. ऋग्वेद, 1/37/2
22. वही, 1/166/6
23. अथर्ववेद, 1/168/3
24. यानि चकार भुवनस्य ..... वर्याणी बहुलानि सन्तु।। वही, 19/20/2
25. इयं वीरमनु हर्षधवमुग्रमिद्रं ..... प्रमृणन्तमोजसा।। वही, 6/98/3
26. हये नरो मृकता न स्तुवीमघासो ..... वृहदि्भरयो बृहदुक्षमाणा।। ऋग्वेद, 5/57/8

मोबाइल नंबर – 7018401044
ईमेल – ardhimanadi@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED PRINT RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 14, Issue 7-8
पृष्ठ : 55–59

असगर वजाहत के नाटक 'फिरंगी लौट आए' में अभिव्यक्त सामाजिक यथार्थ

सुचित्रा जे
शोध छात्रा, महाराजास कॉलेज, एरणाकुलम।

मानव–जीवन की अनुभूतियों, विचारों एवं भावनाओं की कलात्मक अभिव्यक्ति को साहित्य कहा जाता है। साहित्य केवल व्यक्ति की संवेदनाओं की अभिव्यक्ति तक सीमित नहीं रहता, बल्कि वह सामाजिक, सांस्कृतिक चेतनाओं तथा युगीन परिस्थितियों को भी सजीव रूप में प्रस्तुत करता है। इसी संदर्भ में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने साहित्य को "जनता की चित्तवृत्तियों का संचित प्रतिबिंब"[1] कहा है। अर्थात् साहित्य समाज और मानव–जीवन के विविध पक्षों को उद्घाटित करने का एक महत्वपूर्ण माध्यम है। इसलिए समाज से गहरे रूप में जुड़ा प्रत्येक साहित्यकार अपने समय की बदलती परिस्थितियों, समस्याओं तथा सामाजिक यथार्थ को अपने साहित्य में अभिव्यक्त करने के लिए बाध्य होता है।

असगर वजाहत ने अपनी साहित्यिक रचनाओं के माध्यम से समाज के साथ गहरा जुड़ाव स्थापित करने का प्रयास किया है। 'फिरंगी लौट आए' उनका एक महत्वपूर्ण नाटक है। प्रस्तुत नाटक भारतीय समाज की उन विडंबनाओं और समस्याओं को उजागर करता है, जो स्वतंत्रता प्राप्ति के दशकों बाद भी हमारे सामाजिक जीवन में विद्यमान हैं। यद्यपि नाटक का शीर्षक फिरंगियों के पुनः आगमन का संकेत देता है, किंतु इसका आशय प्रतीकात्मक है। अंग्रेजों के भारत छोड़ने के अनेक दशकों बाद भी औपनिवेशिक मानसिकता, शोषणकारी प्रवृत्तियाँ तथा सत्ता–केंद्रित व्यवस्था प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप में हमारे समाज एवं शासन–व्यवस्था में विद्यमान हैं। प्रस्तुत नाटक के माध्यम से नाटककार यह प्रतिपादित करते हैं कि औपनिवेशिक शासन से मुक्ति प्राप्त करने के बावजूद भारतीय समाज अभी तक मानसिक, सामाजिक और प्रशासनिक स्तर पर औपनिवेशिक प्रभावों से पूर्णतः मुक्त नहीं हो पाया है।

प्रस्तुत नाटक के माध्यम से समाज की तमाम समस्याओं, जैसे – किसानों की समस्याएँ, लगान का बोझ, सत्ता के प्रति मोह, शासक वर्ग की जनविरोधी मानसिकता, धर्म–परिवर्तन की सच्चाई, स्त्री–शोषण तथा नीति–व्यवस्था की विसंगतियों आदि को सामाजिक यथार्थ के रूप में प्रस्तुत किया गया है। इन विविध समस्याओं के माध्यम से नाटककार यह दिखाने का प्रयास करता है कि अंग्रेजों के भारत छोड़ने के कई दशकों बाद भी उनके शासन की अनेक प्रवृत्तियाँ नए रूपों में भारतीय समाज में विद्यमान हैं।

भारतीय सामाजिक व्यवस्था और आर्थिक संरचना में किसानों की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण होती है, फिर भी उन्हें सदैव उपेक्षा और शोषण का सामना करते हुए एक उपेक्षित वर्ग के समान जीवन व्यतीत करना पड़ता

है। नाटक में किसानों की ऐसी स्थिति का चित्रण किया गया है कि अंग्रेजी शासन के दौरान उन्हें अपनी इच्छा के विरुद्ध मादक पदार्थों की खेती करने के लिए विवश किया जाता था। साथ ही उन पर लगान और विभिन्न करों का भारी बोझ भी था, जिसके कारण उनका जीवन अत्यंत कठिन और संघर्षपूर्ण बन गया था। नाटककार इस तथ्य को निम्नलिखित शब्दों में व्यक्त करता है –

"लच्छू : (व्यंग्य करते हुए) मतलब यह पृथ्वी भाई कि अगले चौत में पूरा गांव अफीम की फसल काटेगा। हर घर से अफीम की सुगंध आई... (पृथ्वी सिंह उसकी ओर घृणा से देखता है।) कम्पनी बहादुर के हुकुम के आगे किसकी चलेगी? हुकुम है कि अफीम की खेती करो... न करोगे तो पलटन आयेगी... (पृथ्वी सिंह फिर घृणा से लच्छू की ओर देखता है।)

सूरजपाल : अनर्थ न बोल लच्छू। अफीम की खेती न कभी देखी न सुनी... हम तो यही जानते हैं बेटा कि धरती माता के समान है... अफीम बोवे का पाप ने लेवे अपने सिर।

जयपाल : अफीम की खेती से अच्छा है ससुर परती पड़े रहें खेत।"[2] स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी किसानों की स्थिति में ज्यादा परिवर्तन नहीं आया।

नाटककार दिखाते हैं कि किसान आज भी आर्थिक संकट, ऋणग्रस्तता और शोषण की समस्याओं से जूझ रहा है। उसकी मेहनत का उचित मूल्य उसे नहीं मिलता, जबकि सत्ता और प्रशासन उसके जीवन की वास्तविक समस्याओं से दूर दिखाई देते हैं। इस प्रकार किसान की पीड़ा नाटक के सामाजिक यथार्थ का एक महत्वपूर्ण पक्ष बनकर सामने आती है।

नाटक में प्रतिपादित और एक प्रमुख समस्या है लगान की समस्या यह केवल एक ऐतिहासिक संदर्भ नहीं है, बल्कि आर्थिक शोषण की व्यापक व्यवस्था का प्रतीक है। अंग्रेजी शासन के दौरान लगान की समस्या जनता के समक्ष एक गंभीर चुनौती के रूप में उपस्थित थी। उस समय जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में लगान का बोझ इतना अधिक था कि समाज के उच्च वर्ग से लेकर सामान्य जन तक सभी आर्थिक कठिनाइयों का सामना करने के लिए विवश थे। इस प्रकार लगान की व्यवस्था ने जनजीवन को गहराई से प्रभावित किया। नाटक में इसका चित्रण निम्न प्रकार से किया गया है :

"अज्जू : चाचा, ऐसे काम कब तक चली... मांग मूंगकर खाना भी पड़े... काम भी करना पड़े... कहां चले जाएं.... क्या करें.... (थोड़ी देर सब चुप रहते हैं।)

जुलाहों पर तो बड़ी मुसीबत टूटी है कम्पनी के राज में... कैसे टोले के टोले उजड़ गए... सूरजपाल रू जयपाल रू हम पंचों की हालत क्या अच्छी है चाचा... बंधा बंधाया लगान देना पड़ता है... खेत में कुछ होय न होय... ठनाठन पैसा गिन देव... एक के चार..."[3]। नाटककार यह संकेत करते हैं कि स्वतंत्रता के बाद लगान का स्वरूप भले ही बदल गया हो, किंतु आर्थिक शोषण की प्रवृत्ति समाप्त नहीं हुई है।

आज भी सामान्य जनता इस प्रकार की आर्थिक असुरक्षाओं से पूर्णतः मुक्त नहीं हुई है। वह विभिन्न प्रकार के करों, महँगाई तथा आर्थिक असमानताओं के बोझ से गुजर रही है। नाटक इस सत्य को रेखांकित करता है कि शोषणकारी व्यवस्था केवल अपना स्वरूप और नाम बदलकर जीवित रहती है। इसलिए 'फिरंगी' वास्तव में केवल किसी व्यक्ति का प्रतिनिधित्व नहीं करता, बल्कि ऐसी व्यवस्था का प्रतीक है जो जनता के श्रम का लाभ उठाकर स्वयं को सशक्त बनाती है।

नाटक में प्रतिपादित महत्वपूर्ण विषयों में से एक सत्ता के प्रति शासक वर्ग का मोह है। नाटक में मुहम्मद खाँ ऐसा पात्र है जो जनता के कल्याण की अपेक्षा अपने पद और सत्ता को अधिक महत्व देता है। उसके लिए प्रजा का हित गौण है, जबकि अपनी कुर्सी और प्रभाव को बनाए रखना सर्वोपरि है। प्रारंभ में वह अंग्रेजी शासन के विरुद्ध संघर्ष में शामिल होने का वादा करता है, किंतु युद्ध में हार की संभावना अथवा पराजय का समाचार मिलते ही अपनी रक्षा का मार्ग खोजने लगता है –

"मुहम्मद खघं : (अकबर अली से) चार हाथियों पर नमदे कसवा दीजिए...कहारों से कहिए पालकियां लेकर किले के पिछले दरवाजे परतैयार रहें– सफर का सारा जरूरी सामान तैयार कीजिए– जनाने में हुक्म दीजिए कि जरूरी कीमती सामान के साथ सब तैयार हो जायें– तिजोरियों को छकड़ों पर लदवा दीजिए– हमारे साथ सिपाही भी जायेंगे– उन्हें तैयार होने का हुक्म दे दीजिए– हम सूरज डूबते–डूबते किला छोड़ देंगे...!"[4]

उक्त वक्तव्य औपनिवेशिक शासन की उस मानसिकता की याद दिलाता है, जहाँ शासकों का उद्देश्य जनता की सेवा नहीं, बल्कि शासन पर अपना नियंत्रण बनाए रखना था। नाटककार व्यंग्यात्मक शैली में यह दर्शाते हैं कि स्वतंत्र भारत में भी अनेक सत्ताधारी जनता को केवल सत्ता प्राप्ति का साधन मानते हैं। वे जनता की समस्याओं को समझने और उनका समाधान करने के बजाय अपने राजनीतिक पद तथा स्वार्थों की रक्षा में लगे रहते हैं।

गणतांत्रिक व्यवस्था में जनता को सर्वोच्च नागरिक माना जाता है, किंतु प्रश्न यह है कि क्या उसे वास्तव में वह स्थान प्राप्त है? उत्तर नकारात्मक प्रतीत होता है। किसी भी प्रशासनिक निर्णय–प्रक्रिया में सामान्य जनता की भागीदारी अत्यंत सीमित है। इतना ही नहीं, अनेक बार प्रशासनिक निर्णय जनता पर थोप दिए जाते हैं। जब भी ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न होती हैं, जिनसे सत्ताधारियों की राजनीतिक स्थिति या सत्ता पर संकट आने की संभावना होती है, तब वे जनता के हितों से मुँह मोड़ लेते हैं। ऐसी स्थिति में जनता की सुरक्षा और कल्याण उनके लिए गौण हो जाते हैं। नाटककार इस प्रवृत्ति पर तीखा व्यंग्य करते हैं। "मुहम्मद खघंरू लेकिन अगर फजल करें कि ज्वाला प्रसाद हार जाता है– तो क्या होगा? इतना भयानक सवाल है कि उसके ऊपर गौर ही नहीं किया जा सकता। फिरंगी फौज लूटमार, कत्ल का बाजार ही गर्म नहीं करेगी सबसे पहले हमें तोप से बांध कर उड़ा दिया जायेगा– हमारे पूरे खानदान को सूली पर चढ़ा दिया जायेगा–हमारी दौलत, इज्जत सब खघक में मिल जायेगी– हमारे खानदान का नाम हमेशा के लिए मिट जायेगा"।[5] नाटककार का विचार है कि जिस प्रकार अंग्रेजी शासनकाल में शासक वर्ग और जनता के बीच जो दूरी विद्यमान थी, उसी प्रकार वह आज भी बनी हुई है। शासक वर्ग सत्ता के केंद्र में बैठकर स्वयं को विशेषाधिकारी समझता है तथा जनता की समस्याओं से दूर रहता है।

धर्म परिवर्तन जैसे अत्यंत संवेदनशील विषय पर विचार करते समय नाटककार केवल उसके वैचारिक पक्ष तक ही सीमित नहीं रहता, बल्कि उसके सामाजिक एवं आर्थिक संदर्भों को भी ध्यान में रखता है। नाटक में धर्म–परिवर्तन की वास्तविकता को इस प्रकार व्यक्त किया गया है कि इसके पीछे कार्यरत सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक कारण भी स्पष्ट रूप से उभरकर सामने आते हैं। नाटककार यह संकेत करता है कि अनेक बार धर्म–परिवर्तन केवल आस्था का विषय नहीं होता, बल्कि सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियों से भी प्रभावित होता है –"अब हमारा धरम ईमान चौपट करने पर कमर बांध चुके हैं... सिपाहियों को अब ऐसे कारतूस दिए जा

रहे हैं जो सूअर और गाय की चरबी से बनाये जाते हैं, वो पूरे हिंदुस्तान को पाकिस्तान बना देना चाहते हैं। तौबा तौबा मुआज अल्लाह, इस मुल्क में अब न कोई हिन्दू रहेगा, न मुसलमान"[6] नाटककार यह दर्शाते हैं कि अनेक बार धर्म–परिवर्तन केवल धार्मिक आस्था का विषय नहीं होता, बल्कि उसके पीछे सामाजिक भेदभाव, आर्थिक असुरक्षा तथा शोषण जैसी परिस्थितियाँ भी सक्रिय रहती हैं।

नाटककार धर्म–परिवर्तन को व्यापक सामाजिक संदर्भ में समझाने का प्रयास करते हैं। धर्म प्रत्येक व्यक्ति के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण होता है, किंतु जब समाज में असमानता, भेदभाव और अन्याय की स्थिति उत्पन्न होती है, तब व्यक्ति स्वयं को दूसरे धर्म को स्वीकार करने के लिए भी विवश पाता है। नाटककार धर्म–परिवर्तन के इसी सामाजिक यथार्थ को स्पष्ट करने का प्रयास करते हैं।

हमारी पितृसत्तात्मक व्यवस्था में स्त्रियों को सदैव विभिन्न प्रकार के शोषण और उत्पीड़न का सामना करना पड़ता है। महिलाओं के विरुद्ध होने वाले अत्याचारों की अनेक रिपोर्टें आज भी विभिन्न माध्यमों से सामने आती रहती हैं। स्त्रियाँ निरंतर भेदभाव, हिंसा और सामाजिक असमानताओं का शिकार होती रही हैं। महिलाओं के अधिकारों के लिए चलाए जा रहे विभिन्न आंदोलन भी इस तथ्य को रेखांकित करते हैं कि आज भी महिलाएँ समाज में पूर्णतः सुरक्षित नहीं हैं। विकसित सामाजिक परिस्थितियों के बावजूद वे आर्थिक, सामाजिक तथा लैंगिक असमानताओं से पूरी तरह मुक्त नहीं हो पाई हैं।

नाटककार स्त्री की स्थिति के माध्यम से यह दर्शाते हैं कि स्वतंत्रता और समानता के दावों के बावजूद महिलाओं को अभी तक पूर्ण सम्मान और अधिकार प्राप्त नहीं हो सके हैं। स्त्री को वस्तु की तरह देखने वाली मानसिकता तथा उसके अधिकारों की उपेक्षा नाटक में आलोचना का विषय बनती है। नाटक में इस तथ्य को प्रमाणित करने वाली एक घटना इस प्रकार है –

"गोरा नट : इधर आ, अब तेरी इज्जत सरे बाजार लूटूंगा। मजे तेरी जवानी के सरे बाजार लूटूंगा तेरी हर चीज पर हक़ है मेरा ये मान ले तू भी नहीं मानेगी गर तो मैं तुझे हंटर से पीटूंगा (हंटर मारता है।) इधर आ दो घड़ी को अपना दिल बहलाऊंगा तुझसे (हंटर मारता है।) जरा कपड़े उतार अपने जरा जल्वा दिखा अपना।"[7] स्त्री को हमेशा एक वस्तू के सामान देखनेवाला सामजिक व्यवस्था पर तीखा व्यांख्या नाटक में प्रस्तुत किया है।

नाटक की व्यंग्यात्मक शैली उसे अत्यंत प्रभावशाली बनाती है। नाटककार ने नाटक के माध्यम से शासन, प्रशासन तथा नीति–व्यवस्था की कमियों पर तीखा व्यंग्य किया है। नीतियाँ सामान्यतः जनता के कल्याण के लिए बनाई जाती हैं, किंतु अनेक बार उनका लाभ केवल विशेष वर्गों तक ही सीमित रह जाता है। नाटक में हाजरा बेगम के माध्यम से इस तथ्य को उजागर किया गया है कि किस प्रकार पैसे के लिए न्याय–व्यवस्था को भी प्रभावित किया जा सकता है। नाटककार कानून की रक्षा करने वालों की भ्रष्ट प्रवृत्तियों का भी तीखा चित्रण करते हैं। सूरजपाल का कथन इस तथ्य को और अधिक स्पष्ट करता है – "वकील साहेब थोड़ी तो सरम किया चाहि। रूपया –पईसा के लिए धरम –ईमान न बेचो" प्रस्तुत वक्तव्य पैसे के लिए न्याय–व्यवस्था को प्रभावित करने वाली प्रवृत्तियों की ओर उँगली उठाता है।

नाटक में प्रशासनिक व्यवस्था में व्याप्त उदासीनता, भ्रष्टाचार और अवसरवादी मानसिकता जैसी प्रवृत्तियों को उजागर किया गया है। इससे यह स्पष्ट होता है कि भारत के स्वतंत्र होने के बादजूद भी उसी औपनिवेशिक

सत्ता की प्रभाव आज भी हमारे समाज में विद्यमान है। शोषण, सत्ता का केंद्रीकरण, जनता की उपेक्षा, प्रशासनिक अहंकार और सामाजिक असमानता जैसी प्रवृत्तियाँ इस प्रभाव की अभिव्यक्तियाँ हैं।

नाटककार पाठकों के समक्ष यह प्रश्न उपस्थित करता है कि स्वतंत्रता प्राप्ति के इतने वर्षों बाद भी यदि जनता को शोषण और असमानता का शिकार बने रहना पड़ता है, तो ऐसी स्वतंत्रता का क्या लाभ है? इस संदर्भ में देखा जाए तो नाटक में 'फिरंगी' एक प्रतीक बन जाता है, जो हर उस शासक वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है जो जनता पर नियंत्रण स्थापित करना चाहती है तथा अपने हितों को सर्वोपरि मानती है।

नाटक का विश्लेषण से इस निष्कर्ष मिलता हैं कि 'फिरंगी लौट आए' भारतीय समाज के बहुआयामी सामाजिक यथार्थ का सशक्त चित्रण करने वाला नाटक है। इसमें किसान की समस्याएँ, लगान और आर्थिक शोषण, सत्ता–लोलुप शासकों की मानसिकता, जनता को दोयम दर्जा देने की प्रवृत्ति, धर्म परिवर्तन की सच्चाई, स्त्री शोषण तथा नीति–व्यवस्था की विसंगतियों को प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत किया गया है। नाटककार यह स्थापित करते हैं कि अंग्रेज भले ही भारत छोड़कर चले गए हों, किंतु उनकी शोषणकारी मानसिकता, प्रशासनिक दृष्टिकोण और सत्ता–केंद्रित प्रवृत्तियाँ आज भी समाज में विभिन्न रूपों में मौजूद हैं।

इस प्रकार यह नाटक केवल अतीत की स्मृति नहीं, बल्कि वर्तमान भारतीय समाज का आलोचना प्रस्तुत करते है। यह पाठकों और दर्शकों को सोचने के लिए विवश करता है कि वास्तविक स्वतंत्रता केवल राजनीतिक परिवर्तन से नहीं, बल्कि सामाजिक न्याय, समानता, मानवीय गरिमा और जनहितकारी व्यवस्था की स्थापना से ही संभव है। यही इस नाटक का केंद्रीय संदेश और सबसे महत्वपूर्ण सामाजिक यथार्थ है।

संदर्भ :

1. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, संस्करण : सं –२००५, हिंदी साहित्य का इतिहास, विश्वभारती प्रकाशन धनवटे चेम्बर्स, सीतावार्डी, नागपुर –१२, पृ. सं –२१
2. असगर वजाहत, संस्करण –२०१६, असगर वजाहत के आठ नाटक, किताबघर प्रकाशन नई दिल्ली, पृ. सं. ११
3. वही, पृ. सं. –१३
4. वही, पृ. सं. –४१
5. वही, पृ. सं. –४०
6. वही, पृ. सं. –१४
7. वही, पृ. सं. –२०

MOB : 9496234782

MAIL ID : suchithrajayakumar29@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED PRINT RESEARCH JOURNAL
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. 14, Issue 7-8
पृष्ठ : 60-65

KARMA SIDDHANTA IN AŚVAGHOṢA'S BUDDHACARITA

Sharmila K Thankappan
Associate Professor, Department of Sanskrit,
Government Sanskrit College, Thiruvananthapuram, Kerala.

Abstract :

Buddha considers karma as the moral basis of the universe. Buddha's theory is that no creature is free from karma and that the results of karma performed in this life are experienced in this life itself. All other Indian philosophies, except that of the Cārvaka, accept the theory of karma with great importance. The text presents karma as an intentional action (cetana) that is motivated by desire and ignorance, which perpetuates the cycle of rebirth and suffering. Unlike other philosophical traditions that link karma to the will of a god or to ritualistic duties, the *Buddhacarita* reflects the Buddha's perspective that true liberation is achieved by eradicating craving and ignorance, thereby stopping the creation of new karma and breaking the cycle of rebirth. Aśvaghoṣa skilfully presented profound philosophical concepts in a simple yet evocative language, making them emotionally impactful and accessible. The present paper explores the idea that the Karma siddhanta which is the basic tenet of Buddhism as presented in the Buddhacarita.

Key Words : Asvaghosa, *Buddhacarita,* Karma siddhanta

Introduction :

Buddhacarita is the most significant and influential work authored by Aśvaghoṣa. This epic, composed of twenty-eight sargas (cantos), chronicles the life of Gautama Buddha. Its impact spans literature, poetics, culture, and the historical understanding of Indian society, offering a vivid portrayal of that era. Beginning with captivating depictions of the Buddha's descent into the world (Buddhāvatāra) and continuing through the account of his Mahāparinirvāṇa and the distribution of his relics, the narrative concludes with the reign of Emperor Aśōka.

Karma Siddhānta (The Doctrine of Karma)

The law of Karma was formulated by the Buddha in response to the question of the moral order underlying the universe. Karma is an integral part of Dharma, and all philosophical texts and religious traditions extensively discuss its significance. The smallest karma does not go unrewarded or unpunished; its consequences are inevitable. No being is exempt from the results of their karma. Based on the nature of karma and its consequences, the cycle of birth and death an eternal and endless process continues.

The Buddha rejected the idea of a divine creator. According to him the doctrine of karma, a person must inevitably experience the consequences of their actions in this very lifetime. Only the karma performed in this life and its effects within the same lifetime are relevant in Buddhist thought.

A creation is neither a source of joy nor sorrow for others. Everyone experiences it based on their own understanding. When knowledge is deeply realized, it transforms into a way of life and art. This is why all Indian philosophies give the highest recognition to knowledge.

The doctrine of karma and reincarnation are fundamental aspects of Indian philosophy. The concepts of worldly existence and liberation are closely tied to the principle of karma, and all philosophical traditions accept it with a sense of impartiality. According to Sanskrit grammarians, karma is what the doer intends to achieve through their action.

Karma exists in three forms :-

1) physical (bodily actions)
2) verbal (spoken actions) and
3) mental (thoughts).

In the epic *Buddhacarita*, Aśvaghoṣa has presented the Karma Siddhānta (Theory of Karma) in a very detailed and clear manner.

"Just as soil, water, seeds, and seasons contribute to the growth of a sprout (aṅkura), various sins (doṣa), passions (kāmarāga), and the actions arising from them serve as the root causes of suffering" –

"भूवारिकालबीजानि चाङ्कुरस्य हि कारणम्।
कामरागोद्भवं कर्म तथा दुखस्य कारणम्"।। (15.42)

"The continuous cycle of existence, whether in heaven or the lower realms, is driven by sins, passions, and similar influences. The distinction between lower, middle, and higher states of being is determined by one's deeds" (15.43).

"When sins are destroyed, the causes of the cycle of existence come to an end. Likewise, when actions cease, suffering also comes to an end. Since all things arise from the existence of something else, they naturally cease to exist when that underlying cause disappears" –

"दोषक्षये ध्रुवं त्वेतद्भवचक्रं विरम्यते ।
कर्मक्षये दुःखनाशो बीजाभावेऽङ्कुरः कुतः" ।। (15.44)

"If everything is impermanent, then suffering will always persist in this world and the next. This arises due to actions. The continuity of action is not permanent (eternity)" (18.9).

In the 19th chapter of *Buddhacharita*, titled The Meeting of Father and Son, Buddha tells his father – "Guardian of the Earth, understand the nature of action, its origin, its foundation (āśraya), and the results it brings upon maturation. Recognize that the world operates under the law of action. Therefore, engage in actions that bring benefit" (19.19). "Reflect on the true nature of the world. Good deeds are a person's ally, while bad ones bring harm. In the end, you must leave everything behind and depart alone, without support, carrying only the consequences of your actions" (19.20).

"The world of the living continues to exist driven by action (āśraya), whether in heaven, hell, the animal realm, or the human world. The cause of existence is threefold, as is the place of birth (yoni), and the deeds that people perform are diverse" (19.21).

"Direct yourself toward the right path and purify your actions in both speech and body. Strive for inner peace and stillness of the mind, for this is the ultimate goals there is no other" (19.22).

"Recognizing the world's constant restlessness, like the waves of the ocean, do not find joy in the cycles of existence. Instead, engage in virtuous actions that lead to the highest good, so that you may transcend the power of past deeds" (19.23).

"Understand suffering, its cause, its cessation, and the path to its cessation. By fully grasping these four truths, one overcomes great danger and avoids unfortunate rebirths (durgati)" (19.28).

In the 20th chapter of *Buddhacarita*, upon realizing that King Prasēnajit of Kōsala was a ruler of great renown, the Buddha sought to guide him toward righteousness. He spoke about avoiding harmful actions and cultivating virtue.

One should not indulge in evil deeds. One must remain free from arrogance and wrongdoing. When speaking, one should avoid words that cause discomfort or impatience, and when listening, one should do so without resistance. One must act in a way that does not bring disgrace. One should never engage in falsehood. Lastly, one must not overstep the boundaries of what is permitted by sacred teachings (20.21).

You should once again perform the task that safeguards this fruit, just as a wise person who has accomplished this before sows the sea, knowing the fruit it yields (20.24). In this world, one who holds a high position but succumbs to sin may appear to be in the light, yet his mind remains in darkness. Conversely, one who is devoted to righteousness but lacks a high status may seem to dwell in darkness, yet his mind shines with light (20.25).

Whoever holds a high position and follows the path of righteousness, his mind becomes pure and radiant. But whoever, despite being of low status, engages in sinful deeds, his mind grows exceedingly dark (20.26).

Therefore, recognizing the existence of these four groups, acts as you see fit. However, if you choose a life of indulgence, you will find yourself among the three lower classes, not in the highest (20.27).

It is impossible for one person to perform good deeds on behalf of another, and even if they do, the benefits do not transfer to the other person. The consequences of one's own actions cannot be erased; they are experienced personally, and no one receives the results of deeds they have not performed (20.28). Since what is not done has no effect, actions that are left undone do not lead to goodness (śreyas) in the future. Moreover, as they do not even result in the cessation of existence (vibhāva) in this world, you should therefore strive to follow the path of righteous deeds (20.29).

A wicked person who indulges excessively in sin finds no true joy in this world. Having accumulated his own sins, he will inevitably face the consequences in the hereafter (20.30). When four great mountains converge and crush the world, what can one do except rely on the support (āśraya) of righteous deeds performed to the best of one's ability by the Law (20.31). Even the Arūpa deities, still bound by the force of karma, are impermanent and subject to Time. Therefore, focus your mind on the cessation of activity (apravṛtti), for where there is no activity, there is no suffering (20.43). Since the body is the source of suffering, relying on actions like moving and standing, its burden is relieved through the attainment of knowledge, which leads to a state beyond the body (20.44).

The concept of karma in Buddhism does not involve the continuation of an eternal soul through multiple lifetimes. Instead, the Buddhist law of karma applies only to the actions performed in this life and the consequences that arise from them in this same life. It is not based on the existence of a soul but on human actions. Just as a shadow follows a person at night, the results of past karma will inevitably follow. If any theory is stable, then this is it: Attachment (karmāsakti) leads to desire and aversion (rāga-dveṣa). If this happens, then its results manifest both in this world and

the next. Detachment, on the other hand, does not produce any kind of result. Not only that, but through detachment, imagination, desires, and aversions are renounced. Old and new actions are destroyed. This also prevents them from sprouting again in the future.

In attachment, desire continues to reside in offspring and lineage. Sensory pleasures serve as a support for this attachment. Attachment is the cause of suffering. The mind is never fully satisfied; instead, its craving only increases through indulgence.

Conclusion :

In the 15th, 18th, and 19th chapters of the *Buddhacarita*, Aśvaghoṣa discusses the theory of karma in several contexts. In the 20th chapter, Aśvaghoṣa discusses the theory of karma in detail when he narrates the undertaking of the Kōsala king Prasēnajit to turn away from lust and towards goodness. All other Indian philosophies, except that of the Cārvaka, accept the theory of karma with great importance.

REFERENCE :

- Bimala chumav(1946), Asvaghosha, Royal Asiatic Society of Bangal.
- Damodaran K (2011), Bharatiya Chinta, Thiruvananthapuram : State Institute of Languages, Kerala,Thiruvananthapurm.
- Dasgupta Surendranath (2018), A History of Indian Philosophy, Vol.1, Delhi: Motilal Banarsidass Publishers.
- Johnston E.H (1995), Asvaghosha's Bhuddhacarita or Acts of the Buddha,Delhi: Motilal Banarsidass Publishers.
- Olivelle Patrick (2009), Life of Buddha by Asvaghosa, New York: New York University Press.

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED PRINT RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 14, Issue 7-8
पृष्ठ : 66-69

गीतांजलि श्रीकृत माई में स्त्री–विमर्श

वी. उमारानी, पीएच.डी शोधार्थी,
डॉ. जी. नीरजा, सह प्राध्यापक,
उच्च शिक्षा और शोध संस्थान, दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास।

समकालीन हिंदी साहित्य में स्त्री–विमर्श ने स्त्री के जीवन, उसकी अस्मिता, इच्छाओं, सामाजिक स्थिति और पितृसत्तात्मक व्यवस्था के साथ उसके संबंधों को नए दृष्टिकोण से देखने का प्रयास किया है। गीतांजलि श्री का उपन्यास माई इसी संदर्भ में एक महत्त्वपूर्ण कृति है। पहली बार 2001 में प्रकाशित माई में एक मध्यवर्गीय भारतीय परिवार के माध्यम से स्त्री के अस्तित्व और उसके दमन की जटिल संरचना को प्रस्तुत किया गया है।

उपन्यास की केंद्रीय पात्र 'माई' है। वह ऐसी स्त्री है जिसने अपना संपूर्ण जीवन परिवार की आवश्यकताओं, परंपराओं और पुरुष–प्रधान सामाजिक व्यवस्था के बीच बिताया है। उसका जीवन बाहरी रूप से सामान्य दिखाई देता है, किंतु उसके भीतर इच्छाओं, असहमति और मौन पीड़ा की एक पूरी दुनिया मौजूद है। उसकी बेटी सुनैना और बेटा सुबोध माई के व्यक्तित्व को अलग–अलग दृष्टियों से देखते हैं। इस प्रकार उपन्यास में स्त्री–विमर्श केवल माई की कहानी नहीं रह जाता, बल्कि माँ–बेटी के संबंध, पीढ़ियों के अंतर और स्त्री की आत्मचेतना का व्यापक आख्यान बन जाता है।

1. **'माई' : पितृसत्तात्मक व्यवस्था की प्रतिनिधि स्त्री :** माई का चरित्र भारतीय मध्यवर्गीय परिवार में स्त्री की पारंपरिक स्थिति को उजागर करता है। वह परिवार के लिए निरंतर काम करती है, सबकी आवश्यकताओं का ध्यान रखती है और अपनी इच्छाओं को पीछे रख देती है। माई के जीवन में पति और परिवार की अपेक्षाएँ इतनी प्रभावशाली हैं कि उसकी व्यक्तिगत पहचान लगभग समाप्त हो जाती है। वह स्वयं से अधिक दूसरों के लिए जीती है। उसका 'माई' होना ही उसकी सामाजिक पहचान बन जाता है। यह स्थिति स्त्री के उस रूप को सामने लाती है जिसमें समाज स्त्री को 'अच्छी पत्नी', 'अच्छी माँ' और 'अच्छी गृहिणी' बनने की अपेक्षा करता है, लेकिन उसके व्यक्तित्व और इच्छाओं को स्वतंत्र महत्व नहीं देता। घर के छोटे–बड़े कामों में माई की निरंतर व्यस्तता और परिवार के सदस्यों की जरूरतों को अपनी जरूरतों से ऊपर रखना इस बात को स्पष्ट करता है कि घरेलू श्रम को स्त्री का स्वाभाविक कर्तव्य मान लिया गया है।

2. **मौन : स्त्री–दमन का सबसे प्रभावी रूप :** माई में स्त्री–विमर्श का सबसे महत्वपूर्ण पक्ष 'मौन' है। माई बहुत कुछ सहती है, लेकिन बहुत कम बोलती है। उसका मौन उसकी कमजोरी मात्र नहीं है, यह उस सामाजिक व्यवस्था का परिणाम है जिसने स्त्री को अपनी बात कहने का अधिकार सीमित रूप से दिया है। माई की चुप्पी को दो स्तरों पर समझा जा सकता है। एक ओर वह पितृसत्ता के दबाव को दिखाती है, दूसरी ओर उसके भीतर

दबे हुए प्रतिरोध का संकेत भी देती है। वह खुलकर विद्रोह नहीं करती, लेकिन उसकी चुप्पी पाठक को यह प्रश्न करने के लिए विवश करती है कि आखिर उसे बोलने का अवसर क्यों नहीं मिला। इस प्रकार उपन्यास स्त्री के 'न बोले गए' अनुभवों को साहित्यिक अभिव्यक्ति देता है।

3. सुनैना : नई स्त्री-चेतना का प्रतिनिधित्व : सुनैना का चरित्र माई के विपरीत स्त्री की नई चेतना का प्रतिनिधित्व करता है। वह अपनी माँ की स्थिति को देखकर प्रश्न करती है कि स्त्री को क्यों केवल परिवार और परंपराओं के अनुरूप जीवन जीना चाहिए। सुनैना माई को केवल एक माँ के रूप में नहीं देखती, बल्कि एक स्वतंत्र व्यक्ति के रूप में समझना चाहती है। उसकी दृष्टि में माई की अपनी इच्छाएँ, भावनाएँ और आकांक्षाएँ भी होनी चाहिए। जब सुनैना माई के जीवन और उसके दमन को समझने का प्रयास करती है, तो वह अपनी माँ के मौन को स्वीकार करने के बजाय उसके पीछे छिपे अर्थों को खोजती है। यह खोज स्वयं स्त्रीवादी चेतना का महत्वपूर्ण रूप है।

4. माँ और बेटी का संबंध : उपन्यास में माँ–बेटी का संबंध केवल भावनात्मक संबंध नहीं है। यह दो पीढ़ियों की स्त्री–अनुभूति के बीच संवाद भी है। माई ने जिस सामाजिक व्यवस्था को लगभग मौन रूप से स्वीकार किया, सुनैना उसी व्यवस्था पर प्रश्न उठाती है। दोनों के बीच का अंतर यह बताता है कि स्त्री की चेतना समय के साथ किस प्रकार बदलती है। माँ की पीड़ा बेटी की चेतना का आधार बनती है। सुनैना अपनी माँ के जीवन को देखकर यह समझती है कि केवल परिवार की 'अच्छी स्त्री' बन जाना पर्याप्त नहीं है, स्त्री को अपने अस्तित्व के प्रति भी सजग होना चाहिए। इस प्रकार माई और सुनैना का संबंध स्त्री–विमर्श में पीढ़ियों के बीच चेतना के संक्रमण का उदाहरण प्रस्तुत करता है।

5. विवाह संस्था और स्त्री की स्थिति : माई में विवाह संस्था को एक ऐसी सामाजिक संरचना के रूप में देखा गया है जिसमें स्त्री से त्याग और समर्पण की अपेक्षा अधिक की जाती है। माई के वैवाहिक जीवन में उसकी इच्छाओं की तुलना में परिवार और पति की इच्छाओं का महत्व अधिक है। यहाँ विवाह केवल प्रेम या साझेदारी का संबंध नहीं रह जाता, बल्कि सामाजिक भूमिकाओं और कर्तव्यों की व्यवस्था बन जाता है। स्त्री से अपेक्षा की जाती है कि वह पति के परिवार में स्वयं को ढाल ले और अपनी असहमति को दबा दे। इस संदर्भ में माई का जीवन उस प्रश्न को सामने लाता है कि यदि विवाह में स्त्री की स्वतंत्र इच्छा और पहचान के लिए पर्याप्त स्थान न हो, तो क्या उसे वास्तविक समानता का संबंध कहा जा सकता है?

6. घरेलू श्रम और स्त्री की अदृश्य भूमिका : स्त्री–विमर्श में घरेलू श्रम का प्रश्न अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। माई में घरेलू काम स्त्री के जीवन का केंद्रीय हिस्सा है। खाना बनाना, परिवार की देखभाल करना, घर को व्यवस्थित रखना और सभी की आवश्यकताओं का ध्यान रखना माई की दिनचर्या है। लेकिन इस श्रम को आर्थिक या सामाजिक मूल्य नहीं मिलता। परिवार माई की सेवाओं को उसके 'कर्तव्य' के रूप में देखता है। यही स्थिति पितृसत्ता की एक गहरी संरचना को सामने लाती हैकृस्त्री द्वारा किए जाने वाले श्रम को प्रेम, कर्तव्य और स्वाभाविक जिम्मेदारी के नाम पर अदृश्य कर देना। माई परिवार के सदस्यों के लिए लगातार उपलब्ध रहती है, लेकिन उसके अपने आराम और इच्छाएँ परिवार की प्राथमिकताओं में पीछे चली जाती हैं।

7. स्त्री की देह और सामाजिक नियंत्रण : स्त्री की देह पर सामाजिक नियंत्रण भी माई के स्त्री–विमर्श का महत्वपूर्ण पक्ष है। भारतीय समाज में स्त्री की देह को परिवार की प्रतिष्ठा, नैतिकता और मर्यादा से जोड़कर देखा

जाता है। माई और सुनैना की पीढ़ियों के अंतर के माध्यम से यह दिखाई देता है कि नई पीढ़ी स्त्री की देह और व्यक्तिगत स्वतंत्रता को अधिक स्वायत्त दृष्टि से देखने की कोशिश करती है। सुनैना के प्रश्न और उसका आत्मनिर्णय इस बात का संकेत हैं कि स्त्री अपनी देह, जीवन और भविष्य के बारे में निर्णय लेने का अधिकार स्वयं रखती है।

8. स्त्री की पहचान : 'माई' या एक स्वतंत्र व्यक्ति? : उपन्यास का शीर्षक ही स्त्री की पहचान का महत्वपूर्ण प्रश्न उठाता है। 'माई' एक संबोधन है, लेकिन धीरे–धीरे यह संबोधन उसके व्यक्तिगत नाम और पहचान पर हावी हो जाता है।

वह माँ है, पत्नी है और गृहिणी है – लेकिन इन भूमिकाओं के बाहर उसका अपना व्यक्तित्व कहाँ है? यही प्रश्न उपन्यास के स्त्री–विमर्श का केंद्र है। स्त्री को उसके संबंधों के माध्यम से पहचानना और उसे एक स्वतंत्र व्यक्ति के रूप में पहचाननाकृइन दोनों के बीच का अंतर माई प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करता है।

9. माई का मौन : प्रतिरोध या समर्पण? : माई के मौन को केवल समर्पण मानना उचित नहीं होगा। उसका मौन कई स्तरों पर अर्थ पैदा करता है। वह सामाजिक दबाव के कारण चुप है, लेकिन उसकी चुप्पी में असहमति और पीड़ा भी छिपी है। स्त्रीवादी दृष्टि से देखें तो माई का मौन एक ऐसा क्षेत्र है जहाँ दबा हुआ स्त्री–अनुभव मौजूद रहता है। वह खुलकर विद्रोह नहीं करती, फिर भी उसका मौन पाठक को पितृसत्ता के स्वरूप पर विचार करने के लिए बाध्य करता है। यही कारण है कि माई का चरित्र पारंपरिक 'आदर्श स्त्री' की छवि को स्वीकार करने के साथ–साथ उसे भीतर से प्रश्नांकित भी करता है।

10. सुबोध और पुरूष–दृष्टि : उपन्यास में सुबोध का दृष्टिकोण भी महत्वपूर्ण है। वह माई को एक अलग तरीके से देखता है और उसके अनुभवों को समझने की प्रक्रिया से गुजरता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि स्त्री–विमर्श केवल स्त्रियों द्वारा स्त्रियों के बारे में बोलना नहीं है। पुरुष को भी स्त्री के अनुभव और उसकी स्वतंत्र सत्ता को समझने की आवश्यकता है। सुबोध के माध्यम से पाठक यह देख सकता है कि परिवार के पुरुष सदस्य अक्सर स्त्री के श्रम और त्याग को स्वाभाविक मान लेते हैं। जब वे उस जीवन को नए दृष्टिकोण से देखते हैं, तो स्त्री के प्रति उनकी समझ में परिवर्तन की संभावना पैदा होती है।

11. परंपरा बनाम आधुनिकता : माई में परंपरा और आधुनिकता का संघर्ष भी स्त्री–विमर्श के संदर्भ में महत्वपूर्ण है। माई की पीढ़ी पारंपरिक मूल्यों और पारिवारिक मर्यादाओं से अधिक बँधी हुई है, जबकि सुनैना आधुनिक शिक्षा, व्यक्तिगत स्वतंत्रता और आत्मनिर्णय की चेतना से प्रभावित है। लेकिन लेखिका आधुनिकता को भी पूरी तरह आदर्श रूप में प्रस्तुत नहीं करतीं। प्रश्न यह है कि आधुनिकता स्त्री को वास्तव में कितनी स्वतंत्रता देती है और वह स्वतंत्रता सामाजिक संरचनाओं के भीतर किस प्रकार संभव होती है। इस प्रकार उपन्यास परंपरा और आधुनिकता दोनों की आलोचनात्मक पड़ताल करता है।

12. स्त्री–विमर्श की दृष्टि से माई का महत्व : माई का महत्व इस बात में है कि यह स्त्री–शोषण को किसी एक घटना के रूप में प्रस्तुत नहीं करता। यहाँ शोषण दैनिक जीवन की सामान्य गतिविधियों में छिपा हुआ है। परिवार, विवाह, मातृत्व, घरेलू श्रम, मौन और सामाजिक प्रतिष्ठाकृये सभी स्त्री को नियंत्रित करने वाली संरचनाओं का हिस्सा बन जाते हैं। साथ ही उपन्यास स्त्री को केवल पीड़ित के रूप में प्रस्तुत नहीं करता। सुनैना की प्रश्नाकुलता और माई के भीतर छिपे अनुभव स्त्री–अस्मिता की संभावनाओं को सामने लाते हैं।

गीतांजलि श्री का माई भारतीय मध्यवर्गीय परिवार के भीतर स्त्री के जीवन की सूक्ष्म और जटिल पड़ताल करने वाला महत्त्वपूर्ण उपन्यास है। माई का जीवन उस स्त्री की कहानी है जिसकी पहचान परिवार के भीतर तो अत्यंत महत्त्वपूर्ण है, लेकिन स्वयं उसके लिए उसकी व्यक्तिगत पहचान को पर्याप्त स्थान नहीं मिलता। उपन्यास में स्त्री–विमर्श के अनेक आयाम दिखाई देते हैं– पितृसत्ता, घरेलू श्रम, विवाह संस्था, स्त्री का मौन, देह पर नियंत्रण, माँ–बेटी संबंध, स्त्री–अस्मिता और नई स्त्री–चेतना। माई और सुनैना की तुलना के माध्यम से लेखिका यह दिखाती हैं कि स्त्री की चेतना एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक किस प्रकार विकसित होती है।

अंततः माई का सबसे महत्वपूर्ण स्त्रीवादी प्रश्न यही है कि क्या स्त्री को केवल उसके संबंधों 'माँ, पत्नी, बेटी या बहू' के माध्यम से पहचाना जाएगा, अथवा उसे एक स्वतंत्र मनुष्य के रूप में भी स्वीकार किया जाएगा? उपन्यास इसी प्रश्न को पाठक के सामने रखता है और स्त्री की स्वतंत्र पहचान की आवश्यकता को रेखांकित करता है।

संदर्भ-सूची :

1. श्री, गीतांजलि। माई। नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन।
2. श्री, गीतांजलि। रेत समाधि। नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन।
3. जैन, प्रभा। स्त्री उपेक्षिता। नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन।
4. मैत्रेयी पुष्पा। खुली खिड़कियाँ। नई दिल्ली : सामयिक प्रकाशन।
5. पाण्डेय, मैनेजर। साहित्य और इतिहास–दृष्टि। नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन।

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED PRINT RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 14, Issue 7-8
पृष्ठ : 70–78

योगिक ग्रन्थों में वर्णित भक्तियोग की वर्तमान समय में उपादेयता : एक समीक्षात्मक अध्ययन

वंदना, शोध विद्यार्थी, योग विभाग,
डॉ. नारायण प्रकाश, प्रोफेसर, योग संकाय
एशियन इंटरनेशनल विश्वविद्यालय, इम्फाल, मणिपुर।

सारांश :

भारतीय योग परम्परा में योग को केवल शारीरिक व्यायाम अथवा स्वास्थ्य–संवर्धन की प्रक्रिया न मानकर आत्मिक उन्नति, मानसिक संतुलन तथा जीवन के परम उद्देश्य की प्राप्ति का साधन माना गया है। योग की विभिन्न धाराओं में भक्तियोग का विशेष स्थान है। भक्तियोग ईश्वर के प्रति प्रेम, श्रद्धा, विश्वास, समर्पण तथा अनन्य भाव को साधना का आधार बनाता है। भगवद्गीता, नारद भक्तिसूत्र तथा अन्य भारतीय आध्यात्मिक ग्रन्थों में भक्तियोग के स्वरूप, साधना तथा उसके फल का विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है।

वर्तमान युग तीव्र गति, प्रतिस्पर्धा, भौतिक आकांक्षाओं, सामाजिक परिवर्तन तथा मानसिक दबाव का युग है। आधुनिक मनुष्य के जीवन में तनाव, असंतोष, अकेलापन, असुरक्षा, संबंधों में दूरी तथा जीवन–मूल्यों के संकट जैसी परिस्थितियाँ दिखाई देती हैं। ऐसी स्थिति में भक्तियोग व्यक्ति को आंतरिक स्थिरता, आशावाद, आत्मनियंत्रण, करुणा, समर्पण तथा मानसिक शांति प्रदान करने वाली जीवन–पद्धति के रूप में उपयोगी हो सकता है।

प्रस्तुत शोध–पत्र का उद्देश्य योगिक एवं भक्तिपरक ग्रन्थों में वर्णित भक्तियोग की संकल्पना का अध्ययन करते हुए वर्तमान समय में उसकी उपादेयता का समीक्षात्मक विवेचन करना है। अध्ययन में वर्णनात्मक एवं विश्लेषणात्मक पद्धति का प्रयोग किया गया है तथा भगवद्गीता, नारद भक्तिसूत्र, पतञ्जलि योगसूत्र, श्रीमद्भागवत आदि प्रमुख ग्रन्थों को आधार बनाया गया है। अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि भक्तियोग केवल धार्मिक अनुष्ठान तक सीमित न होकर व्यक्ति के मानसिक, नैतिक, सामाजिक तथा आध्यात्मिक विकास में सहायक जीवन–दृष्टि प्रस्तुत करता है।

प्रमुख शब्द : भक्तियोग, भक्ति, योग, भगवद्गीता, नारद भक्तिसूत्र, ईश्वर–प्रणिधान, मानसिक स्वास्थ्य, आध्यात्मिकता, आधुनिक जीवन।

1. प्रस्तावना :

भारतीय दर्शन एवं संस्कृति में योग की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है। योग का मूल उद्देश्य मनुष्य को उसके

बाह्य जीवन से आंतरिक जीवन की ओर ले जाना तथा आत्मचेतना का विकास करना है। योग की विभिन्न परम्पराओं में कर्मयोग, ज्ञानयोग, राजयोग तथा भक्तियोग प्रमुख माने जाते हैं। इन सभी मार्गों का अंतिम उद्देश्य व्यक्ति के जीवन को अधिक संतुलित, सार्थक एवं आत्मोन्मुख बनाना है।

भक्तियोग में साधक ईश्वर के प्रति प्रेम, श्रद्धा एवं समर्पण को आध्यात्मिक उन्नति का आधार बनाता है। भगवद्गीता के बारहवें अध्याय में भक्तियोग का विशेष विवेचन मिलता है। भगवद्गीता में भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन को भक्ति, समर्पण तथा निष्काम कर्म के माध्यम से आध्यात्मिक उन्नति का मार्ग बताते हैं। आधुनिक अकादमिक व्याख्याओं में भी भगवद्गीता में भक्तियोग को एक स्वतंत्र एवं महत्वपूर्ण योग–पद्धति के रूप में देखा गया है।

नारद भक्तिसूत्र में भक्ति को परम प्रेम का स्वरूप बताया गया है। नारद परम्परा में भक्ति को केवल इच्छा–पूर्ति का माध्यम नहीं माना गया, बल्कि ऐसी अवस्था के रूप में प्रस्तुत किया गया है जिसमें साधक की चेतना ईश्वर के प्रति प्रेम और समर्पण में केन्द्रित हो जाती है।

पतञ्जलि योगसूत्र में भक्तियोग शब्द का उसी रूप में विस्तार नहीं मिलता जिस रूप में भगवद्गीता में मिलता है, लेकिन ईश्वर–प्रणिधान को योग–साधना का महत्वपूर्ण अंग माना गया है। इस कारण पतञ्जलि की योग परम्परा और भक्तियोग के बीच वैचारिक एवं व्यावहारिक संबंध का अध्ययन महत्वपूर्ण हो जाता है।

वर्तमान समय में मनुष्य भौतिक सुविधाओं के विस्तार के बावजूद मानसिक अशांति, तनाव, असुरक्षा, प्रतिस्पर्धा तथा अस्तित्वगत प्रश्नों से जूझ रहा है। इसलिए यह प्रश्न महत्वपूर्ण हो जाता है कि प्राचीन योगिक ग्रन्थों में वर्णित भक्तियोग आधुनिक मनुष्य के लिए किस सीमा तक उपयोगी हो सकता है।

2. अध्ययन की आवश्यकता :

वर्तमान जीवन–शैली में व्यक्ति का अधिकांश समय कार्य, आर्थिक प्रतिस्पर्धा, सामाजिक अपेक्षाओं तथा तकनीकी माध्यमों के बीच व्यतीत होता है। बाहरी सुविधाओं में वृद्धि के साथ आंतरिक संतोष की समस्या भी दिखाई देती है।

ऐसी परिस्थितियों में योग एवं आध्यात्मिकता की ओर बढ़ती रुचि इस बात का संकेत देती है कि मनुष्य केवल शारीरिक स्वास्थ्य ही नहीं बल्कि मानसिक एवं भावनात्मक संतुलन की भी खोज कर रहा है।

भक्तियोग इस संदर्भ में महत्वपूर्ण हो सकता है क्योंकि इसमें व्यक्ति को अपने अहं, आसक्ति एवं व्यक्तिगत इच्छाओं से ऊपर उठकर प्रेम, समर्पण, करुणा और विश्वास की ओर बढ़ने की प्रेरणा दी जाती है।

3. अध्ययन के उद्देश्य :

प्रस्तुत अध्ययन के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं :

1. भक्तियोग की संकल्पना को स्पष्ट करना।
2. प्रमुख योगिक एवं भक्तिपरक ग्रन्थों में वर्णित भक्तियोग का अध्ययन करना।
3. भगवद्गीता में वर्णित भक्तियोग की प्रमुख विशेषताओं का विवेचन करना।
4. नारद भक्तिसूत्र में प्रतिपादित भक्ति के स्वरूप एवं साधना का अध्ययन करना।
5. भक्तियोग तथा पतञ्जलि के ईश्वर–प्रणिधान के संबंध को समझना।
6. वर्तमान समय में भक्तियोग की मानसिक एवं भावनात्मक उपयोगिता का विश्लेषण करना।
7. व्यक्ति एवं समाज के नैतिक विकास में भक्तियोग की भूमिका का अध्ययन करना।

8. आधुनिक जीवन में भक्तियोग की संभावनाओं एवं सीमाओं का समीक्षात्मक मूल्यांकन करना।

4. शोध-पद्धति :

प्रस्तुत अध्ययन मूलतः समीक्षात्मक एवं वर्णनात्मक अध्ययन है। इसमें प्राथमिक एवं द्वितीयक स्रोतों का उपयोग किया गया है।

4.1 प्राथमिक स्रोत :

प्रमुख प्राथमिक स्रोतों में निम्नलिखित ग्रन्थ सम्मिलित हैं –

- श्रीमद्भगवद्गीता
- नारद भक्तिसूत्र
- पतञ्जलि योगसूत्र
- श्रीमद्भागवत महापुराण
- उपनिषदों में उपलब्ध ईश्वर एवं आत्मविद्या संबंधी विचार।

4.2 द्वितीयक स्रोत :

द्वितीयक स्रोतों में योग एवं भारतीय दर्शन से संबंधित पुस्तकें, शोध–पत्र, शोध–लेख तथा उपलब्ध अकादमिक साहित्य का अध्ययन किया गया है।

4.3 अध्ययन की प्रकृति :

अध्ययन में ग्रन्थों की विषय–वस्तु का वर्णन करने के साथ–साथ वर्तमान सामाजिक एवं मानसिक परिस्थितियों के संदर्भ में उनकी प्रासंगिकता का आलोचनात्मक विश्लेषण किया गया है।

5. भक्तियोग : संकल्पना एवं स्वरूप :

'भक्ति' शब्द संस्कृत की 'भज्' धातु से निर्मित माना जाता है, जिसका संबंध सेवा, सहभागिता, श्रद्धा तथा समर्पण से है। सामान्य अर्थ में भक्ति ईश्वर के प्रति प्रेम एवं श्रद्धा की भावना है।

किन्तु दार्शनिक दृष्टि से भक्ति केवल भावनात्मक लगाव नहीं है। यह साधक के जीवन–दृष्टिकोण में परिवर्तन की प्रक्रिया है। जब व्यक्ति अपने अहंकार, स्वार्थ और अत्यधिक आसक्ति से ऊपर उठकर किसी उच्चतर सत्ता के प्रति समर्पित होता है, तब भक्ति आध्यात्मिक साधना का रूप धारण करती है।

नारद भक्तिसूत्र में भक्ति को परम प्रेम का स्वरूप माना गया है। इसके अनुसार भक्ति ऐसी अवस्था है जिसमें साधक का मन सांसारिक इच्छाओं से ऊपर उठकर ईश्वर के प्रति एकाग्र होता है।

इस प्रकार भक्तियोग को निम्नलिखित तत्वों के समन्वय के रूप में देखा जा सकता है –

- श्रद्धा
- प्रेम
- समर्पण
- ईश्वर–स्मरण
- सेवा
- नाम–स्मरण
- सत्संग

- आत्मनियंत्रण
- अहंकार का क्षय
- करुणा एवं सद्भाव

6. भगवद्गीता में भक्तियोग :

भगवद्गीता भक्तियोग के अध्ययन का प्रमुख स्रोत है। गीता में भक्ति को कर्म एवं ज्ञान से पृथक करके केवल एक धार्मिक क्रिया के रूप में प्रस्तुत नहीं किया गया, बल्कि जीवन को ईश्वर के प्रति समर्पित करने की व्यापक दृष्टि के रूप में समझाया गया है।

भगवद्गीता का बारहवाँ अध्याय विशेष रूप से भक्तियोग को समर्पित है। यहाँ भक्त के गुणों का वर्णन करते हुए द्वेषरहितता, मैत्री, करुणा, अहंकार का अभाव, सुख–दुःख में समता, क्षमा, संतोष और संयम जैसे गुणों को महत्व दिया गया है।

इससे स्पष्ट होता है कि गीता में भक्तियोग का अर्थ केवल पूजा–पद्धति नहीं है। भक्तियोग व्यक्ति के व्यवहार एवं व्यक्तित्व में सकारात्मक परिवर्तन की अपेक्षा करता है।

गीता में कर्म को त्यागने के स्थान पर कर्म के फल की आसक्ति को त्यागने पर बल दिया गया है। इस प्रकार भक्तियोग कर्मयोग के साथ भी जुड़ता है। व्यक्ति अपने कर्तव्यों का निर्वहन करते हुए उनके परिणाम को ईश्वर के प्रति समर्पित कर सकता है।

7. नारद भक्तिसूत्र में भक्तियोग :

नारद भक्तिसूत्र भक्तियोग की प्रमुख ग्रन्थ–परम्पराओं में से एक है। इसमें भक्ति को परम प्रेम के रूप में परिभाषित किया गया है।

नारद के अनुसार भक्ति का उद्देश्य केवल सांसारिक लाभ प्राप्त करना नहीं है। शुद्ध भक्ति व्यक्ति को ऐसी आंतरिक संतुष्टि की ओर ले जाती है जिसमें बाहरी वस्तुओं पर निर्भरता कम होती जाती है।

नारद भक्तिसूत्र में भक्ति के विकास के लिए सत्संग, कथा–श्रवण, ईश्वर–स्मरण, सेवा तथा ईश्वर के प्रति अनन्य भाव जैसे साधनों का महत्व दिखाई देता है।

भक्ति के माध्यम से व्यक्ति अपने अहंकार तथा स्वार्थ को कम करके व्यापक जीवन–दृष्टि विकसित कर सकता है। इस दृष्टि से नारद की भक्ति आधुनिक समाज में भी उपयोगी जीवन–मूल्य प्रदान करती है।

8. पतञ्जलि योगसूत्र और ईश्वर-प्रणिधान :

पतञ्जलि योगदर्शन में ईश्वर–प्रणिधान का विशेष महत्व है। ईश्वर–प्रणिधान का सामान्य अर्थ ईश्वर के प्रति समर्पण या अपने कर्मों को उच्चतर सत्ता के प्रति अर्पित करना माना जा सकता है।

पतञ्जलि की योग परम्परा और भक्तियोग की परम्परा में पूर्ण समानता नहीं है, क्योंकि दोनों की दार्शनिक संरचनाएँ अलग–अलग हैं। फिर भी ईश्वर के प्रति समर्पण, अहंकार का शमन और मानसिक एकाग्रता जैसे कुछ व्यावहारिक तत्व दोनों परम्पराओं में दिखाई देते हैं।

शोध–साहित्य में भी पतञ्जलि के ईश्वर–प्रणिधान और भगवद्गीता के भक्तियोग के बीच संबंध का अध्ययन किया गया है। इससे संकेत मिलता है कि भारतीय योग परम्पराओं में भक्ति एवं योग को पूरी तरह पृथक मानना हमेशा उचित नहीं है।

9. भक्तियोग की प्रमुख साधनाएँ :

भक्तियोग में साधना के अनेक रूप प्राप्त होते हैं। इनमें प्रमुख हैं –

9.1 नाम-स्मरण :

ईश्वर के नाम का स्मरण मन को एकाग्र करने का माध्यम माना गया है। नियमित नाम–स्मरण व्यक्ति को मानसिक रूप से स्थिर करने में सहायक हो सकता है।

9.2 कीर्तन :

सामूहिक रूप से भक्ति–गीत एवं ईश्वर के नाम का गायन सामाजिक जुड़ाव तथा भावनात्मक अभिव्यक्ति का माध्यम बन सकता है।

9.3 सत्संग :

सत्संग का उद्देश्य सकारात्मक विचारों एवं आध्यात्मिक चिंतन के वातावरण में रहना है। आधुनिक संदर्भ में इसका अर्थ अच्छे साहित्य, सकारात्मक संगति तथा स्वस्थ वैचारिक वातावरण से भी जोड़ा जा सकता है।

9.4 सेवा :

भक्ति को केवल ईश्वर–पूजन तक सीमित न रखकर मानव–सेवा से जोड़ना भक्तियोग की महत्वपूर्ण विशेषता है। सेवा अहंकार को कम करने तथा सामाजिक उत्तरदायित्व की भावना विकसित करने में सहायक हो सकती है।

9.5 समर्पण :

समर्पण का अर्थ निष्क्रियता नहीं है। इसका अर्थ है कि व्यक्ति अपने कर्तव्य का ईमानदारी से पालन करते हुए परिणाम के प्रति अत्यधिक आसक्ति को कम करे।

10. वर्तमान समय में भक्तियोग की उपादेयता :

10.1 मानसिक तनाव में संभावित उपयोगिता :

आधुनिक जीवन में तनाव एक महत्वपूर्ण चुनौती है। भक्तियोग व्यक्ति को ऐसी मानसिक दृष्टि प्रदान कर सकता है जिसमें वह प्रत्येक परिस्थिति पर पूर्ण नियंत्रण की अपेक्षा छोड़कर अपने प्रयासों को उच्चतर उद्देश्य से जोड़ता है। समर्पण की भावना व्यक्ति को अनिश्चित परिस्थितियों से निपटने में मनोवैज्ञानिक आधार प्रदान कर सकती है।

हालाँकि भक्तियोग को मानसिक स्वास्थ्य संबंधी सभी समस्याओं का चिकित्सकीय उपचार नहीं माना जाना चाहिए। गंभीर मानसिक समस्याओं में आवश्यक चिकित्सा एवं विशेषज्ञ सहायता महत्वपूर्ण रहती है।

10.2 चिंता एवं असुरक्षा :

भविष्य के प्रति अत्यधिक चिंता आधुनिक मनुष्य के जीवन में सामान्य अनुभव है। भक्तियोग व्यक्ति को वर्तमान कर्तव्य पर ध्यान केन्द्रित करने तथा परिणाम के प्रति अत्यधिक आसक्ति को कम करने की प्रेरणा देता है। यह दृष्टिकोण व्यक्ति में स्वीकार्यता एवं धैर्य का विकास कर सकता है।

10.3 अहंकार एवं आत्मकेन्द्रिता में कमी :

आधुनिक जीवन में व्यक्तिगत उपलब्धि, सामाजिक प्रतिष्ठा तथा भौतिक सफलता को अत्यधिक महत्व दिया जाता है। भक्तियोग व्यक्ति को यह स्मरण कराता है कि उसका अस्तित्व केवल व्यक्तिगत उपलब्धियों तक

सीमित नहीं है।

समर्पण, सेवा और करुणा की भावना आत्मकेन्द्रित दृष्टिकोण को कम करने में सहायक हो सकती है।

10.4 संबंधों में सुधार :

भक्तियोग में प्रेम, करुणा, क्षमा, मैत्री एवं द्वेषरहितता जैसे गुणों को महत्व दिया गया है। यदि इन मूल्यों को पारिवारिक एवं सामाजिक जीवन में लागू किया जाए तो संबंधों में अधिक सहिष्णुता एवं समझ विकसित हो सकती है।

विशेष रूप से क्रोध, अहंकार तथा प्रतिशोध की प्रवृत्तियों को नियंत्रित करने में भक्तिपरक जीवन–दृष्टि उपयोगी हो सकती है।

10.5 नैतिक विकास :

भक्तियोग व्यक्ति को केवल धार्मिक आचरण नहीं सिखाता बल्कि उसके चरित्र निर्माण पर भी बल देता है।

भक्ति की परिपक्व अवस्था में सत्य, करुणा, क्षमा, सेवा, संयम तथा संतोष जैसे गुणों का विकास अपेक्षित है। इस प्रकार भक्तियोग नैतिक जीवन के लिए आधार प्रदान कर सकता है।

10.6 सामाजिक सद्भाव :

भक्ति परम्पराओं में सामूहिक कीर्तन, सेवा, सत्संग तथा धार्मिक–सांस्कृतिक गतिविधियाँ सामाजिक सहभागिता को बढ़ावा दे सकती हैं।

यदि भक्ति को संकीर्ण धार्मिक पहचान के बजाय प्रेम, सेवा और मानव–मात्र के प्रति सद्भाव के रूप में समझा जाए तो यह सामाजिक समरसता में योगदान दे सकती है।

11. आधुनिक जीवन-शैली और भक्तियोग :

वर्तमान समय में डिजिटल तकनीक और सोशल मीडिया ने मनुष्य की जीवनशैली को काफी बदल दिया है। निरंतर सूचना, तुलना तथा सामाजिक प्रदर्शन की प्रवृत्ति व्यक्ति के ध्यान एवं मानसिक शांति को प्रभावित कर सकती है।

भक्तियोग का नियमित अभ्यास व्यक्ति को कुछ समय के लिए बाहरी उत्तेजनाओं से हटकर आत्मचिंतन, प्रार्थना, ध्यान, नाम–स्मरण अथवा आध्यात्मिक अध्ययन की ओर ले जा सकता है।

इस संदर्भ में भक्तियोग को आधुनिक जीवन से पलायन के रूप में नहीं बल्कि जीवन के भीतर रहते हुए आंतरिक संतुलन विकसित करने की प्रक्रिया के रूप में समझना अधिक उचित है।

12. भक्तियोग और भावनात्मक संतुलन :

भक्ति का एक महत्वपूर्ण पक्ष भावनाओं का सकारात्मक रूपांतरण है। मनुष्य के भीतर प्रेम, भय, क्रोध, दुख, आशा तथा निराशा जैसी अनेक भावनाएँ होती हैं।

भक्तियोग इन भावनाओं को दबाने के बजाय उन्हें उच्चतर उद्देश्य की ओर निर्देशित करने की संभावना प्रस्तुत करता है।

ईश्वर के प्रति विश्वास एवं समर्पण व्यक्ति को विपरीत परिस्थितियों में आशा बनाए रखने में सहायता कर सकता है। इसी प्रकार कृतज्ञता की भावना व्यक्ति का ध्यान केवल अभावों से हटाकर उपलब्धियों एवं जीवन के

सकारात्मक पक्षों की ओर ले जा सकती है।

13. भक्तियोग एवं व्यक्तित्व विकास :

भक्तियोग के निरंतर अभ्यास से निम्नलिखित व्यक्तित्वगत गुण विकसित होने की संभावना मानी जा सकती है –

1. धैर्य
2. आत्मसंयम
3. विनम्रता
4. करुणा
5. सहिष्णुता
6. कृतज्ञता
7. क्षमाशीलता
8. सेवा–भाव
9. मानसिक स्थिरता
10. जीवन के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण

इस दृष्टि से भक्तियोग केवल आध्यात्मिक साधना नहीं बल्कि व्यक्तित्व विकास की प्रक्रिया के रूप में भी देखा जा सकता है।

14. भक्तियोग की वर्तमान संदर्भ में सीमाएँ :

भक्तियोग की उपयोगिता स्वीकार करते हुए उसकी कुछ संभावित सीमाओं को भी समझना आवश्यक है।

- पहली सीमा यह है कि भक्ति को यदि केवल बाहरी अनुष्ठानों तक सीमित कर दिया जाए तो उसके मूल नैतिक एवं आध्यात्मिक उद्देश्य का ह्रास हो सकता है।
- दूसरी सीमा अंधविश्वास की संभावना है। भक्तियोग में श्रद्धा का अर्थ विवेक का त्याग नहीं है। भारतीय दर्शन में श्रद्धा और विवेक दोनों को महत्व दिया गया है।
- तीसरी सीमा यह है कि आध्यात्मिक साधना को आधुनिक चिकित्सा या मनोवैज्ञानिक उपचार का पूर्ण विकल्प नहीं माना जाना चाहिए।
- चौथी सीमा यह है कि भक्ति को यदि संकीर्ण धार्मिक या साम्प्रदायिक दृष्टिकोण से प्रस्तुत किया जाए तो उसका सार्वभौमिक प्रेम एवं करुणा का मूल संदेश कमजोर हो सकता है।

अतः आधुनिक समय में भक्तियोग की उपादेयता तभी अधिक प्रभावी होगी जब इसे विवेक, नैतिकता, सेवा और मानव–मूल्यों के साथ समझा जाए।

15. समीक्षात्मक विश्लेषण :

उपलब्ध साहित्य एवं प्रमुख ग्रन्थों के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि भक्तियोग की मूल अवधारणा केवल धार्मिक विश्वास तक सीमित नहीं है। इसमें व्यक्ति के आंतरिक रूपांतरण की प्रक्रिया निहित है।

भगवद्गीता में भक्तियोग को कर्तव्य, समर्पण एवं समत्व से जोड़ा गया है। नारद भक्तिसूत्र में इसे परम प्रेम के रूप में देखा गया है। पतञ्जलि की परम्परा में ईश्वर–प्रणिधान साधना एवं मानसिक अनुशासन से जुड़ता

है।

इन दृष्टिकोणों में अंतर होने के बावजूद एक महत्वपूर्ण समानता दिखाई देती हैकृव्यक्ति के अहंकार एवं अत्यधिक आसक्ति को कम करके उसे उच्चतर उद्देश्य की ओर उन्मुख करना।

हाल के अकादमिक अध्ययनों में भी भगवद्गीता के भक्तियोग को अन्य योग–पद्धतियों के साथ तुलनात्मक रूप से समझने का प्रयास किया गया है। कुछ शोध भक्तियोग को गीता की विशिष्ट आध्यात्मिक पद्धति के रूप में देखते हैं, जबकि अन्य अध्ययन कर्म, ज्ञान, ध्यान एवं भक्ति को परस्पर संबद्ध योगमार्गों के रूप में देखते हैं।

अतः भक्तियोग की आधुनिक उपयोगिता का मूल्यांकन किसी एक धार्मिक व्याख्या तक सीमित न रखकर उसके नैतिक, मनोवैज्ञानिक, सामाजिक और आध्यात्मिक आयामों के आधार पर किया जाना चाहिए।

6. प्रमुख निष्कर्ष :

प्रस्तुत समीक्षात्मक अध्ययन के आधार पर निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त होते हैं –

1. भक्तियोग भारतीय योग एवं आध्यात्मिक परम्परा का महत्वपूर्ण अंग है।
2. भगवद्गीता भक्तियोग को प्रेम, श्रद्धा, समर्पण एवं ईश्वर–स्मरण से जोड़ती है।
3. नारद भक्तिसूत्र में भक्ति को परम प्रेम का स्वरूप माना गया है।
4. पतञ्जलि योगदर्शन का ईश्वर–प्रणिधान भक्तिपरक साधना के साथ कुछ व्यावहारिक समानताएँ प्रस्तुत करता है।
5. भक्तियोग व्यक्ति में धैर्य, करुणा, विनम्रता और आत्मसंयम जैसे गुणों को विकसित करने की दिशा प्रदान करता है।
6. आधुनिक तनावपूर्ण जीवन में भक्तियोग आंतरिक शांति एवं भावनात्मक संतुलन की जीवन–दृष्टि प्रदान कर सकता है।
7. भक्तियोग सामाजिक जीवन में सेवा, प्रेम, सहिष्णुता एवं सद्भाव को बढ़ावा दे सकता है।
8. भक्तियोग को अंधविश्वास अथवा केवल कर्मकाण्ड के रूप में नहीं समझना चाहिए।
9. भक्तियोग आधुनिक चिकित्सा या मनोवैज्ञानिक उपचार का विकल्प नहीं, बल्कि समग्र जीवन–दृष्टि का एक आध्यात्मिक आयाम हो सकता है।
10. आधुनिक समय में भक्तियोग की वास्तविक उपादेयता उसके मूल मूल्यों 'प्रेम, समर्पण, सेवा, करुणा और आत्मसंयम' को व्यवहार में उतारने में निहित है।

17 सुझाव :

1. विद्यालय एवं उच्च शिक्षा के स्तर पर भारतीय योग परम्परा के नैतिक एवं दार्शनिक पक्ष का परिचय कराया जा सकता है।
2. भक्तियोग के व्यावहारिक पक्ष को केवल धार्मिक अनुष्ठान के बजाय जीवन–मूल्यों के संदर्भ में प्रस्तुत किया जाना चाहिए।
3. नाम–स्मरण, प्रार्थना, ध्यान, कृतज्ञता तथा सेवा जैसी गतिविधियों का उपयोग मानसिक संतुलन एवं सकारात्मक जीवन–दृष्टि के विकास के लिए किया जा सकता है।

4. भक्तियोग को वैज्ञानिक एवं आलोचनात्मक दृष्टिकोण के साथ समझाया जाना चाहिए।
5. भविष्य में भक्तियोग की उपयोगिता पर अनुभवजन्य शोध किए जाने चाहिए, जिसमें तनाव, जीवन–संतोष, भावनात्मक संतुलन और सामाजिक व्यवहार जैसे आयामों का अध्ययन किया जा सके।
6. भक्तियोग की सार्वभौमिक मानवीय अवधारणाओं 'प्रेम, करुणा, सेवा और सहिष्णुता' को सामाजिक सद्भाव के संदर्भ में अधिक व्यापक रूप से अध्ययन किया जाना चाहिए।

18. उपसंहार :

भक्तियोग भारतीय योग परम्परा की ऐसी धारा है जिसमें मनुष्य के आध्यात्मिक विकास के साथ–साथ उसके भावनात्मक एवं नैतिक विकास की भी संभावना निहित है। भगवद्गीता में वर्णित भक्त के गुण तथा नारद भक्तिसूत्र में प्रतिपादित परम प्रेम की अवधारणा यह संकेत देती है कि भक्ति केवल पूजा या धार्मिक आस्था नहीं बल्कि व्यक्ति के जीवन में व्यापक परिवर्तन लाने वाली साधना है।

वर्तमान युग में मनुष्य बाहरी उपलब्धियों के बावजूद मानसिक तनाव, असुरक्षा, अकेलेपन और असंतोष का अनुभव कर सकता है। ऐसी परिस्थिति में भक्तियोग उसे अपने जीवन को किसी उच्चतर उद्देश्य से जोड़ने, परिणाम के प्रति अत्यधिक आसक्ति कम करने, कृतज्ञता विकसित करने तथा प्रेम और सेवा की भावना को बढ़ाने का मार्ग प्रदान कर सकता है।

इसलिए भक्तियोग की वर्तमान उपादेयता केवल उसकी प्राचीनता में नहीं बल्कि उसके उन जीवन–मूल्यों में निहित है जो आज भी प्रासंगिक हैं। यदि भक्तियोग को विवेक, नैतिकता, सेवा, करुणा और आत्मचिंतन के साथ अपनाया जाए तो यह आधुनिक मनुष्य के समग्र व्यक्तित्व–विकास में महत्वपूर्ण योगदान दे सकता है।

संदर्भ सूची :

1. श्रीमद्भगवद्गीता। (विभिन्न संस्करण)। गोरखपुर : गीता प्रेस।
2. पतञ्जलि। (विभिन्न संस्करण)। पातञ्जल योगदर्शन / योगसूत्र। वाराणसी : चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान।
3. नारद। (विभिन्न संस्करण)। नारद भक्तिसूत्र। विभिन्न संस्कृत एवं हिन्दी टीका संस्करण।
4. व्यास। श्रीमद्भागवत महापुराण। विभिन्न संस्करण।
5. Chapple, C. K. (2005). Yoga and the Gita: Isvara-Pranidhana and Bhakti. Journal of Vaishnava Studies, 14(1), 29–42.
6. Gupta, A. (2025). Arguing for a devotional reading of the Gita. Journal of Dharma Studies, 8, 421–441.
8. सरोज। (2023). भगवद्गीता में भक्तियोग का स्वरूप, साधना–प्रक्रिया एवं फल : एक तुलनात्मक अध्ययन। International Journal of Engineering Science & Humanities.
9. Agnihotri, S., & Kesari, K. (2025). From Isvara-Pra?idhana to Para-Bhakti: Convergent paths of A??a?ga Yoga and Bhakti Yoga. International Journal of Research and Scientific Innovation, 12(10), 1375–1378.
10. Venkatkrishnan, A. (2024). Threads of bhakti. In Love in the Time of Scholarship: The Bhagavata Pura?a in Indian Intellectual History. Oxford University Press.

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED PRINT RESEARCH JOURNAL
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. 14, Issue 7-8
पृष्ठ : 79–85

भोजपुरी एवं बघेली लोकगीतों में प्रकृति–चित्रण : एक अध्ययन

डॉ. नागेश कुमार त्रिपाठी
प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष संगीत विभाग,
गौरी शंकर, शोधार्थी (संगीत)
शास. ठाकुर रणमत सिंह महाविद्यालय, रीवा (म.प्र.)

सारांश :

भारतीय लोकसाहित्य लोकजीवन की सामूहिक अनुभूतियों, परंपराओं, विश्वासों और जीवन–पद्धति का सजीव दस्तावेज है। लोकगीत लोकसाहित्य की ऐसी विधा हैं जिनमें सामान्य जन अपने सुख–दुःख, आशा–निराशा, प्रेम–विरह, श्रम, उत्सव और धार्मिक विश्वासों को सहज रूप में अभिव्यक्त करता है। प्रकृति लोकगीतों की इस अभिव्यक्ति का अत्यंत महत्वपूर्ण आधार है। विशेष रूप से भोजपुरी और बघेली लोकगीतों में प्रकृति मनुष्य के जीवन से अलग कोई बाहरी सत्ता नहीं, बल्कि उसके दैनिक जीवन की सहचरी के रूप में उपस्थित होती है। भोजपुरी लोकगीतों में गंगा, नदी, तालाब, खेत–खलिहान, वर्षा, बादल, चाँद, सूर्य, आम, महुआ, नीम, कोयल, पपीहा, चकवा–चकई, मोर आदि प्रकृति–तत्वों का विविध रूपों में प्रयोग हुआ है। दूसरी ओर बघेली लोकगीतों में विंध्य क्षेत्र की भौगोलिक एवं ग्रामीण परिस्थितियों के अनुरूप वन, पहाड़, नदी, झरने, खेत, वर्षा, हरियाली, वृक्ष तथा पशु–पक्षियों का चित्रण मिलता है। बघेली भाषा और साहित्य के अध्ययन में भी उसके ग्रामीण, कृषक और क्षेत्रीय सांस्कृतिक परिवेश को महत्वपूर्ण माना गया है।

प्रकृति का यह चित्रण केवल सौंदर्य–वर्णन नहीं है। लोकगीतों में प्रकृति मानव–भावनाओं की प्रतीकात्मक भाषा बन जाती है। वर्षा किसान के लिए समृद्धि और विरहिणी के लिए प्रिय की स्मृति का कारण हो सकती है। कोयल वसंत और प्रेम का प्रतीक बनती है, पपीहा प्रतीक्षा का, चकवा–चकई दांपत्य एवं वियोग का और नदी जीवन के प्रवाह तथा भावनाओं की गहराई का प्रतीक बन जाती है।

इस शोध में भोजपुरी एवं बघेली लोकगीतों में प्रकृति–चित्रण के विभिन्न रूपों का वर्णनात्मक, विश्लेषणात्मक एवं तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

1. प्रस्तावना :

लोकगीत किसी भी समाज के सांस्कृतिक जीवन की धड़कन होते हैं। इनका निर्माण किसी एक व्यक्ति की कल्पना से नहीं, बल्कि लंबे समय तक लोकसमुदाय की सामूहिक अनुभूति से होता है। इसलिए लोकगीतों में जिस प्रकृति का चित्रण मिलता है, वह केवल कवि की कल्पना की प्रकृति नहीं होती, बल्कि वह उस समाज

द्वारा प्रत्यक्ष अनुभव की गई प्रकृति होती है।

भारतीय ग्रामीण जीवन में मनुष्य और प्रकृति का संबंध अत्यंत निकट रहा है। कृषि, पशुपालन, जल–स्रोत, वन, ऋतु–परिवर्तन और पर्व–त्योहार सभी प्राकृतिक परिवेश से जुड़े हुए हैं। यही कारण है कि लोकगीतों में प्रकृति जीवन के प्रत्येक स्तर पर दिखाई देती है।

भोजपुरी लोकगीतों की परंपरा में ऋतुगीत, विवाहगीत, सोहर, कजरी, चौती, छठगीत, श्रमगीत आदि विभिन्न अवसरों पर गाए जाने वाले गीत मिलते हैं। हालिया शोध में भी भोजपुरी लोकगीतों की इन विभिन्न श्रेणियों में पर्यावरण, मानव व्यवहार और संस्कृति के अंतर्संबंधों का अध्ययन किया गया है।

बघेली लोकगीतों में भी स्थानीय भूगोल, कृषि–आधारित जीवन, पारिवारिक संबंध, ऋतु–चक्र तथा प्रकृति के प्रति लोकविश्वासों की अभिव्यक्ति मिलती है। बघेली साहित्य के विविध आयामों पर हुए अध्ययन में किसान, ग्रामीण जीवन और सामाजिक परिस्थितियों को महत्वपूर्ण विषयों के रूप में रेखांकित किया गया है।

इस प्रकार भोजपुरी और बघेली लोकगीतों का प्रकृति–चित्रण अध्ययन की दृष्टि से इसलिए महत्वपूर्ण है क्योंकि इससे केवल प्रकृति के सौंदर्य का ही पता नहीं चलता, बल्कि दोनों क्षेत्रों की सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक जीवन–पद्धति को भी समझा जा सकता है।

लोकगीतों में प्रकृति का स्वरूप :

लोकगीतों में प्रकृति को मुख्यतः निम्नलिखित रूपों में देखा जा सकता है :–

- **आलंबन रूप :**

  जब प्रकृति स्वयं गीत का प्रमुख विषय बनती है, तब वह आलंबन रूप में उपस्थित होती है।

  उदाहरण के लिए वर्षा, वसंत, नदी या खेतों का स्वतंत्र वर्णन।

- **उद्दीपन रूप :**

  जब प्रकृति किसी मानवीय भावना को तीव्र करती है, तब वह उद्दीपन रूप ग्रहण करती है।

  उदाहरण के लिए वर्षा का वातावरण विरहिणी को प्रिय की याद दिलाता है।

- **प्रतीकात्मक रूप :**

  प्रकृति के तत्व किसी भावना के प्रतीक बन जाते हैं।

  जैसे :

  - पपीहा – प्रतीक्षा
  - कोयल – प्रेम और वसंत
  - चकई – विरह
  - वर्षा – मिलन/विरह
  - नदी – प्रवाह और भावनात्मक गहराई।

भोजपुरी लोकगीतों में प्रकृति-चित्रण :

भोजपुरी लोकगीतों में वर्षा का विशेष महत्व है। भोजपुरी क्षेत्र का ग्रामीण जीवन कृषि पर आधारित रहा है, इसलिए वर्षा का आगमन किसान के लिए आशा और प्रसन्नता का संदेश लेकर आता है। बादल घिरने, बिजली चमकने और वर्षा होने से धरती हरी–भरी हो जाती है। लोकगीतों में वर्षा के दो प्रमुख पक्ष मिलते हैं–

कृषि की दृष्टि से – वर्षा = जीवन और समृद्धि

भावनात्मक दृष्टि से – वर्षा = प्रेम और विरह की अनुभूति

यही द्वैत भोजपुरी प्रकृति–चित्रण को विशेष बनाता है।

बादल लोकगीतों में अत्यंत लोकप्रिय प्राकृतिक प्रतीक है। विरहिणी स्त्री जब अपने प्रिय से दूर होती है, तो बादल उसे प्रिय की याद दिलाते हैं। कभी वह बादल से अपने प्रिय के पास संदेश पहुँचाने की कल्पना करती है। इस प्रकार बादल का रूप – प्राकृतिक तत्व / संदेशवाहक / स्मृति का माध्यम बन जाता है।

भोजपुरी लोकसंस्कृति में गंगा का धार्मिक और सांस्कृतिक महत्व अत्यंत गहरा है। गंगा लोकगीतों में केवल नदी नहीं है, बल्कि वह– पवित्रता, मातृत्व, आस्था, जीवन, प्रवाह और भावनात्मक गहराई का प्रतीक बनती है। विदाई गीतों में आँसुओं की तुलना गंगा के जल से करके बेटी के बिछोह की तीव्रता व्यक्त की जाती है। तालाब ग्रामीण जीवन का महत्वपूर्ण जल–स्रोत रहा है। इसलिए लोकगीतों में तालाब केवल प्राकृतिक स्थान नहीं है। तालाब से जुड़े हैं– पानी भरना, स्त्रियों का सामूहिक मिलना, घरेलू जीवन, पशुओं की आवश्यकता, ग्रामीण सामाजिक संपर्क। इस कारण तालाब लोकजीवन और प्रकृति के बीच संबंध का महत्वपूर्ण प्रतीक है।

भोजपुरी लोकगीतों में आम, महुआ, नीम, पीपल, बरगद आदि वृक्षों का उल्लेख मिलता है।

आम का पेड़ वसंत, बौर और प्रेम की भावनाओं से जुड़ता है। महुआ ग्रामीण अर्थव्यवस्था और लोकजीवन से जुड़ा महत्वपूर्ण वृक्ष है। यह ग्रामीण समुदाय के जीवन में उपयोगी होने के साथ लोकस्मृति का हिस्सा भी है। नीम लोकजीवन में स्वास्थ्य, छाया और घरेलू उपयोग से जुड़ा हुआ है। इस प्रकार वृक्ष केवल प्राकृतिक वस्तु नहीं बल्कि लोक–संस्कृति के जीवित प्रतीक हैं। भोजपुरी लोकगीतों में पक्षियों का अत्यंत सुंदर और प्रतीकात्मक प्रयोग मिलता है। कोयल की आवाज वसंत और प्रेम की अनुभूति से जुड़ती है। पपीहा की पुकार को प्रतीक्षा और विरह से जोड़ा जाता है। चकवा चकवी इनका प्रयोग पति–पत्नी या प्रेमी–प्रेमिका के संबंध और वियोग के प्रतीक के रूप में किया जाता है। मोर का संबंध वर्षा और उल्लास से है। इस प्रकार पशु–पक्षी प्रकृति के साथ–साथ मानवीय भावनाओं के प्रतिनिधि बन जाते हैं।

बघेली लोकगीतों में प्रकृति-चित्रण :

बघेली लोकगीतों की प्रकृति को समझने के लिए बघेलखंड के भौगोलिक और ग्रामीण परिवेश को ध्यान में रखना आवश्यक है। बघेली पूर्वी हिंदी की प्रमुख क्षेत्रीय भाषा–परंपराओं में मानी जाती है और इसका सांस्कृतिक क्षेत्र बघेलखंड से संबद्ध है। बघेली लोकगीतों में प्रकृति का संबंध कृषि, पशुपालन, ऋतु–चक्र, ग्रामीण श्रम और लोकविश्वासों से दिखाई देता है। बघेली लोकगीतों में वर्षा ग्रामीण जीवन की आवश्यक शक्ति के रूप में दिखाई देती है।

वर्षा से –

- खेतों में हरियाली आती है,
- कृषि कार्य प्रारंभ होते हैं,
- पशुओं के लिए चारा मिलता है,
- ग्रामीण जीवन में उत्साह आता है।

इसलिए वर्षा का चित्रण लोकजीवन की आर्थिक संरचना से जुड़ा हुआ है।

बघेलखंड के ग्रामीण और वन–आधारित परिवेश का प्रभाव लोकगीतों में दिखाई देता है। वृक्षों की छाया, वन–पथ, फूल, लताएँ और हरियाली ग्रामीण जीवन की प्राकृतिक पृष्ठभूमि तैयार करते हैं। प्रकृति यहाँ सौंदर्य के साथ–साथ जीवन–निर्वाह का साधन भी है।

बघेली लोकगीतों में नदी और जल – नदियाँ, कुएँ, तालाब और अन्य जल–स्रोत ग्रामीण जीवन के महत्वपूर्ण केंद्र रहे हैं। विशेष रूप से महिलाओं के जीवन में जल–स्रोतों का सामाजिक महत्व भी रहा है। पानी भरने जाना केवल घरेलू कार्य नहीं, बल्कि ग्रामीण सामाजिक संपर्क का अवसर भी रहा है। इसलिए जल–चित्रण में प्रकृति के साथ सामाजिक जीवन भी जुड़ जाता है।

बघेली लोकगीतों में भी पक्षियों और पशुओं के माध्यम से लोकजीवन की भावनाओं को अभिव्यक्ति मिलती है। मोर, कोयल, पपीहा, चकवा–चकई आदि प्राकृतिक प्रतीक प्रेम, विरह, ऋतु–परिवर्तन और उल्लास से जुड़े दिखाई देते हैं।

भोजपुरी एवं बघेली लोकगीतों में प्रकृति और नारी का संबंध विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। नारी अपनी भावनाओं को प्रकृति के माध्यम से व्यक्त करती है।

उदाहरणतः –

- बादल – प्रिय की स्मृति।
- वर्षा – विरह की तीव्रता।
- कोयल – प्रेम।
- पपीहा – प्रतीक्षा।
- चकई – वियोग।
- नदी – आँसू और भावनाओं का प्रवाह।
- वसंत – मिलन और उल्लास।

इस प्रकार प्रकृति नारी के लिए एक प्रकार की भावनात्मक भाषा बन जाती है।

लोकगीतों में प्रेम का चित्रण प्रकृति से अलग नहीं है। वसंत ऋतु, फूलों का खिलना, कोयल का कूकना और आम्र–मंजरियाँ प्रेम के वातावरण को निर्मित करती हैं। यहाँ प्रकृति प्रेम की पृष्ठभूमि ही नहीं, बल्कि प्रेम की सक्रिय सहभागी बन जाती है।

विरह गीतों में प्रकृति का प्रयोग और अधिक प्रभावशाली हो जाता है।

प्रिय से दूर स्त्री के लिए –

- वर्षा अकेलापन बढ़ाती है,
- बादल प्रिय की याद दिलाते हैं,
- पपीहा प्रतीक्षा का प्रतीक बनता है,
- चाँद प्रिय के चेहरे की स्मृति जगाता है,
- रात विरह की लंबाई को बढ़ाती है।

इस प्रकार बाहरी प्रकृति आंतरिक मनःस्थिति का प्रतिबिंब बन जाती है।

दोनों लोकपरंपराओं में प्रकृति का कृषि से गहरा संबंध है। कृषि की सफलता वर्षा, मिट्टी, जल और ऋतु

पर निर्भर करती है। इसलिए लोकगीतों में प्रकृति के प्रति आशा, सम्मान और निर्भरता दिखाई देती है। यह लोकगीतों में निहित पर्यावरणीय चेतना का महत्वपूर्ण पक्ष है। भोजपुरी लोकगीतों के पर्यावरणीय अध्ययन में भी संस्कृति और पर्यावरण के अंतर्संबंध तथा विभिन्न अवसरों पर गाए जाने वाले गीतों के पारिस्थितिक अर्थों को रेखांकित किया गया है।

लोकसमाज में प्रकृति के अनेक तत्व धार्मिक एवं आध्यात्मिक विश्वासों से जुड़े होते हैं। सूर्य, गंगा, नदी, वृक्ष, धरती और वर्षा आदि के प्रति सम्मान लोकगीतों में दिखाई देता है। इससे स्पष्ट होता है कि लोकसमाज में प्रकृति को केवल संसाधन के रूप में नहीं देखा गया, बल्कि उसे जीवनदायिनी शक्ति के रूप में भी स्वीकार किया गया।

लोकगीतों में प्रकृति को मानव की तरह व्यवहार करते हुए प्रस्तुत किया जाता है। बादल मानो आते–जाते हैं, कोयल मानो संदेश देती है, नदी मानो दुःख समझती है और पवन मानो प्रिय का संदेश लेकर आता है। इस प्रकार मानवीकरण प्रकृति–चित्रण की महत्वपूर्ण कलात्मक विशेषता है।

भोजपुरी एवं बघेली प्रकृति-चित्रण की समानताएँ :

दोनों लोकगीत परंपराओं में निम्नलिखित समानताएँ दिखाई देती हैं –

- प्रकृति ग्रामीण जीवन का अभिन्न अंग है।
- वर्षा का कृषि और भावनात्मक दोनों महत्व है।
- नदी और जल–स्रोतों का विशेष महत्व है।
- वृक्षों को जीवन और लोकस्मृति से जोड़ा गया है।
- पक्षियों का प्रतीकात्मक प्रयोग मिलता है।
- प्रकृति प्रेम और विरह की अभिव्यक्ति में सहायक है।
- प्रकृति धार्मिक एवं सांस्कृतिक आस्था से जुड़ी है।
- प्रकृति लोकसमाज की आर्थिक व्यवस्था से जुड़ी है।
- प्रकृति के माध्यम से ऋतु–परिवर्तन व्यक्त किया जाता है।
- दोनों परंपराओं में प्रकृति के प्रति आत्मीयता दिखाई देती है।

भोजपुरी एवं बघेली प्रकृति-चित्रण की भिन्नताएँ :

आधार	भोजपुरी लोकगीत	बघेली लोकगीत
भौगोलिक प्रभाव	गंगा–मैदानी एवं कृषि क्षेत्र	विंध्य और बघेलखंड का ग्रामीण–वन क्षेत्र
जल	गंगा, नदी, तालाब आदि का प्रमुख स्थान	नदी, कुएँ, तालाब और स्थानीय जल–स्रोत
कृषि	वर्षा और खेतों से गहरा संबंध	कृषि एवं ग्रामीण जीवन से गहरा संबंध
वनस्पति	आम, महुआ, नीम आदि	स्थानीय वनस्पति और ग्रामीण वृक्ष
पक्षी	कोयल, पपीहा, चकवा–चकई, मोर	स्थानीय परिवेश के पक्षी और वही व्यापक लोक–प्रतीक
भावात्मक प्रयोग	प्रेम, विरह, प्रवास और ऋतु	प्रेम, विरह, ग्रामीण जीवन और ऋतु
सांस्कृतिक प्रकृति	गंगा और नदी–आधारित सांस्कृतिक चेतना	विंध्य क्षेत्र की ग्रामीण एवं प्रकृति–आधारित चेतना

यह तुलना कठोर सीमा नहीं है। दोनों परंपराओं में प्रकृति–प्रतीकों का पर्याप्त साझा लोक–सांस्कृतिक आधार भी है।

पर्यावरणीय चेतना :

भोजपुरी और बघेली लोकगीतों का प्रकृति–चित्रण आधुनिक अर्थ में लिखा गया पर्यावरण–विमर्श नहीं है, फिर भी इनमें पर्यावरण के प्रति लोकसमाज की निर्भरता और सम्मान स्पष्ट दिखाई देता है।

मनुष्य –

- वर्षा पर निर्भर है,
- नदी पर निर्भर है,
- मिट्टी पर निर्भर है,
- पेड़ों से फल और छाया प्राप्त करता है,
- पशु–पक्षियों के साथ सह–अस्तित्व में रहता है।

इसलिए लोकगीतों में प्रकृति के प्रति आत्मीयता वास्तव में लोकसमाज की जीवन–निर्भरता और पर्यावरणीय चेतना को व्यक्त करती है।

प्रकृति और लोक-संगीत :

प्रकृति का प्रभाव केवल गीत के शब्दों पर नहीं, बल्कि उसके गायन पर भी पड़ता है। ऋतु और अवसर के अनुसार लोकगीतों की धुन, लय और सामूहिक गायन की शैली में परिवर्तन दिखाई देता है। वर्षा, वसंत, विवाह और कृषि से जुड़े गीतों की अपनी विशिष्ट सांगीतिक अनुभूति होती है। इस प्रकार प्रकृति का संबंध लोकगीत के काव्य, संगीत और सामाजिक अवसरकृतीनों से है।

1. भोजपुरी लोकगीत में प्रकृति चित्रण :

भोजपुरी लोकगीतों में सावन, बादल, वर्षा, कोयल, आम की डाल और पुरवैया का चित्रण विशेष रूप से मिलता है। उदाहरण के लिए कजरी परंपरा में –

"झूला पड़े नीमिया के डार,
सावन आयल रे....."

यहाँ नीम की डाल, झूला और सावन के माध्यम से वर्षा ऋतु के प्राकृतिक वातावरण का चित्रण हुआ है। सावन की हरियाली और शीतल वातावरण स्त्री के मन में उमंग और विरह दोनों भावों को जागृत करता है।

2. बघेली लोकगीत में प्रकृति चित्रण :

बघेली लोकगीतों में बरखा, बादल, नदी, पहाड़, खेत–खलिहान, आम–महुआ और कोयल जैसे प्राकृतिक तत्वों का सहज चित्रण मिलता है। लोकगीतों में वर्षा का वर्णन करते हुए बादलों के आने और खेतों में हरियाली छाने की कल्पना की जाती है।

उदाहरण के रूप में बघेली लोक परंपरा में प्रचलित वर्षा–भाव वाले गीतों में "घिर–घिर आए बदरिया" जैसी अभिव्यक्तियों के माध्यम से बादलों और वर्षा का चित्र उभरता है।

आधुनिक संदर्भ में प्रकृति-चित्रण की प्रासंगिकता :

आज शहरीकरण, औद्योगिकीकरण और बदलती जीवनशैली के कारण मनुष्य और प्रकृति के पारंपरिक

संबंध में परिवर्तन आया है। ऐसे समय में भोजपुरी और बघेली लोकगीत हमें यह याद दिलाते हैं कि ग्रामीण समाज की संस्कृति प्रकृति से गहरे रूप में जुड़ी रही है।

लोकगीतों में संरक्षित – नदियाँ, पेड़, ऋतुएँ, खेत, पशु–पक्षी, वर्षा और मिट्टी।

केवल साहित्यिक प्रतीक नहीं, बल्कि लोकसमाज की सामूहिक स्मृति हैं। इसलिए इन गीतों का संरक्षण लोकसाहित्य के साथ–साथ स्थानीय पर्यावरणीय और सांस्कृतिक विरासत के संरक्षण के लिए भी महत्वपूर्ण है।

निष्कर्ष :

भोजपुरी एवं बघेली लोकगीतों में प्रकृति–चित्रण लोकजीवन की वास्तविक अनुभूतियों से निर्मित हुआ है। इन गीतों में प्रकृति को किसी कृत्रिम सौंदर्य–बोध के लिए नहीं, बल्कि जीवन के अभिन्न अंग के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

वर्षा किसान के लिए जीवन और समृद्धि की आशा है, वहीं विरहिणी के लिए प्रिय की स्मृति का माध्यम। नदी कभी जीवन का आधार है तो कभी आँसुओं और भावनाओं की गहराई का प्रतीक। वृक्ष ग्रामीण जीवन की स्मृतियों के संरक्षक हैं और पक्षी मानवीय भावनाओं के प्रतिनिधि बन जाते हैं।

भोजपुरी और बघेली दोनों लोकपरंपराओं में प्रकृति और मनुष्य के बीच गहरा आत्मीय संबंध दिखाई देता है। प्रकृति यहाँ मनुष्य से बाहर नहीं, बल्कि उसके जीवन के भीतर स्थित है। इसी कारण लोकगीतों में प्रकृति का वर्णन करते समय मानव–भावना स्वतः उसमें समाहित हो जाती है।

विशेष रूप से नारी–केंद्रित लोकगीतों में प्रकृति उसकी भावनाओं की सहचरी बन जाती है। विरह, प्रेम, प्रतीक्षा, मिलन, विदाई और स्मृति जैसे भाव प्रकृति के माध्यम से अधिक प्रभावशाली ढंग से व्यक्त होते हैं।

अतः यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि भोजपुरी एवं बघेली लोकगीतों का प्रकृति–चित्रण केवल प्राकृतिक सौंदर्य का चित्रण नहीं, बल्कि लोकसमाज के जीवन–दर्शन, सांस्कृतिक चेतना, कृषि–आधारित अर्थव्यवस्था, भावनात्मक संसार और पर्यावरणीय संवेदना का जीवंत दस्तावेज है।

संदर्भ-सूची :

- भोजपुरी लोकगीतों में पर्यावरणीय सरोकारों पर नीरज कुमार एवं श्वेता के. कपूर का शोध—Ecological Concerns in Bhojpuri Folk Songs, 2025. इसमें भोजपुरी के ऋतुगीत, विवाहगीत, सोहर, छठगीत आदि में पर्यावरण और मानव–जीवन के संबंध का अध्ययन किया गया है।
- बघेली भाषा में कविता के विविध आयामों पर निरपत प्रसाद प्रजापति का अध्ययन, जिसमें बघेली भाषा, बघेलखंड और ग्रामीण/कृषक जीवन के संदर्भों पर चर्चा की गई है।
- बघेली लोक साहित्य और लोक संस्कृति संबंधी उपलब्ध अध्ययन, जिसमें प्रकृति–पूजा, जीवन–चक्र और लोक–सांस्कृतिक परंपराओं को बघेली संस्कृति के महत्वपूर्ण पक्षों के रूप में देखा गया है।

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED PRINT RESEARCH JOURNAL
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. 14, Issue 7-8
पृष्ठ : 86-90

'एक पत्नी के नोट्स' उपन्यास में नारी जीवन का अंतर्द्वंद्व

डॉ० रेणु देवी, सहायक प्राध्यापक
हिंदी विभाग प्रभारी, रानी धर्म कुँवर राजकीय महाविद्यालय, दल्लावाला, खानपुर, हरिद्वार (उत्तराखंड)
डॉ० राम भरोसे, एसो० प्रो०
हिंदी विभाग प्रभारी, राजकीय महाविद्यालय, मंगलौर, हरिद्वार (उत्तराखंड)

सारॉंश :

समकालीन साहित्यकार प्रतिभा की धनी स्त्री की पक्षधर ममता कालिया हिंदी साहित्य में अपना विशिष्ट स्थान रखती हैं। 'एक पत्नी के नोट्स' उपन्यास में लेखिका ने प्रेम विवाह को मुख्य विषय बनाया है। उपन्यास को पढ़कर ऐसा महसूस होता है कि जितनी भी बातें इसमें दिखाई गई हैं वो लेखिका के साहित्य में किसी ने किसी रूप में पढ़ने को मिलती हैं। पुरुष वर्चस्व आज भी स्त्री के ऊपर किस प्रकार हावी है उसी का चित्रण लेखिका ने अपने इस उपन्यास के माध्यम से किया है। यदि पत्नी पति से अधिक सम्मान पाती है या पति से ज्यादा समझदार है तो यह बात पति सहन नहीं कर पाता। इस संदर्भ में उपन्यास की कथा रची गई है।

बीज शब्द – समकालीन, प्रतिभा, विशिष्ट, प्रेम विवाह, वर्चस्व, चित्रण, ममता कालिया।

प्रस्तावना –

यह उपन्यास पुरुष वर्ग की मानसिकता को उजागर करता है क्योंकि हमारे समाज में आज भी ऐसे पुरुष शामिल है जो कामकाजी पत्नी को शक्की निगाहों से देखते हैं तथा उसकी जिंदगी को नरक बनाकर रख देते हैं। यह पीड़ा सिर्फ और सिर्फ वही स्त्री महसूस कर सकती है जो बाहर और परिवार के बीच तालमेल बनाकर चलती है। फिर भी पति द्वारा आए दिन प्रताड़ित की जाती है। पुरुष प्रधान की धारणा से ओत–प्रोत यह बिलकुल भी नहीं चाहेगा कि पत्नी भी उसकी सहयोगी बनकर उसके कंधे से कंधा मिलाकर उसके पथ की साथी बने। बल्कि इसके विपरीत जाकर पति की सोच रहती है कि उसकी पत्नी हर काम में उसके पीछे–पीछे चलती रहे। इन सभी बातों के चलते पति–पत्नी विरोधी रुख अपना देते हैं तो उनके रिश्ते में खटास पैदा होने लगती है तथा छोटी–छोटी बातों पर झगड़ा होना शुरू हो जाता है। इन सब के चलते उनका सुख चैन कहीं खो जाता है? और जीवन पद से भी बदतर हो जाता है। उपन्यास का नायक संदीप है जो एक आई०ए०एस० है, और साथ ही साथ उसे साहित्य के प्रति भी बहुत रूचि है। संदीप बहुत प्रभावशाली व्यक्तित्व रखता है और यह कारण है कि वह हर जगह अपना प्रभाव छोड़ देता है। एम०ए० में संदीप का प्रथम स्थान आता है। किसी भी काम को समय से पहले करना उसका स्वभाव है–"संदीप का दिल दिमाग हर समय साहित्य से आंदोलित रहता।

उसकी निजी लाइब्रेरी में प्राचीन समकालीन सभी प्रकार की पुस्तक थीं। सही मौके पर सटीक उद्धरण देना उसकी विशेषता थी। हाजिर जवाबी सांस्कृतिक सूझ बूझ शायराना तबीयत और साहित्यिक रुचियों के कारण वह शहर में लोकप्रिय हो गया। इन परिस्थितियों में वह अपने को बेहद प्रभावशाली, भाग्यशाली और प्रबुद्ध समझने के लिए बाध्य हो गया।"[1]

कविता इस उपन्यास की नायिका है कविता प्रतिदिन विश्वविद्यालय जाती है और संदीप को छोड़ने में उसकी मदद करता है। यह सब रोज चलता रहता है। इन सब के बीच संदीप कोई एहसास हो जाता है कि कविता बहुत ही सीधी सरल स्वभाव वाली लड़की है। वह सोचता है क्यों ना इसे अपना बना लिया जाए और वह कविता को सादगी आदर्शवाद वैभव वीरता के आधार पर प्राप्त करना चाहता है। शायराना अंदाज में वह कविता को प्रभावित करता करना चाहता है और जैसा वह सोचता है उसे मिल भी जाता है– "संदीप जानता था कि इतनी गंभीर, सीधी और निश्छल लड़की को गंभीरता, सादगी, आदर्शवाद और आस्था के स्तर पर जीता जा सकता है।"[2]

संदीप का शायराना अंदाज इस तरह रंग लाता है कि कविता उसके साथ प्रेम विवाह के बंधन में बढ़ जाती है तथा संदीप कविता को प्राप्त कर लेता है। कविता एक आत्मविश्वासी लड़की है शादी के बाद कविता हमेशा के लिए संदीप के जंगल में फंस जाती है। शादी के बाद संदीप अपना अधिकांश समय दफ्तर में व्यतीत करने लगता है। जब कोई पति देर से घर आता है तो अधिकतर पत्नियों की आदत होती है। देर से आने का कारण पूछने की कविता भी ठीक संदीप से पैसे ही पूछती है कि इतनी देर तक कहाँ थे? और उसके बदले संदीप कविता को अपने शायराना अंदाज में शांत कर देता है। संदीप की सोच यह रहती है कि किसी भी स्थान पर उसके सिवाय किसी का वर्चस्व ना रहे– "अब संदीप ने दफ्तर की तरफ ध्यान देना शुरू किया वह अपना काम शाम सात बजे तक करता रहता। एक योग्य अफसर की तरह वह अक्सर देर से घर पहुँचता। इस बीच कविता टी.वी. देखकर पथराई अपनी आँखों को उस पर टिकाकर शिकायत करती देखो आज भी देर कर दी तुमने? संदीप कोट हैंगर में लटकते हुए कहता,

"मुझे पहली-सी मुहब्बत मेरे महबूब न माँग।
लौट जाती है उधर को भी नजर क्या कीजै।
अब भी दिलकश है तेरा हुस्न मगर क्या कीजै।
और भी दुख है जमाने में मुहब्बत के सिवा,
मुझे पहली सी मुहब्बत मेरे महबूब न माँग।"[3]

संदीप अपने रुतबे को बनाए रखने के लिए कविता को नीचा दिखाने में कोई कसर नहीं छोड़ता वह लड़कियों की तरफ जल्दी आकर्षित होने वाला पुरुष है– "उसकी अभिलाषा थी कि शहर की हर सुंदर स्त्री उसे पर फिदा हो जाए। जब भी कोई सुंदर महिला उसके संपर्क में आती, वह कहता :

"मामला बड़ा संगीन है,
साँप के हाथ में बिन है।"[4]

कविता की जितनी भी सहेलियाँ होती हैं। वह उनके ऊपर अपनी कविताओं के द्वारा प्रभाव जमाना चाहता है, और यह बात कविता को बिलकुल पसंद नहीं आती है– "कविता के अंदर बहुत कुछ टूट गया, चटाख–चटाख

उसे लगा, वह एक मनोरोगी के साथ रह रही है। चेहरे पर मन की पीड़ा उभर आई थी। संदीप को बेहद तसल्ली महसूस हुई। उसे लगा उसकी पत्नी पूरी तरह से उसके कब्जे में है। इस एहसास के साथ उसे नींद आ गई।"[5] कविता बहुत बुद्धिमान है इसी कारण उसे लेक्चरशिप मिल जाती है। उसकी नौकरी लगने से संपर्क क्षेत्र का बढ़ गया था, यही कारण है कि संदीप कविता पर शक्की नजरें गड़ाए रखता है और उसे नीचा दिखाता रहता है– "जल्दी उसे लगा उसने कविता को नौकरी दिला कर भारी भूल की है। अब कविता को उसकी जरूरत नहीं है। एक फ्लैश की तरह यह विचार उसके दिमाग में एक दिन कौंधा और फिर एक बौखलाहट की तरह उसके रोजमर्रा के कार्यकलाप में समा गया।

"संदीप बात-बात में खोज जाता।
दोपहर में वह लंच पर घर आता।"[6]

नौकरी के बाद संदीप कविता पर अनेक प्रकार की बंदिशे लगा देता है। वह कविता से कहता है कि बिलकुल सही समय पर घर पहुँच जाना, और उसे ये भी कहता है कि मेरे घर आने से पहले दोपहर के खाने पर तुम घर पर ही मिलना– "कविता कोशिश करती कि वह भी समय पर घर पहुँच जाए। उसने अपने पीरियड उसी हिसाब से एडजस्ट किए हुए थे। लेकिन कभी कोई आकस्मिक काम निकल आता तो इस क्रम में व्यवधान आ जाता है। ऐसे ही एक दिन कविता जब दो पैंतीस पर घर में घुसी तो मेज पर एक चिट्ठी पड़ी थी, उम्मीद है कॉलेज के दोस्तों के साथ लंच तुम्हें बढ़िया लगा होगा। मैं भूखा वापस जा रहा हूँ।"[7]

इतनी पाबंदियों के बीच कविता का मन घुटने लगता है और वो उसे घड़ी को कोसती है जिसमें उसने अपने घर वालों के खिलाफ जाकर संदीप से प्रेम विवाह किया। ये बात शत–प्रतिशत सच है जिस कार्य में हमारे घर वालों की रजामंदी शामिल नहीं होती उसमें हम कभी भी सफल नहीं हो सकते फिर चाहे वह नौकरी हो या फिर प्रेम विवाह। यही कविता के साथ हुआ उसे महसूस होता है कि वह एक शक्की व्यक्ति के साथ जीवन व्यतीत कर रही है। उसके दिल का दर्द उसका चेहरा बयाँ कर रहा है– "यकायक संदीप ने उसका जूड़ा झिंझोड़ डाला, "दोपहर में कौन ले गया था तुम्हें लंच पर? "कौन? कहाँ? कोई भी तो नहीं। मैं कसम से कहती हूँ, मैं तो वहीं स्टाफ रूम में थी। हेड ने आज एक एक्स्ट्रा पीरियड पढ़ाने के लिए कह दिया। चालाक तो हो ही साथ में झूठी भी छीरू।"[8]

यह उपन्यास पुरुष वर्ग की मानसिकता को चित्रित करता है। कारण चाहे कुछ भी हो झुकना महिलाओं को ही है। पत्नी चाहे कितने भी अच्छे पद पर क्यों न पहुँच जाए उसे पति के अधीन रहना ही पड़ता है। इसी द्वंद्व को लेखिका ने इस उपन्यास के माध्यम से चित्रित किया है– "उसे वक्त तो संदीप मंद–मंद मुस्कुराता रहा लेकिन बाद में उसने कविता को खूब झाड़ा– मैं समझता था तुम माँ के यहाँ रिलेक्स करने गई हो, उधर तुम अनजान लोगों से इश्क फरमा रही थी।"[9]

जब पुरुष ऐसी सोच रखते हैं तो महिलाओं की भावनाओं को बहुत ठेस पहुँचती है। पुरुष वर्ग की ये मानसिकता रहती है कि वह हर स्थान पर अपने को शीर्ष पर पाएँ। पुरुषों की इसी सोच की वजह से महिलाएँ हाशिए पर चली जाती हैं। जबकि स्त्री और पुरुष से ही इस सृष्टि का निर्माण हुआ है। दोनों में से यदि एक भी ना हो तो जीवन की कल्पना भी नहीं की जा सकती परंतु पुरुष इस बात को नजर अंदाज कर देते हैं– "हम तो नौकरों, चौकीदारों, जमादारों के बाद जनानखाने में घुस पाते हैं कविता जी। कविता जी आप इतने दिन

बिना सोहन के कैसे रहीं, कुछ बयान कीजिए। उफ, कितना जघन्य हो सकता है यह शख्स और इसकी शख्सियत कविता का सर्वांग आइसबर्ग बन गया। पिछले पाँच दिनों में कितनी गहराई से कितनी शिद्दत से इसके लिए सोचती रही कविता और आज यह कैसे नागवार चीज बन गया है। कविता को हैरत हुई, कैसे उसने ऐसे विकृत आदमी से मुहब्बत की, उसे अपना साथी बनाया और अपनी तमाम जिंदगी के सुख–दुख दांव पर लगा दिए।"[10] संदीप की ऐसी घटिया सोच ने कविता को तोड़कर रख दिया।उसे लगा कि उसके सारे सपने चकनाचूर हो गए हैं। एक पत्नी अपने पति से प्रेम और सम्मान की चाह रखती है लेकिन कविता के हाथ बिलकुल खाली थे।उसे संदीप से प्रेम विवाह करने के पश्चात् शक और तिरस्कार के सिवाय कुछ नहीं मिलता। वह भीगे मन से महसूस करती है और– "प्रकट में सिर्फ उसने इतना ही कहा संदीप लगता है तुम पूरे होश में नहीं हो मैं तुम्हारी बीवी ही नहीं, हमदम, हमदर्द भी हूँ। यह सोहन बीच में कहाँ से आ गया।"[11]

उपन्यास का अंत कुछ इस प्रकार से होता है कि कविता संदीप के अत्याचारों से तंग आकर घर छोड़ने का फैसला कर लेती है, और चली भी जाती है। फिर से संदीप का वही नाटक शुरू हो जाता है और वह कविता को डर दिखाता है कि यदि वह उसे छोड़कर गई तो वो रेलगाड़ी से कटकर मर जाएगा। तब कविता अपने मन को समझा लेती है और एक बार फिर संदीप जीत जाता है– "संदीप ने कहा "तुम मुझ पर यकीन नहीं करती, आज मैं तुम्हें जन्म भर के लिए यकीन दिलाता हूँ। तुम्हारे बिना मैं लौटूँगा नहीं यहीं से छलांग लगा दूँगा यो. ..... |"[12]

निष्कर्ष –

यह उपन्यास प्रेम विवाह पर आधारित है तथा संदीप और कविता ये दोनों इस उपन्यास के मुख्य पात्र की भूमिका निभाते हैं। इन दोनों के माध्यम से ही लेखिका ने उपन्यास का उद्देश्य पूरा करने में महारत हासिल की है। कविता अपने पति संदीप के व्यवहार को प्रेम विवाह करने के पश्चात् भी समझ नहीं पाती है, और खुद को समझाती है कि वह अपने को बदल लेगी। भारतीय स्त्रियों की यही विडंबना है। चाहे पति कैसा भी हो परंतु परिवर्तन स्त्री ही करती है। यह प्रश्न चिह्न है पुरुष वर्ग पर हर बार महिलाएँ ही क्यों बदले, पुरुषों को भी कभी तो अपने अंदर बदलाव लाना चाहिए। ममता कालिया ने सुंदर, सहज सरलता पूर्वक सभी की समझ में आने वाली भाषा को आधार बनाकर इस उपन्यास का उद्देश्य सिद्ध किया है। जिसमें पुरुष वर्ग या यूँ कहें कि पति अपना अधिकार जमाने के लिए नौकरी करने वाली पत्नी पर कैसे एक अधिकार जमाए रखता है, और पत्नी उस समय कितनी घुटन भरी जिंदगी जीने को विवश होती है?

इन सभी समस्याओं को इस उपन्यास के माध्यम से लेखिका ने चित्रित करने का प्रयास किया है। समय परिवर्तन के साथ पुरुष वर्ग को भी अपनी मानसिकता बदलने की अत्यंत आवश्यकता है। प्रेम, प्रेम ही बना रहे तो अच्छा है वह किसी भी सूरत में पीड़ा का रूप धारण न कर पाए। बस इतना ख्याल पुरुषों को रखना नहीं नितांत आवश्यक है। तब जाकर सच्चे अर्थों में दांपत्य जीवन में मिठास बरकरा रह पाएगी। वरना पुरुष वर्ग की रूढ़िवादी मानसिकता पर हमेशा प्रश्न चिह्न लगा रहेगा।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. ममता कालिया, तीन लघु उपन्यास, किताब घर प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2020, पृ० सं० 08

2. वही, पृ० सं० 10
3. वही, पृ० सं० 13
4. वही, पृ० सं० 15
5. वही, पृ० सं० 35
6. वही, पृ० सं० 24
7. वही, पृ० सं० 24
8. वही, पृ० सं० 25
9. वही, पृ० सं० 60
10. वही, पृ० सं० 67
11. वही, पृ० सं० 67
12. वही, पृ० सं० 69

संपर्क सूत्र–9520605318
ई–मेल–drenu1216@gmail.com
संपर्क सूत्र–9528831669
ई–मेल–ramharidwar33@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED PRINT RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 14, Issue 7-8
पृष्ठ : 91-97

डांग एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

दीपशिखा कुमारी
शोधार्थी, पूर्णिया विश्वविद्यालय, पूर्णिया।

शोध सार :

प्रस्तावित शोध–पत्र में हरिराम मीणा जी के उपन्यास 'डांग' में आदिवासी समुदायों के जीवन, उनकी समस्याएँ एवं उनके बागी बनने की मजबूरियों को दिखाया गया है। किस प्रकार डांग क्षेत्र के आदिवासी अपने अभिशप्त जीवन को जीते हुए डाकू बनने पर मजबूर हो जाते हैं। प्रसिद्ध उपन्यास 'डांग' को आदिवासी विमर्श के संदर्भ में देखा जा सकता है। आदिवासी हाशिये पर खड़े होकर अभिशप्त जिंदगी जीते हुए परिस्थितिवश बागी बनते हैं। उनका सशक्त चित्रण इस उपन्यास में प्रस्तुत किया गया है।

प्रस्तावना :

चर्चित उपन्यास डांग हिंदी के लब्ध प्रतिष्ठित उपन्यास लेखक, आदिवासी जीवन के विशेषज्ञ माने जाने वाले हरिराम मीणा जी का बहुचर्चित उपन्यास है। मीणा जी राजस्थान पुलिस विभाग में लंबे समय तक कार्यरत रहकर पुलिस महानिरीक्षक के पद से सेवानिवृत्त हुए। इनके द्वारा विरचित चर्चित उपन्यासों में 'डांग' के अतिरिक्त 'धूणी तपे तीर' का भी हिंदी साहित्य में महत्त्वपूर्ण स्थान है। इनकी अब तक दस से अधिक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। साहित्यिक क्षेत्र में इनकी ख्याति का अनुमान इस बात से ही लगाया जा सकता है कि इनकी कई पुस्तकें देश के प्रसिद्ध विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम में शामिल की जा चुकी हैं। इनके लिखित साहित्य पर विभिन्न विश्वविद्यालयों के दो सौ से अधिक छात्र–छात्राएं एम. फिल कर चुके हैं। कई को उनकी कृतियों पर पीएचडी की उपाधि भी प्राप्त हो चुकी है। इन्हें समय–समय पर साहित्यिक अवदान के लिए कई पुरस्कारों से भी नवाजा गया है – डॉक्टर 'अंबेडकर राष्ट्रीय पुरस्कार', राजस्थान साहित्य का सर्वोच्च 'मीरां पुरस्कार', केंद्रीय हिंदी संस्थान द्वारा 'महापंडित राहुल सांकृत्यायन' सम्मान, बिरला फाउंडेशन के 'बिहारी पुरस्कार' तथा 'विश्व हिंदी सम्मान'।

राजस्थान, मध्यप्रदेश तथा उत्तरप्रदेश की सीमा का पठारी और बीहड़ क्षेत्र डांग कहलाता है। इस क्षेत्र के डाकू स्वयं को डाकू न कहकर बागी कहते हैं। आज भी यहाँ की स्त्रियों की खरीद–फरोख्त अनवरत जारी है। यहाँ की जातियों में अब भी संघर्ष कायम है। किसानों की स्थिति अत्यंत दयनीय है एवं अत्यधिक गरीबी और भ्रष्टाचार व्याप्त है। ऐसी ही विषम परिस्थितियाँ आने पर, थोड़ी भी आर्थिक कठिनाइयों का सामना करने पर साधारण जीवन जीने वाले आम इंसान विवश होकर डाकू बन जाते हैं।

बीज शब्द : आदिवासी समुदाय, बीहड़, बागी, विषम परिस्थितियाँ, डकैत, डांग क्षेत्र, भ्रष्टाचार, आर्थिक कठिनाइयाँ, उतार–चढ़ाव, जटिलताएँ इत्यादि।

मूल आलेख :

प्रस्तावित शोध–पत्र में आदिवासी समुदायों की विषम परिस्थितियों में डांग क्षेत्र के निवासियों के मजबूरन डकैत बन जाने की त्रासदी को रेखांकित किया गया है। समस्याओं से जूझते हुए उन्हें समाज की मुख्य धारा से जुड़ते हुए दिखाने का सफल प्रयास किया गया है। कथाकार ने इस अंचल से गुजरते हुए सुप्रसिद्ध चंबल नदी, जो दस्यु प्रसूता के नाम से जानी जाती है – पाठकों को रू–ब–रू कराते हुए जीवन के उन सभी आयामों पर भी प्रकाश डाल है जो यहाँ की माटी में रची–बसी है। इस उपन्यास की भाषा शैली पर चर्चा की जाए तो भाषा सरल, प्रवाहमय और प्रभावशाली हिंदी है। इसमें डांग क्षेत्र की स्थानीयता और पात्रों की यथार्थता को ही दर्शाया गया है। यत्र–तत्र मुहावरेदार भाषा का प्रयोग भी देखने को मिलता है –**'जाके पैर न फटी बिवाई सो का जाने पीर परायी'।**[1]

भाषा सीधी और सरल होने से घटनाएँ एवं भावनाएँ जीवन्त हो उठी हैं –

'तो या बीड़ी के माथे आग लगा न सके तू? समूची छतिया कू छलनी कर रक्खी है याने, फेर बी या सू पिंड ना छुड़ा रो। वैसे ही मर रो है।'[2]**।**

जहाँ तक उपन्यास के नायकत्त्व का सवाल है तो किसी एक पात्र को हम नायक के तौर पर नहीं ले सकते। डांग के संपूर्ण अंचल को ही नायक के रूप में देखा जा सकता है। यहाँ के पर्व–त्योहार हों या धार्मिक कर्मकांड, सभी में आंचलिकता की स्पष्ट छाप देखी जा सकती है। आंचलिकता के पुट से संपूर्ण उपन्यास का वातावरण सजीव हो उठा है।

सूरोठ गाँव का रहनेवाला पात्र हरजीनाथ –जो नाथ बाबा के नाम से जाना जाता है। वह सारंगी बजाता हुआ आल्हा–ऊदल के पद गाता है। उसकी जिंदगी चंबल के समानांतर ही है। जितनी बाधाएँ, उतार–चढ़ाव चंबल की राह में आईं, उतनी ही जटिलताओं से भरा है उसका जीवन। डांग के उस जीवन की बड़ी ही नजदीकी अनुभूति थी हरजीनाथ को।

दस्यु प्रसूता चंबल के संदर्भ में कहा जाता है कि चंबल किसी की नहीं। लोक में चंबल अपनी कुख्याति से ही जानी जाती है। लोग चंबल की गहराई का पता लगाना चाहते हैं। उनका कहना है कि चंबल का तल भूगर्भीय जल से मिला हुआ है। भारत में प्रायः सभी नदियों की पूजा की जाती है। ऐसी मान्यता है कि उनके जल में डुबकी लगाकर सारे पाप धोये जा सकते हैं। परंतु चंबल के भाग्य में ये सब नहीं है। ऐसा माना जाता है कि ख्याति प्राप्त श्रवण कुमार का भी माथा दस्युओं की आ।

ननी चंबल के निकट आते ही चकरा गया था – **'बहुत ढो लिया तुम दोनों को। अब मेरा पीछा छोड़ो। स्पष्ट कह दिया था श्रवण कुमार ने अपने पूज्य माता-पिता को'।**[3]

'डांग' उपन्यास में उपन्यासकार द्वारा यह दिखाया गया है कि डांग– विशेषतः चंबल के आसपास का इलाका है। यह ऐसा क्षेत्र है जिसका अन्य दुनिया से यथार्थ के धरातल पर संपर्क न के बराबर हुआ है। अगर चंबल की छवि को दर्शायी भी गई है तो एक सिंधुविहीन टापू के रूप में। जहाँ केवल डाकुओं का बसेरा होता है। एक ऐसी बस्ती के रूप में जहाँ किसी शांति प्रिय आदमी के गलती से चले जाने पर भी उसकी शामत आ

जाती है। दूसरी ओर चंबल का गौरवगान करने वाले भी कम नहीं हैं। उन्होंने स्वयं को अनाथ मानकर चंबल को माता की संज्ञा से अभिहित किया है। उन्हीं में से एक हैं इलाके के प्रसिद्ध डकैत अमरसिंह काछी। उसने आत्मसमर्पण करने के बाद डग्गामारी जीप से सवारियों को ढोने का कार्य आरंभ किया था। वही राजाखेड़ा के सेठ कुंज बिहारी अग्रवाल के चार वर्षीय अपहृत पोते का पता लगाने में पुलिस का साथ दे रहा है। चंबल के बारे में वह कहता है – **'इस चंबल नदी को पितरों की नदी भी तो कहते हैं न। यह बात मुझे मेरे गाँव के पंडित जी ने बताई थी। अभी भी जब कभी इसके पानी को छूता हूँ मुझे बहुत सुकून मिलता है। और घोर गर्मी की तसाई भी इसके जल से तुरंत शांत हो जाती है।'**[4]

वैसे देखा जाए तो प्रत्येक इंसान के अंदर अच्छे और बुरे इंसान निवास करते हैं। कोई भी व्यक्ति जन्मजात डाकू नहीं होता। वह भी एक साधारण जीवन ही जीता है – आम आदमी की तरह। पर आखिर क्यों उसे परिस्थितियाँ विवश करती हैं डकैत बन जाने पर? किस प्रकार हालात बदलते ही शरीफ व्यक्ति मजबूरन बागी बन जाता है? इनकी जिंदगी में वो कौन–सी भूचाल आ गई कि सब कुछ छिन्न–भिन्न हो गया? वे बागी बनकर सब कुछ नष्ट करने पर उतारू हो जाते हैं।

समाज में व्याप्त सामंतवादी प्रथा तथा शोषक वर्ग के अन्यान्य को देखते हुए ही लोग बगावत पर उतरे। उस समय ऐसे डाकू उत्पन्न हुए जिन्होंने ग्रामीण क्षेत्रों में प्रभुत्त्वशाली लोगों के अन्यान्य के खिलाफ बगावत की। इसीलिए वे बागी कहलाए। उन डाकुओं को इलाके के लोग रोबिनहुड की तरह सम्मान देने लगे।

रॉबिनहुड – जिन्होंने सामाजिक कारणों से हथियार उठाया था। उनकी तरह ये डाकू भी अन्याय के विरुद्ध लड़ाई लड़े तथा गरीब और कमजोर तबके के लोगों को न्याय दिलाने में सक्रियता दिखलाईं। इनमें गरीब किसान तथा निम्न जाति के लोग थे। ये हाशिये पर जीवन व्यतीत कर रहे थे। ये सभी डकैत पुरुष थे। इनके पश्चात् कुछ ऐसी महिलाएँ भी थीं जिन्हें चंबल के बीहड़ में मजबूरन कूदना पड़ा। क्योंकि उन्हें बदला लेना था अपने ऊपर हुए जुल्मों का, अत्याचारों का। जिन बलात्कारियों व आततायियों ने स्त्रियों को केवल पाँव की जूती भर समझ रखा था, उससे उन महिलाओं ने प्रतिशोध लिया।

सन् 1970 के परिदृश्य में देखा जाए तो उस समय जितने भी डाकू हुए वे प्रायः राजपूत जाति से संबंधित थे। उनमें माधवसिंह, मोहरसिंह, मलखानसिंह, मानसिंह, सुल्तानसिंह, तहसीलदारसिंह, कप्तानसिंह आदि हैं। इसके पश्चात् डाकुओं के रूप में जो उभरने वाले थे वे पिछड़ी एवं दलित जातियों से संबंधित थे। इन जातियों ने उच्च जातियों के अन्यान्य का प्रतिकार किया। धीरे–धीरे दस्यु–दलों की रणनीति में बदलाव आने लगा। अब डाकू बनने का उद्देश्य सामाजिक कारण न होकर डकैती, अपहरण तथा चौथ वसूली हो गया था।

खोजी पत्रकार के रूप में प्रेमराज तिवारी 'डांग संदेश' नाम से साप्ताहिक अखबार निकालता है। वह विभिन्न डाकुओं के बारे में जानकारी जुटाने का कार्य करता है। इसे आज डाकू मोहरसिंह याद आ गया। उसने कहा था –

'जब तक अन्याय है बागी पैदा होते रहेंगे।'[5]

ये लोग ऐसे होते हैं जो साधारण जीवन जीते हुए कभी अपने परिवार की मान–मर्यादा की खातिर बागी बनने पर विवश हो जाते हैं।

एसएन सुब्बाराव डाकुओं को हमेशा आत्म समर्पण करने के लिए प्रेरित किया करते थे। उन्होंने डाकू

मानसिंह को अपनी कुख्याति के बाद भी उस इलाके का सम्माननीय पुरुष बताया है। मानसिंह का चरित्र रॉबिनहुड के समान ही था। उनके आदरार्थ गाँव में मंदिर बनवाया बनाया गया था।

उसी इलाके का दीपंकर नाम के व्यक्ति ने मानसिंह के बारे में कहा था –

'मानसिंह अलग किस्म का बागी था। वह ऐसा बागी था जो किसी भी तरह साधु से भिन्न नहीं था।'[6]

परिवार की इज्जत के लिए बागी बना मानसिंह किसी समय में लोक नाट्य परंपरा में नौटंकियों का नायक भी रहा था जिस पर सन् 1971 में फिल्म भी बनाई गई।

डाकुओं की डायरी बनी शिकारगाह जो 'कांस की बावड़ी' के नाम से ही ज्यादा प्रसिद्ध है। डाकुओं के दल यहाँ पर सदा से पनाह लेने आते रहे हैं। उसी स्थल पर डकैत जगबीर सिंह गूजर एक फौजी भगोड़ा था। उसने कोर्ट मार्शल से बचने के लिए स्वयं को डाकुओं के समूह में शामिल कर लिया था। उसने अपने साथी स्वरूप काछी और मुखिया विद्या सहित छः अन्य को मारकर स्वयं की स्टेनगन एवं गैंग के मुखिया के हथियारों को लेकर येन–केन–प्रकारेण पहुँचा था –भरतपुर जिले के गढ़ी बाजना पुलिस थाने, जो धौलपुर की सीमा पर डांग में स्थित है। उस समय थाने का संतरी सहित थाना प्रभारी शिवसिंह भदौरिया उसके इस रूप को देखकर हतप्रभ रह गया था। वह कैमरी गाँव का रहने वाला स्वाभिमानी और इंसाफ पसंद व्यक्ति था। उसके डाकुओं के गिरोह में शामिल होने पर उसका चाचा कर्नल हरभान सिंह उसकी माँ से भी ज्यादा रोया था– फूट–फूटकर। जब जगबीर को ये मालूम हो जाता है कि विद्या–बेदरिया गिरोह के आदमी किसी की भी बहन–बेटी की इज्जत लेने से बाज नहीं आते तो वह उसी समय से गैंग से पीछा छुड़ाने की कोशिश में था।

वह थानेदार को कह रहा है –

'थानेदार जी, पता नहीं मेरे भाग्य में क्या लिखा है जो अच्छी खासी फौज की नौकरी से हाथ धो बैठा। वहाँ भी मेरी गलती नहीं थी। कोई मुझे माँ–बहन की गाली देता है तो मैं बर्दाश्त नहीं कर पाता। कुछ इसी तरह उल्टा–सीधा व्यवहार कर दिया था फौज में मेरे साथ केप्टिन ने। मुझे न सहा गया और न रहा गया। बिना कुछ सोचे–समझे मैंने उसकी पिटाई कर दी। बस, फिर क्या था, मेरे खिलाफ कोर्ट मार्शल की कार्यवाही शुरू कर दी गई। मैं वहाँ से भाग आया।'[7]

डाकुओं को पकड़ने में गढ़ी बाजना के थानेदार भदौरिया का आत्मविश्वास बढ़ता ही जाता है। इन आदिवासी बहुल क्षेत्र में ज्ञान की कमी तथा शिक्षा का अभाव है। पूरे देश में इतनी तीव्र गति से हो रही यांत्रिक तकनीक के बारे में ये लोग अभी भी अनजान हैं। तभी तो रमधा के बीहड़ से पकड़ा उमराव जो कुख्यात डकैत गिरोह नेकी गूजर का एक सदस्य था, उसे थानेदार भदौरिया छोटे आकार का ट्रांजिस्टर को झूठ–सच पकड़ने की मशीन बता कर उसका इस्तेमाल करता है। इस ट्रांजिस्टर की कीमत एक लाख से भी ज्यादा की बता कर वह उमराव से सारा सच उगलवा लेता है। उमराव अपने दिमाग पर जोर डालते हुए बीती हुई सारी घटनाओं को थानेदार से बताता है। वह डर के मारे ट्रांजिस्टर पर अपनी अँगुली रखने से भी घबराता है। अंतत विश्वास भरे स्वर में कहता है –

'हाँ बाबूजी मैंने आप कूँ हत्तरे (हर तरह) जाँच-परिख लो है। अब मोय कछु खबर न लग रई। देवनारायण महाराज की सौगन खाके कह रो हूँ, अब मेरे पेट में ऐसी कछु बात नाय जाये मैं ते न कहूँ।'[8]

बाँध बारेठा के किनारे भरतपुर के राजा की कोठी से शुरू होती है उमराव की कहानी। माता की असमय

मृत्यु के पश्चात् सीधा–सादा उमराव गूजर एक ऐसे परिवेश में पला–बढ़ा जहाँ तकरीबन सभी जातियों के समाज का वातावरण था। इन सभी में आपसी भाईचारे की भावना कूट–कूट कर भरी हुई थी। सम्मिलित भाव से सभी एक–दूसरे की मदद किया करते थे। दूसरे शब्दों में कहा जाए तो ये वर्तमान में जीने वाले थे। "कल की चिंता" इन्हें नहीं सताती थी। ऐसे में किसी प्रकार के दंगे–फसाद की संभावना ही नहीं दीख पड़ती थी। इन सभी का भरपूर दुलार मिलता था उमराव को।

धीरे–धीरे वक्त के साथ बाँध बारेठा का वह महलनुमा कोठी भी उपेक्षित रहने लगी। यहाँ रोजगार के साधन समाप्त होने लगे तो उमराव को लेकर उसका बाप सिंचाई विभाग में आया। वहीं चौकीदार के पद पर उमराव को नौकरी मिल गई। उसका बाप–जिसे सांस की बीमारी थी, शनैः–शनैः क्षयरोग में बदल गई। इसी क्षय रोग से उसका बाप मरा था। बाप की मृत्यु से मन उचाट हो जाने पर वह घुनैनी सहायपुर की ओर चला जाता है। वहीं पर पत्थर की खान में मजदूरी करते हुए उसका संपर्क डाकुओं के दल से हो जाता है। डांग इलाके के समान ही उमराव का जीवन भी असमानताओं से भरा पड़ा था, जिसे पारकर वह अब सामान्य स्थिति में आ चुका है। वह अपने जीवन को पुनः ढर्रे पर लाना चाहता है। उसकी इमानदारी से प्रभावित हो उसे सरकारी गवाह बना दिया जाता है। इससे शेष डाकुओं को सजा दिलाने में उसका सहयोग बराबर मिलता है। अंत में गवाही पर खरा उतरने पर उसे बरी भी कर दिया जाता है।

चंबल के कुख्यात डाकू पंचम सिंह ने अपने डाकू जीवन के दरम्यान लगभग सौ लोगों को मौत के घाट उतारा था। इसी कारण उसे सन् 1970 के आसपास फाँसी की सजा सुनाई गई थी। उसे बाद में बदलकर उम्र कैद की सजा दी गई। लेकिन उसके अच्छे आचरण से प्रभावित होकर उसकी उम्र कैद की सजा को भी कम कर दिया जाता है। अब वे देश के कॉलेज के विद्यार्थियों और सजा काट रहे बंदियों को अहिंसा का पाठ पढ़ाता है। वह अपने डाकू बनने की कहानी सुनाता है। वह चौदह वर्ष की उम्र में विवाह के पश्चात् अपने परिवार के साथ शांतिपूर्वक जीवनयापन कर रहा था। उस समय चल रहे पंचायत चुनाव में कुछ लोग मिलकर उसके साथ भयंकर मारपीट करने लगते हैं। इस शक के साथ कि वे उनके विरोधी समूह से हैं। वारदात करने वाले का इतना दबदबा था कि पुलिस में रिपोर्ट तक दर्ज करने नहीं दी गई। काफी दिनों तक इलाज भी चला। इतना ही नहीं गाँव वापस आने पर उसके साथ दोबारा मारपीट की गई। अब उसका गाँव में रहना दूभर हो गया। मजबूरन उसे एक दर्जन साथियों के साथ चंबल में कूदना पड़ा। बदले की भावना में आकर उसने अपने साथ अन्याय करने वाले छह व्यक्तियों को बंदूक की गोलियों से मौत के मुँह में धकेल दिया– **'आज यह स्वीकार करने में कोई संकोच नहीं कि बदले की भावना ने मुझे अंधा कर दिया था। वैसे मैं आज भी इस आयु में बिना चश्मे के देख सकता हूँ, लेकिन प्रतिशोध की भावना के अंधे को आप क्या कहेंगे?'**[9]

डांग के लोगों की जीवनदशा में कोई परिवर्तन दृष्टिगोचर नहीं होता है। देश दुनिया में हो रही इतनी प्रगति के बाद भी डांग की भौगोलिक दशा में कुछ परिवर्तन नहीं होता। विकास के नाम पर अभियान चलाए जाते हैं। फाइलें बनती हैं। प्रतिवर्ष सफलता एवं उपलब्धियां के बड़े–बड़े दावे ठोंके जाते हैं, परंतु स्थितियाँ वैसी–की–वैसी ही हैं। यहाँ के सभी वर्ग चाहे वह कृषक हों, शिल्पी हों, श्रमिक हों, घुमंतु जनसमूह हों अथवा यायावर हरजीनाथ ही क्यों न हों उन सभी के आसपास परिवर्तन की सुगबुगाहट तक नहीं आती। इसका अभिप्राय यह नहीं कि बदलाव होता नहीं। बदलाव हो रहा है लेकिन वह एक विशिष्ट वर्गों के खाते में जमा होते

जा रहा है। आम आदमी तक उसकी पहुँच नहीं हो पाती। विविध भारती केंद्र में बज रहे एक फिल्मी गीत के माध्यम से कथाकार ने व्यंग्य किया है कि किस प्रकार विद्युत–चुंबकीय ध्वनि तरंगों के द्वारा डांग के इस सुदूर अंचल के वायुमंडल में सुनाई दे रहा है। लेकिन लोकतंत्र और विकास का कोई भी अंश इन तक नहीं पहुँच पा रहा है। यहाँ की प्रमुख समस्या भौतिक विकास की है जो डांग की संपूर्ण व्यवस्था पर प्रश्न चिन्ह लगती है।

ऐसे डकैतों को यहाँ के लोगों ने अपने नायक रूप में स्वीकारा है। मानसिंह राठौर से लेकर पानसिंह तोमर तक इनमें शामिल किए गए हैं। डांग की वस्तुस्थिति यह है कि डाकू चाहे कितने ही खराब क्यों न हों लेकिन वह यहाँ के राजनेता, अफसर और सेठ साहूकारों से बुरा नहीं होता। अभाव और अन्याय से ही डांग में डाकू पनप रहे हैं। कोई भी डाकू बनना नहीं चाहता। भौतिक व्यवस्था के कारण जैसे महाभारत में पांडवों ने बसने के लिए केवल पाँच गाँव की माँग की थी उसी प्रकार यहाँ भी उमराव जैसे गुर्जर को बुनियादी आवश्यकता चाहिए। केवल रोटी, कपड़ा, मकान। हथियार उठाकर भी उसने कभी उन हथियारों से मैत्री स्थापित नहीं की थी।

धौलपुर के बजरी माफिया के द्वारा एक सहायक पुलिस निरीक्षक बनेसिंह जाटव की ट्रक से कुचलकर हत्या की जाती है। उसके बाद भारत सरकार द्वारा सन् 1978 में राजस्थान, मध्यप्रदेश व उत्तर प्रदेश के सीमांत चंबल क्षेत्र को घड़ियालों के संरक्षण के लिए सुरक्षित राष्ट्रीय उद्यान घोषित कर दिया जाता है। चंबल नदी के अत्यधिक गहरी होने से घड़ियाल के अलावा गंगा मछली, ऊदबिलाव, गिलहरी, झाऊ मूसा, लोमड़ी, खरगोश, लंगूर, वनबिलाव आदि पर भी खतरा मंडराने लगा था। इस पर उच्च न्यायालय की चिंता को देखते हुए राष्ट्रीय त्रिराज्य चंबल उद्यान प्रबंधन एवं समन्वय समिति के गठन की घोषणा की जाती है। अब चंबल से बजरी निकालने पर प्रशासन द्वारा पूर्ण प्रतिबंध लगा दिया गया था। अब चंबल और डांग में डाकुओं की सक्रियता कम दिखने लगी। राजस्थान के इन जिलों में डाकुओं की संख्या का ग्राफ नीचे गिरता जा रहा था। शेष रह गए डकैत अपहरण और चौथ वसूली, जो लाल पत्थर की खानों से की जाती थी, अपनाने लगे। सरकार चंबल की सुरक्षा में जुट जाती है। देश में सूचना क्रांति की शुरुआत से पुलिस के कामकाज करने के तरीके में बदलाव आता है। स्थानीय पुलिस की प्राथमिकताएँ बदलती हुई नजर आने लगती हैं। चंबल नदी से उठाए जाने वाले रेत व बजरी को पन्द्रह दिन में पूरी तरह रोकने का सख्त आदेश, राजस्थान हाईकोर्ट द्वारा दिया गया। ये सभी कार्य पुलिस अधीक्षक कुमार विवेक की बदौलत संभव हो पाता था। धौलपुर के इलाके को चंबल के अभिशाप से मुक्त कराया जाता है। पर्यटन को बढ़ावा देने के उद्देश्य से एक अनोखी योजना का प्रस्ताव डांग क्षेत्र विकास बोर्ड के द्वारा तैयार किया जाता है। इस योजना का नाम दिया जाता है – 'साहसिक पर्यटन'। इसी का दूसरा नाम था 'चंबल सफारी'। इस योजना का उद्देश्य उन डाकुओं को सम्मिलित करना था जो आत्मसमर्पण कर चुके हों या जो सजा काट चुके हों। तथा जो डाकू अभी भी सक्रिय हैं उनको आत्मसमर्पण करने के लिए प्रेरित करना भी इस योजना का उद्देश्य रहा।

इसके अन्तर्गत वे समाज की मुख्य धारा से जुड़कर आए डकैतों को पर्यटक गाइड के रूप में रोजगार के साधन उपलब्ध करा सकेंगे। इस योजना को बनाने वाले सदस्यों का सोचना है कि योजना के लागू होने पर विदेशी पर्यटक भारत के अन्य जगहों को भूल चंबल की घाटियों और डांग के इलाके में ही आएँगे। 'साहसिक पर्यटन' के अंतर्गत पर्यटकों को पूर्व के डाकुओं से संपर्क का अवसर मिलेगा। इससे पर्यटक जान पाएँगे कि

आखिर किन परिस्थितियों में ये मजबूरन बागी बने थे। पर्यटकों को इस इलाके की सामाजिक, आर्थिक स्थिति से अवगत कराया जाएगा। इससे डांग की आर्थिक दशा पर सकारात्मक प्रभाव पड़ेगा। डांग का पुनः विकास संभव हो पाएगा जिसे डाकुओं ने इतने समय से रोक रखा था।

पी. जगन्नाथन जो आई.पी. एस अफसर थे। उन्हें इन सभी कार्यों के लिए पुलिस महानिदेशक के पद पर नियुक्ति दी जाती है। क्योंकि उनके सर पर एक जुनून था कि डांग क्षेत्र से किसी भी प्रकार दस्यु की समस्या से निजात मिले। दस्यु निरपराधीकरण योजना पर चर्चा करने जब वे सचिवालय गए थे तो उन्होंने डाकुओं की समस्या को राजस्थान प्रांत के लिए काला धब्बा बताया था।

डकैत अवतारी गूजर जो आत्मसमर्पण कर चुका है एक अखबार को पर्यटन योजना के संबंध में दिए गए अपने साक्षात्कार में बताता है कि चंबल की भूमि पर अगर बाहर के पर्यटक आकर हमसे बात करते हैं तो उनका स्वागत है।

संक्षेपतः कहा जा सकता है कि हरिराम मीणा जी के उपन्यास 'डांग' में उपेक्षित, बेबस तथा लाचार आदिवासी जो किसी समय प्रतिकूल परिस्थितियों के आने पर मजबूर होकर बागी बन बैठे थे, उन्हें सरकार के सफल प्रयासों द्वारा समाज की मुख्य धारा से जोड़ने का कार्य किया जाता है। सभी चंबल के अभिशाप से मुक्त हो जाते हैं। आत्मसमर्पण किये डाकुओं तथा उनके परिवार को रोजगार के साधन उपलब्ध कराने के साथ–साथ उनके बच्चों की शिक्षा व्यवस्था के लिए भी समुचित कदम उठाए जाने की भी योजना बनाई जाती है। उन्हें हाशिए से विलग एक सामान्य जीवन जीने के लिए प्रेरित किया जाता है। पुरुष डकैतों के अलावा स्त्रियाँ, जिसने अपने ऊपर हुए अत्याचारों का प्रतिशोध लेने के लिए चंबल के बीहड़ों में कदम रखा था। उनका जीवन भी बदलता नजर आता है। दस्यु निरपराधीकरण के अभियान को चलाने से बेरोजगारी समापन के साथ–साथ उद्योग धंधों को भी विकसित करने पर जोर दिया जाता है, जिससे डांग तथा चंबल के इलाके का चहुँमुखी विकास संभव हो सके। सर्वत्र परिवर्तन की लहर चले।

सन्दर्भ सूची :

1. पृष्ठ 137, मीणा हरिराम, राजपाल प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2022।
2. पृष्ठ 107 वही।
3. पृष्ठ 15 वही।
4. पृष्ठ 27 वही।
5. पृष्ठ 118 वही।
6. पृष्ठ 29 वही।
7. पृष्ठ 63 वही।
8. पृष्ठ 69 वही।
9. पृष्ठ 124 वही।

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED PRINT RESEARCH JOURNAL
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. 14, Issue 7-8
पृष्ठ : 98–101

प्रगतिवादी कविता में बदलता ग्रामीण समाज और लोक जीवन की अभिव्यक्ति

डॉ. मरजीना, शोध पर्यवेक्षक एवं विभागाध्यक्ष, हिन्दी (कला संकाय)
रघुनाथ मेघवाल, शोधार्थी हिन्दी विभाग,
मौलाना आज़ाद विश्वविद्यालय, जोधपुर।

हिन्दी साहित्य में प्रगतिवादी कविता का उदय बीसवीं शताब्दी के तीसरे और चौथे दषक में हुआ। यह वह समय था जब भारत सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक परिवर्तनों के दौर से गुजर रहा था। औपनिवेशिक शासन, कृषक शोषण, सांमती व्यवस्था, औद्योगीकरण तथा स्वतंत्रता आंदोलन ने जनजीवन को गहराई से प्रभावित किया। इन परिस्थितियों में साहित्यकारों ने समाज की वास्तविक स्थितियों को अभिव्यक्त करने की आवश्यकता महसूस की।

प्रगतिवादी कविता ने कल्पना लोक से बाहर निकलकर यथार्थ को केंद्र में रखा। इसमें विशेष रूप से ग्रामीण समाज और लोक जीवन का सजीव चित्रण हुआ। गाँव, किसान, मजदूर, स्त्री, दलित और शोषित वर्ग प्रगतिवादी कवियों की रचनाओं के प्रमुख पात्र बने। ग्रामीण समाज में हो रहे परिवर्तन – जैसे सामन्ती शोषण के विरूद्ध चतेना, आर्थिक विषमता, सामाजिक अन्याय और जागरूकता को प्रगतिवादी कवियों ने संवेदनशीलता के साथ प्रस्तुत किया।

बीज शब्द :–

प्रगतिवादी, यथार्थवाद, वर्ग–चेतना, जनवादी दृष्टि, ग्रामीण जीवन, सामाजिक परिवर्तन, पूंजीपति वर्ग, श्रमिक वर्ग, लोक संस्कृति, लोक भाषा, लोकगीत, सामाजिक न्याय।

- **प्रगतिवादी का उदय और उसकी सामाजिक पृष्ठभूमि :**

प्रगतिवादी आंदोलन पर मार्क्सवादी विचारधारा का गहरा प्रभाव था। इसका मुख्य उद्देश्य साहित्य को समाज परिवर्तन का माध्यम बनाना था। 1936 में लखनऊ में आयोजित प्रगतिशील लेखक संघ के सम्मेलन ने इस आंदोलन को संगठित रूप प्रदान किया।

प्रगतिवादी कवियों ने इन सामाजिक यथार्थो को अपनी कविता में स्थान दिया। उन्होंने ग्रामीण जीवन को केवल प्रकृति की सुंदरता तक सीमित नहीं रखा, बल्कि उसके संघर्ष, पीड़ा और परिर्वनशील स्वरूप को उजागर किया।

- **ग्रामीण समाज का यथार्थ चित्रण :**

प्रगतिवादी कविता में गाँव किसी रमणीय स्वप्नलोक की तरह नहीं, बल्कि संघर्ष और शोषण से ग्रस्त समाज के रूप में उभरता है। सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला ने गांव के निर्धन और उपेक्षित मनुष्य के दुख की करूण संवेदना को मार्मिकता के साथ प्रस्तुत किया। उनकी रचनाओं में सामाजिक अन्याय के प्रति गहरी सहानुभूति दिखाई देती है।[1]

- **किसान जीवन की पीड़ा :**

किसान प्रगतिवादी कवियों का केंद्रीय पात्र है। वह मेहनत करता है, पर उसका फल जमींदार और साहूकार को मिलता है।

केदारनाथ अग्रवाल की कविताओं में किसान का श्रम और उसका शोषण दोनों स्पष्ट रूप से दिखाई देते है। खेतों में पसीना बहाता किसान प्रकृति से जुड़ा हुआ है, पर समाज की व्यवस्था उसे गरीबी में धकेलती है। नागार्जुन ने किसानों की दुर्दशा को व्यंग्यात्मक और विद्रोही स्वर में प्रस्तुत किया। उनकी कविताओं में भूख, अकाल और अन्याय का सशक्त चित्रण मिलता है।

- **ग्रामीण गरीबी और विषमता :**

प्रगतिवादी कविता में गाँव की झोपड़ियाँ, फटे कपड़े, भूखे बच्चे और अभावग्रस्त स्त्रियाँ बार–बार दिखाई देती है। यह चित्रण पाठक को झकझोरने वाला है। सुभद्रा कुमारी चौहान और त्रिलोचन जैसे कवियों ने ग्रामीण निर्धनता का करूणा और यथार्थ दोनों के साथ प्रस्तुत किया।

- **बदलता ग्रामीण समाज :**

प्रगतिवादी कविता केवल दुख और शोषण का चित्रण नहीं करती, बल्कि परिवर्तन की प्रक्रिया को भी दर्षाती है। केदारनाथ अग्रवाल ने श्रमशील किसान और मजदरू की गरिमा का चित्रण किया है। उनकी कविताओं में खेत नदी, पत्थर और श्रम–यह जीवन के संघर्ष से जुड़े प्रतीक बन जाते है।[2]

- **चेतना और विद्रोह :**

ग्रामीण समाज में धीरे–धीरे जागरूकता बढ़ रही थी। किसान अपने अधिकारों के प्रति सचते हो रहे थे। नागार्जुन की कविताओं में किसान अब केवल सहनशील नहीं, बल्कि विद्रोही रूप में दिखाई दते है। वह अन्याय के खिलाफ आवाज उठाता है। प्रगतिवादी कवियों ने इस चेतना को सकारात्मक परिवर्तन का संकेत माना।

प्रगतिवादी कविता हिन्दी साहित्य में सामाजिक यथार्थ की सशक्त अभिव्यक्ति इसमें बदलते ग्रामीण समाज, किसान जीवन की समस्या, श्रम की गरीमा और लोक संस्कृति की जीवंतता का समन्वित चित्रण मिलता है। यह कविता केवल भावानात्मक नहीं बल्कि सामाजिक परिवर्तन की चेतना से प्रेरित है। इसलिए प्रगतिवादी काव्य को भारतीय ग्रामीण जीवन का ऐतिहासिक दस्तावेज भी कहा जाता है।[3]

- **सामंती व्यवस्था का पतन :**

प्रगतिवादी कविताओं में जमींदारो और शोषकों की आलोचना तीव्रता से की गई है। सांमती व्यवस्था को अमानवीय और अन्यायपूर्ण बताया गया। इस व्यवस्था के टूटने की आकांक्षा प्रगतिवादी कविता में स्पष्ट रूप से दिखाई देती है।

- **लोक जीवन की अभिव्यक्ति :**

प्रगतिवादी कविता में लोक जीवन केवल आर्थिक संघर्ष तक सीमित नहीं है, बल्कि उसमें ग्रामीण संस्कृति, परंपराएँ, बोली–बानी और सामूहिक जीवन की झलक भी मिलती है। रामधारी सिंह दिनकर ने भी ग्रामीण समाज में जाग्रति और आत्मसाम्मान की भावना को स्वर दिया। उनकी कविता अन्याय के विरूद्ध संघर्ष का आहवान करती है।[4]

- **लोक भाषा और शैली :**

प्रगतिवादी कवियों ने जनभाषा का प्रयोग किया। इससे कविता आम जनता के अधिक निकट आई। नागार्जुन और केदारनाथ अग्रवाल की भाषा ग्रामीण परिवेश से जुड़ी हुई है। इसमें ठेठ शब्दावली और लोक मुहावरों का प्रयोग मिलता है।

- **लोक संस्कृति :**

ग्रामीण मेले, त्योहार, खेतों में काम करते मजदूर, चरवाहे और ग्रामीण स्त्रियाँ कविता के माध्यम से जीवंत हो उठते हैं। यह चित्रण केवल सौंदर्य के लिए नहीं, बल्कि समाज की वास्तविकता को समझाने के लिए किया गया है।

- **स्त्री जीवन और ग्रामीण समाज :**
  - प्रगतिवादी कविता में ग्रामीण स्त्री का चित्रण भी महत्वपूर्ण है।
  - वह घर और खेत दोनों में काम करती है, पर उसे समान अधिकार नहीं मिलते।
  - कविताओं में स्त्री की पीड़ा, शोषण और संघर्ष को उजागर किया गया है।
  - साथ ही, स्त्री को परिवर्तन की वाहक के रूप में भी देखा गया है।

- **प्रकृति और ग्रामीण जीवन :**

प्रगतिवादी कवियों ने प्रकृति को केवल सौंदर्य का स्त्रोत नहीं, बल्कि श्रम से जुड़ा हुआ तत्व माना। खेत, नदियाँ, बारिश, फसलें– सब ग्रामीण जीवन से जुड़े हुए हैं। प्रकृति किसान की मित्र भी है और कभी–कभी उसकी परीक्षा लेने वाली शक्ति भी।

- **प्रमुख प्रगतिवादी कवि और ग्रामीण समाज :**

नागार्जुन :

  - नागार्जुन की कविताएँ ग्रामीण यथार्थ की सषक्त अभिव्यक्ति हैं।
  - उन्होंने किसान जीवन की त्रासदी, भूख और संघर्ष को निर्भीकता से प्रस्तुत किया।
  - उनकी कविता में विद्रोह और करूणा दोनों साथ–साथ चलते हैं।
  - नागार्जुन के कविताओं में किसान जीवन की त्रासदी और विद्रोह दोनों उपस्थित है। वे भूख, निर्धरता और सामाजिक अन्याय के विरूद्ध आवाज उठाते है।[5]

केदारनाथ अग्रवाल :

  - केदारनाथ अग्रवाल की कविताओं में गाँव और प्रकृति का गहरा संबंध दिखाई देता है।
  - उन्होंने किसान के श्रम और उसकी गरिमा को उजागर किया।

त्रिलोचन :

- त्रिलोचन ने ग्रामीण जीवन की साधारण घटनाओं को कविता का विषय बनाया।
- उनकी कविताओं में लोक जीवन की सहजता और यथार्थ का सुंदर मले मिलता है।
- प्रगतिवादी कविता का सामाजिक प्रभाव।
- प्रगतिवादी कविता ने समाज को सोचने पर मजबूर किया।
- इसने शोषण के खिलाफ चेतना फैलाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।
- ग्रामीण समाज के प्रति शहरी पाठकों की संवेदनशीलता बढ़ी।
- साहित्य समाज परिवर्तन का माध्यम बना।

- **आलोचनात्मक दृष्टि :**

कुछ आलोचकों का मानना है कि प्रगतिवादी कविता में कहीं–कहीं कलात्मकता की कमी दिखाई देती है। यथार्थ और संदेश के चक्कर में भावनात्मक गहराई कम हो जाती है। परंतु अधिकांश विद्वान मानते हैं कि इस कविता की सबसे बड़ी शक्ति उसका सामाजिक सरोकार है।

निष्कर्ष :

प्रगतिवादी कविता ने हिन्दी साहित्य को एक नई दिशा दी। इसने ग्रामीण समाज और लोक जीवन को पहली बार व्यापक और यथार्थपरक दृष्टि से प्रस्तुत किया। गाँव अब केवल प्राकृतिक सौंदर्य का प्रतीक नहीं रहा, बल्कि सामाजिक संघर्षो का केंद्र बन गया। किसान, मजदूर और ग्रामीण स्त्री प्रगतिवादी कविता के नायक बने। उनके दुख, शोषण और परिवर्तन की आकांक्षा को कवियों ने सशक्त शब्दों में अभिव्यक्त किया। ग्रामीण समाज में बढ़ती चेतना, सामंती व्यवस्था के विरूद्ध विद्रोह और सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया को प्रगतिवादी कविता ने आषा के साथ प्रस्तुत किया। लोक जीवन की भाषा, संस्कृति और परंपराओं को अपनाकर कविता जनसाधारण के और निकट पहुँची।

अंततः कहा जा सकता है कि प्रगतिवादी कविता में बदलता ग्रामीण समाज और लोक जीवन की अभिव्यक्त न केवल साहित्यिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है, बल्कि सामाजिक इतिहास का सजीव दस्तावेज भी है। इसने हिन्दी कविता को जीवन के वास्तविक संघर्षो से जोड़ा और उसे समाज परिवर्तन की चेतना से समृद्ध किया।

संदर्भ :-

1. रामविलास शर्मा– निराला की साहित्य साधना, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1998, पृं. – 210
2. बच्चन सिंह – आधुनिक हिन्दी का इतिहास, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 2008, पृं.– 276
3. हजारीप्रसाद द्विवेदी – हिन्दी साहित्य की भूमिका, राज कमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2001 पृं. – 154
4. विश्वनाथ त्रिपाठी – हिन्दी साहित्य का संक्षित इतिहास, एनसीईआरटी, नई दिल्ली, 2006, पृं. –198
5. नामवरसिंह – कविता के नये प्रतिमान, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2003, पृं. – 67

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED PRINT RESEARCH JOURNAL
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. 14, Issue 7-8
पृष्ठ : 102–107

प्राचीन भारत में मृत्तिका शिल्प

मीनू यादव
शोधार्थिनी, प्राचीन भारतीय इतिहास एवं पुरातत्व विभाग,
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ।

शोध सार –

भारतीय संस्कृति के प्रारम्भिक चरण की प्रमुख विशेषताओं में मृत्तिका शिल्प का महत्वपूर्ण योगदान रहा। भारतीय सभ्यता के विकास के शुरुआती चरणों में ही पहले हाथ से फिर चाक पर बर्तनों के निर्माण की विधा विकसित कर ली गयी थी जो ज्ञात भारतीय विकास चरणक्रम में प्रागैतिहासिक काल के उत्तरार्द्ध काल में शुरू हुई, सैन्धवकाल में विकासशील चरण में रही, वैदिक काल में निखरने लगी तथा फिर आगे के कालों में वह निरन्तर प्रगति के उच्च स्वरूप की प्राप्ति में अग्रसर रही। इसके अन्तर्गत मिट्टी की मूर्तियाँ, (मानव व पशु–पक्षियों) मृदभाण्ड व दैनिक जीवन उपयोगी अन्य कई वस्तुओं को बनाया जाता था जिसके कुशल शिल्पकार होते थे, जो उन्हें बनाने के साथ ही उन पर अलंकरण कर कलात्मक सौन्दर्य का परिचय देते थे। मृत्तिका शिल्प के अन्तर्गत बनी वस्तुएँ केवल दैनिक–जीवन उपयोगी ही नहीं होती थीं, बल्कि वह कला, धर्म, अर्थव्यवस्था व सामाजिक जीवन का महत्वपूर्ण अंग होती थीं। प्रस्तुत शोध पत्र में इन्हीं तथ्यों का सविस्तार विश्लेषण प्रस्तावित किया जायेगा।

बीज शब्द – मृदभाण्ड, मृण्मूर्तियाँ (स्त्री–पुरुष, पशु–पक्षियों), मनके।

प्रस्तावना –

प्राचीन भारत में मिट्टी की बनी वस्तुएँ मृत्तिका शिल्प के अन्तर्गत आती हैं। मृत्तिका शिल्प एक प्राचीनतम् जीवंत कला मानी जाती है जो आज भी समाज में सुचारू रूप से प्रचलित है। यह प्राचीनतम मानव संस्कृति और इतिहास को जानने का एक प्रमुख आधार रही। समय के साथ इस कला के विकास ने निरन्तरता व कलात्मक उत्कृष्टता प्राप्त की तथा आज भी यह मानव संस्कृति की अमूल्य कलात्मक धरोहर मानी जाती है। मृत्तिका शिल्प का प्रारम्भ प्रायः भारतीय इतिहास में मध्य पाषाण काल में प्रारम्भ होता दिखाई देता है। तथा स्पष्ट रूप से यह नवपाषाणकाल में विकसित हुई। हड़प्पा सभ्यता उत्खनन के फलस्वरूप मृदभाण्ड, मृण्मूर्तियाँ, मनके आदि प्राप्त होते हैं। वैदिक काल में मृत्तिका शिल्प के अन्तर्गत मृण्दभाण्डों का विशेष योगदान रहा, जिसका उपयोग वैदिकजनों द्वारा अपने दैनिक जीवन में पर्याप्त मात्रा में किया जाता था। महाजनपदकाल के अन्तर्गत साहित्यिक व पुरातात्विक स्रोतों में मृत्तिका शिल्प की जानकारी मिलती है। इस काल में कई प्रकार के मृदभाण्डों

की प्राप्ति होती है जिसमें उत्तरी कृष्णमार्जित मृदभाण्ड प्रमुख रहे। मौर्य व मौर्योत्तरकाल में मृत्तिका शिल्प के अन्तर्गत मिट्टी के मृदभाण्ड, मृण्मूर्तियाँ आदि निर्मित किये जाते थे जो प्राचीन भारत की सभ्यता व संस्कृति को उद्घाटित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

शोध के उद्देश्य –

- प्रागैतिहासिक कालीन मृत्तिका शिल्प का अध्ययन करना।
- सिन्धु सभ्यता में मृत्तिका शिल्प का अध्ययन करना।
- हड़प्पा सभ्यता में मृत्तिका शिल्प का अध्ययन करना।
- महाजनपद काल में मृत्तिका शिल्प का अध्ययन करना।
- मौर्य एवं मौर्योत्तर काल में मृत्तिका शिल्प का अध्ययन करना।

शोध प्रश्न –

प्राचीन भारत में मृत्तिका शिल्प के अन्तर्गत किस प्रकार मिट्टी की वस्तुओं को बनाया जाता था, उनकी तकनीक विधि तथा कलात्मक उत्कृष्टता क्या रही तथा इनका दैनिक जीवन में मानव किस उद्देश्य से उपयोग करता था।

शोध विधि –

प्रस्तावित शोध प्रबंध में ऐतिहासिक शोध पद्धति, तथ्यात्मक शोध पद्धति का प्रयोग किया गया है जो ऐतिहासिक व विकासात्मक अध्ययन से सम्बन्धित है। तथ्यात्मक शोध पद्धति के आधार पर इस अध्ययन में वस्तुनिष्ठता का समावेश किया जायेगा।

प्रागैतिहासिक काल : मृत्तिका शिल्प –

मृत्तिका शिल्प के अन्तर्गत मिट्टी की बनी मूर्तियाँ (मानव, पशु–पक्षियों) मृदभाण्ड, मनके आदि आते हैं। प्रागैतिहासिक काल में मृत्तिका शिल्प के प्रारम्भिक स्वरूप को मध्यपाषाणकाल में बागोर, मिर्जापुर जैसे स्थानों से प्राप्त मृदभाण्ड के टुकड़ों[1] (हाथ से निर्मित) के आधार पर देखा जा सकता है। नवपाषाणकाल में मृत्तिका शिल्प के अन्तर्गत मृदभाण्डों की जानकारी प्राप्त होती है जो उस काल की प्रमुख विशेषता माने जाते हैं। जिनका प्रयोग अनुमानतः भोजन पकाने, खाने, खाद्य संग्रहण आदि में किया जाता था। इनके निश्चित रूप से प्रयोग के साक्ष्य हमें मेहरगढ़ (उत्तर–पश्चिम भारत) के कालखण्ड II से प्राप्त होते हैं जो पहले हाथ से बने और बाद में चाक पर बने मृदभाण्डों के इस्तेमाल की जानकारी प्राप्त होती है। तथा मेहरगढ़ के कालखण्ड III में मृदभाण्डों पर चित्रकारी देखने को मिलती है। उत्तर–भारत (2500–1500 ई0पू0) में भी पहले हाथ के बने मृदभाण्ड तथा बाद में चाक पर बने मृदभांड देखने को मिलते हैं।[2] मध्य भारत (4000–1200 ई0पू0) में मृदभांड हाथ से बने हुए थे और जो अच्छी तरह पके हुए नहीं थे। मध्य गंगा के मैदान (2000–1500 ई0पू0) क्षेत्रों में मृदभाण्ड लाल, काले और धूसर रंग के हैं तथा हाथ के बने अपरिष्कृत हैं। कुछ मृदभाण्डों पर आड़ी–तिरछी रेखाओं के पैटर्न भी देखने को मिलते हैं। पूर्वी–भारत (2000–1500 ई0पू0) में प्राप्त मृदभाण्ड हाथ से बने थे और बनावट की दृष्टि से ये चीन तथा दक्षिण–पूर्वी एशिया के देशों के काफी करीब हैं। प्रायद्वीपीय भारत (2500–1500 ई0पू0) में प्रारम्भिक मृदभाण्ड हस्तनिर्मित थे जो कई प्रकार के आकारों में उपलब्ध थे, जैसे कि जार, कटोरे, टोटी वाले बर्तन इत्यादि।[3] अतः इस काल में कला के नाम पर बहुत ही कम वस्तुएँ प्राप्त हैं। वायलियन के आकार जैसी पाँवों

वाली कच्ची मिट्टी की मृण्मूर्तियाँ गेरू से रँगी हुई हैं। पशुओं की कुछ मृण्मूर्तियाँ भी पाई गईं। पक्की मिट्टी का एक बेलनाकार मनका भी मिला, जिस पर किसी वनस्पति का चित्र बना हुआ है।[4]

इस प्रकार प्रागैतिहासिक काल में सबसे पहले मिट्टी के बर्तन व अन्य वस्तुएँ बनाने की कला आई। जो इस काल के मध्य चरण में सीमित मात्रा में तथा अपरिष्कृत मिले। इस काल के उत्तरार्द्ध काल (नवपाषाण काल) में इनका व्यापक उपयोग प्रारम्भ हुआ, जो हाथ से तथा चाक पर बनने लगे। अतः ये मृदभाण्ड मृत्तिका शिल्प का उत्कृष्ट स्वरूप प्रस्तुत करते हैं।

सिन्धु सभ्यता : मृत्तिका शिल्प –

इस काल में मृत्तिका शिल्प की जानकारी हमें तत्कालीन पुरातात्विक स्रोतों के रूप में उत्खनन के फलस्वरूप प्राप्त होती है। इस काल में मिट्टी की मूर्तियाँ, मृदभाण्ड आदि प्राप्त होते हैं। मृण्मूर्तियाँ प्रायः स्त्री–पुरुष, पशु–पक्षियों की प्राप्त होती हैं जो प्रायः हाथ से बनी हुई हैं। अपवाद स्वरूप कुछ मुखौटे साँचे से ढले हैं। ये आकृतियाँ वेशभूषा व आभूषणों से अलंकृत हैं। जो कलात्मक दृष्टि से उत्कृष्ट हैं।[5] पशु–पक्षियों की मृण्मूर्तियाँ कांचली मिट्टी से निर्मित हैं जिनमें बैल की मूर्तियाँ, मेढ़े की आकृतियाँ, गैडे की आकृतियाँ, बाघ, बकरा, कुत्ता, सुअर, खरगोश, गिलहरी, साँप व जलचरों में घड़ियाल, कछुआ, मछली की मृण्मूर्तियाँ आदि प्राप्त हैं। पक्षियों की मृण्मूर्तियों की पहचान वत्स महोदय द्वारा मोर, मुर्गी, चील, कबूतर, गौरैया, तोता आदि के रूप में की गई।[6] इस सभ्यता उत्खनन के फलस्वरूप सर्वाधिक संख्या मृदभाण्डों की रही जो अधिकांशतः खण्डित अवस्था में मिले, कुछ समूचे भाण्डों की प्राप्ति भी हुई। जो मृदभाण्ड हाथ से व चाक पर बने थे, कुछ सादे मृदभाण्ड तथा कुछ पर लाल पोत देकर काली रेखाओं के चित्र बनाये गये। जो इन मृदभाण्डों की कलात्मकता को प्रदर्शित करती हैं। इन मृदभाण्डों में नुकीली पेदी के कुल्हड़, तृतरी, बोतल जैसे अमृतघट गोल लम्बोतर लोटे, लुढ़काबाँ धरियाँ, भागद्रोण या भगोने, टोटीदार बर्तन आदि सैन्धव सभ्यता में मृत्तिका शिल्प का नेतृत्व करते दिखाई देते हैं।[7] अतः इस काल में मृत्तिका शिल्प के अन्तर्गत मृण्मूर्तियाँ, मृदभाण्डों की प्राप्ति से यह प्रतीत होता है कि इस काल में मृत्तिका शिल्प उत्कृष्ट अवस्था में रहा होगा।

वैदिक काल : मृत्तिका शिल्प –

वैदिक काल में मृत्तिका शिल्प की जानकारी साहित्यिक व पुरातात्विक साक्ष्यों से होती है। वैदिक साहित्य में ऋग्वेद, अथर्ववेद, शतपथ ब्राह्मण, तैत्तिरीय संहिता आदि से मिट्टी के बने पात्रों की जानकारी प्राप्त होती है। ऋग्वेद में मृण्डभाण्ड निर्माण में कुंभ जैसे दैनिक जीवन उपयोगी मिट्टी के बर्तनों की तथा उनके उपयोग की जानकारी मिलती है। जैसे कि शतं कुंभान असिचंतं सुरायाः[8] शतं कुभान असिचतं मधुनाम्[9] व हिरण्यस्य इव कलश[10] आदि पदावलियों का वर्णन है कि ऋग्वेद में कुलाल (कुम्हार) का उल्लेख मिलता है।[11] अथर्ववेद में पृथ्वी सूक्त में मिट्टी के महत्व को वर्णित किया गया है।[12] शतपथ ब्राह्मण में मृत्तिका शिल्प के अन्तर्गत अग्निचयन की ईंटों (अष्टिका) के निर्माण, आकार, संख्या और उनके विन्यास का विस्तृत वर्णन है।[13] पुरातात्विक दृष्टि से उत्तर वैदिक काल में चित्रित धूसर मृदभाण्ड संस्कृति महत्वपूर्ण है। इसके अन्तर्गत हस्तिनापुर, अहिछत्र, भगवानपुर, कौशाम्बी, नोह, जैसे स्थानों से चित्रित धूसर मृदभाण्ड प्राप्त हुए, जिनमें बर्तनों पर काले रंग से ज्यामितीय आकृतियाँ अंकित हैं। जो उस समय की कलात्मक और तकनीकी दक्षता को दर्शाती हैं। वैदिक काल में मृत्तिका शिल्प केवल दैनिक उपयोग के बर्तनों तक सीमित नहीं था बल्कि, धार्मिक, अनुष्ठानों, यज्ञ–वेदियों

और ईंट निर्माण में भी इनका महत्वपूर्ण योग था। इस समय मिट्टी की ईंटों को भी एक मानकीकृत पैमाने के आधार पर आकार देकर पकाने तथा अलंकरण करने की तकनीक में कुशलता देखने को मिलती है।[14] अतः तत्कालीन साहित्यिक एवं पुरातात्विक साक्ष्य इस शिल्प की उन्नत अवस्था को प्रमाणित करते हैं।

महाजनपद काल : मृत्तिका शिल्प –

महाजनपद काल में मृत्तिका शिल्प के अन्तर्गत मृदभाण्डों का विशेष महत्व रहा। इस काल में मिट्टी के दैनिक उपयोगी बर्तनों का उल्लेख तत्कालीन साहित्य में प्राप्त होता है। यह शिल्प उस समय के शिल्पों में प्रमुख स्थान रखता था, इसे बनाने वाले कुम्हार की बड़ी मांग थी। इसके लिये एक नया शब्द 'कुम्भकार' मिलने लगता है। तथा कौलालक (कुलाल कर्म) शब्द का भी वर्णन मिलता है।[15] बौधायन धर्मसूत्र में वर्णित है कि राजा कुम्हार को बुलाकर यज्ञ के लिये छोटे–बड़े आकार के भांडे–बर्तन बनवाता था।[16] इस काल में मृत्तिका शिल्प की प्रमुख पहचान उत्तरीकृष्णमार्जित मृदभाण्ड (NBPW) साथ ही चित्रित धूसर मृदभाण्ड, काले–लाल मृदभाण्ड, लाल मृदभाण्ड, धूसर मृदभाण्ड के नमूने भी प्राप्त होते हैं।[17] इन मृदभाण्डों का प्रयोग दैनिक जीवन उपयोगी कार्यों में किया जाता था। हस्तिनापुर के कालखण्ड III से टेराकोटा की बनी मृण्मूर्तियाँ प्राप्त होती हैं।[18] अयोध्या से उत्खनन के फलस्वरूप टेराकोटा की बनी संरचनाओं में अनुष्ठानिक कुंड बटखरे, डिस्क, डिस्क पर बने पहिए और एक टूटी हुई पशु की प्रतिमा मिलती है।[19]

बौद्ध काल में मानव अपने दैनिक जीवन में मिट्टी के कलात्मक भाण्डों का प्रयोग करता था। भिक्षुक मिट्टी के पात्रों को पवित्र मानते थे। वे इनका प्रयोग भोजन बनाने व उसमें खाना–खाने में करते थे, अतः इस काल में अनेक स्थानों से उत्कृष्ट मृदभाण्डों की प्राप्ति इस ओर संकेत करती है कि उस समय मृदभाण्ड गढ़ने के कुशल शिल्पी थे।[20] अतः इस काल में मृत्तिका शिल्प के अन्तर्गत मृदभाण्डों के मानव व पशु आकृतियाँ खिलौने मनके और अन्य टेराकोटा वस्तुएँ भी बनाई जाती थीं।[21] अतः इस प्रकार मृत्तिका शिल्प का महाजनपद काल के नगरीकरण, तकनीकी विकास तथा सामाजिक–आर्थिक परिवर्तन में महत्वपूर्ण योगदान रहा।

मौर्य एवं मौर्योत्तर काल : मृत्तिका शिल्प :

भारत के सांस्कृतिक इतिहास में मौर्य युग का महत्वपूर्ण स्थान है। इस काल खण्ड में शांति, सुरक्षा एवं आर्थिक समृद्धि के परिणाम स्वरूप कला के समुचित विकास हेतु उपयुक्त वातावरण मिला। अतः भारतीय कला का वास्तविक इतिहास मौर्य काल से ही प्रारम्भ होता है। मौर्यकालीन कला में राजकीय कला व लोक कला दो वर्ग स्पष्ट किये जाते हैं। जिससे लोक–कला के अन्तर्गत मनके, मिट्टी की मूर्तियाँ (विशेषतया यक्ष–यक्षी की विशाल मूर्तियाँ) तथा उत्तरी–काले चमकीले मृदभाण्ड शामिल किये जाते हैं।[22] अतः इस काल में मृत्तिका शिल्प के अन्तर्गत मृण्मूर्तियाँ, मनके एवं मृतपात्र विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। मौर्यकाल में पुरातात्विक साक्ष्यों के रूप में उत्खनन के फलस्वरूप अहिछत्र, मदुरा, हस्तिनापुर, अंतरजीखेड़ा, कौशाम्बी, भीटा, श्रृंगवेरपुर, राजघाट, बुलन्दीबाग, कुम्रहार (पटना) एवं बसाढ़ आदि स्थानों से मृण्मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं जिसमें पशु–पक्षियों के अतिरिक्त मानव मूर्तियाँ भी सम्मिलित हैं। जो हाथ से व सांचे में ढालकर निर्मित की गयी हैं। जो उत्तरकालीन लोक जीवन को प्रदर्शित करती हैं। इन्हें बनाने वाले कला के पारखी होते थे। इस काल में मिट्टी के मनके मिलते हैं जो चतुरात्र, पंचभुजाकार, षडज, वृत्ताकार, बेलनाकार आदि होते थे। मिट्टी के पात्रों में थालियाँ, कटोरे, हाड़ियाँ, कलश तथा दवात की तरह के ढक्कन मिले हैं। जो कलात्मक दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण हैं। इनमें विशेष प्रकार

की चमक होती थी।[23] अतः इस काल में मृत्तिका शिल्प का विशेष स्थान रहा।

मौर्योत्तर काल में पतंजलि के महाभाष्य में कुम्भकार, महाकुम्भकार[24] (विशेष दक्षता प्राप्त कुम्हार) तथा दिव्यावदान में घटिकार[25] के बारे में जानकारी मिलती है जो मिट्टी के बर्तन डण्डे व चाक की सहायता से बनाते थे, साथ ही खिलौने व मिट्टी के सांचे आदि भी बनाते थे।[26] इस काल में एक विशेष प्रकार की सुराही 'स्फ्रिकलर' प्राप्त होती है जो कला में उत्कृष्ट व तकनीकी दृष्टि से उन्नत मानी गई है। अतः इस काल में भी मृत्तिका शिल्प के अन्तर्गत मिट्टी की मूर्तियाँ, मृदभाण्ड आदि दैनिक जीवन उपयोगी वस्तुएँ (जैसे– घड़े, मटके, तसले, कड़ाही आदि) बनायी जाती थी जो इस काल में मृत्तिका शिल्प का उन्नत दृष्टिकोण व उसका विशेष महत्व प्रदर्शित करते हैं।

निष्कर्ष –

प्राचीन भारत में प्रागैतिहासिक काल के मध्य पाषाणकाल में मृत्तिका शिल्प के अन्तर्गत मृद्भाण्डों के कुछ साक्ष्य प्राप्त होते हैं किन्तु नवपाषाणकाल में इस शिल्प के मृदभाण्ड चाक पर बने व उत्कृष्ट कला के प्रारम्भिक उदाहरण रहे। अतः इस काल में मिट्टी के बने मृदभाण्ड, उन पर चित्रकारी, मृत्तिका शिल्प के अद्वितीय प्रारम्भिक उदाहरण माने जाते हैं। समय के साथ इस शिल्प में निरन्तर प्रगति देखने को मिलती है। हड़प्पा सभ्यता में मिट्टी की बनी वस्तुएँ जैसे मृदभाण्ड, मनके, मृण्मूर्तियाँ आदि इस शिल्प के अन्तर्गत व्यापक स्तर पर बनाये जाने लगे। वैदिक कालीन साहित्य में मिट्टी की बनी दैनिक उपयोगी वस्तुओं की जानकारी प्राप्त होती है। महाजनपद काल में भी मिट्टी की दैनिक उपयोगी वस्तुएँ, मृण्मूर्तियाँ (मनके, खिलौने) आदि बनते थे। मौर्य एवं मौर्योत्तर काल में मिट्टी के बड़े–बड़े बर्तनों जैसे घड़ा, सुराही आदि की भी जानकारी मिलती है। इस काल में बनी मिट्टी तकनीकी दृष्टि से भी उत्कृष्ट रहीं। अतः मृत्तिका शिल्प का विकास नवपाषाण काल से शुरू होकर निरन्तर आगे आने वाले कालों में उत्कृष्ट अवस्था को प्राप्त करता रहा तथा इस शिल्प के उत्कृष्ट शिल्पकार भी रहे जिन्होंने इस शिल्प को उच्च शिखर पर पहुँचाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

सन्दर्भ :

- सिंह, ओम प्रकाश, प्राचीन भारत, पृ0सं0–37।
- वही, पृ0सं0–42।
- वही, पृ0सं0–44–45।
- हबीब, इरफान, प्रागैतिहास, पृ0सं0–73।
- थपल्याल, डा0 किरण कुमार, सिन्धु सभ्यता, पृ0सं0–96–99।
- वही, पृ0सं0–93, 94, 100–107।
- अग्रवाल, वासुदेव शरण, भारतीय कला, पृ0सं0–4 पृ0सं0–29–33।
- ऋग्वेद, 1.117.7।
- ऋग्वेद, 11.117.12।
- ऋग्वेद, 1.117.6।
- ऋग्वेद, 10.72.6।

- अथर्ववेद, 12.1।
- शतपथ ब्राह्मण, 6/5।
- लाल, बी.बी., हस्तिनापुर : प्राचीन भारत, पृ0सं0–10–11।
- पूर्ववत्, भारतीय कला, पृ0सं0–67।
- बौधायन धर्मसूत्र, 15/16।
- राय, सीताराम, दि नार्दन ब्लैक पॉलिस्डवेयर इन बिहार, पृ0सं0–167।
- सिंह उपिंदर, प्राचीन एवं पूर्व मध्यकालीन भारत का इतिहास, पृ0सं0–327।
- वही, पृ0सं0–329।
- पूर्ववत, दि नार्दन ब्लैक पॉलिस्डवेयर इन बिहार पाटरीज इन एंश्यिेंट इण्डिया, पृ0सं0–167।
- त्रिपाठी विभा एवं सिंह पारुल : Analysing the Black Polished Pottery of proto-Historic early historic India, Curret Science, Vol -114, पृ0सं0–2373–2380।
- तिवारी, डा0 उदयनारायण, भारतीय स्थापत्य एवं कला, पृ0सं0–46।
- सिंह, ओम प्रकाश, प्राचीन भारत, पृ0सं0–136–137।
- दिव्यावदान, 433/3।
- अग्निहोत्री, प्रभुदयाल, पतंजलि कालीन भारत, पृ0सं0–311।
- दीक्षित, एम0जी0, एक्लेवेंशश्न एट त्रिपुरी, पृ0सं0–79।
- मार्गबन्धु, जी0 आर्कियोलॉजी ऑफ सातवाहन, पृ0सं0–120–124।

Email. : meenu500yadav@gamil.com

Mob.: 7518719254

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED PRINT RESEARCH JOURNAL
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. 14, Issue 7-8
पृष्ठ : 108–113

Potential Socio-Economic Impacts of an Induced War Between Neighbouring Countries on India

Dr.Vinod Kumar Girder, Principal
Dr. Yograj Goswami, Assistant Professor,
Maharshi Dayanand B.Ed. College, Sri Ganganagar (Rajasthan)

- **Abstract**

Regional conflicts often generate consequences that extend beyond the countries directly involved in warfare. As a major economic and political power in South Asia, India may experience significant socio-economic impacts if war occurs between its neighbouring states. The concept of an induced war refers to conflicts that are encouraged, intensified, or strategically manipulated by external powers for geopolitical interests. Such conflicts can destabilize regional economies, disrupt trade networks, and produce humanitarian crises. This research article analyses the possible socio-economic consequences of an induced war between neighbouring countries on India. The study examines impacts on economic stability, trade relations, defence expenditure, refugee migration, social cohesion, and regional diplomacy. The paper uses qualitative analysis of geopolitical literature and economic studies to explore potential scenarios. The findings suggest that although India may not be directly involved in such conflicts, spillover effects can influence its economic growth, security priorities, and domestic social structure. Therefore, proactive diplomacy, regional cooperation, and strategic economic planning are essential to mitigate the negative consequences of war in neighbouring regions.

Keywords *: regional conflict, socio-economic impact, war spillover, South Asia, geopolitics, India*

- **Introduction :**

War has historically been one of the most destructive forces affecting political stability and economic development across the world. In the modern globalized world, conflicts rarely remain confined to the countries directly involved. Neighbouring states often experience significant economic, political, and social consequences due to regional instability. This phenomenon is particularly relevant in South Asia, where geopolitical tensions, border disputes, and historical rivalries frequently influence regional relations.

India occupies a strategic geographic position in Asia and shares borders with several countries, including Pakistan, China, Nepal, Bhutan, Bangladesh, and Myanmar. Because of this geographical proximity, any armed conflict between neighboring countries can directly or indirectly affect India's economy, security, and social environment.

The term induced war refers to a conflict that is triggered or intensified by external political or strategic interests. Global powers sometimes influence regional conflicts to maintain strategic advantage, control resources, or reshape political alliances. In such cases, neighbouring countries may become battlegrounds for larger geopolitical competition.

For India, regional conflicts can generate a variety of socio-economic challenges, including disruption of trade routes, increase in defence spending, refugee migration, and political tensions. Additionally, war in neighbouring regions may influence domestic social conditions and public perception of security.

This research paper examines the potential socio-economic impacts of an induced war between neighbouring countries on India. By analysing economic, political, and social dimensions, the study aims to understand how regional conflicts can affect India's stability and development.

- **Literature Review :**

The impact of war on neighbouring countries has been widely studied in the fields of International Relations and Political Economy. Scholars argue that wars often produce regional spillover effects that influence economic growth, political stability, and social welfare.

One of the major theoretical contributions to the study of international conflict comes from Kenneth Waltz. In his structural realist perspective, Waltz suggests that international conflicts are shaped by the distribution of power in the global system. When powerful states compete for influence, smaller or regional conflicts may be intensified.

Similarly, research by Paul Collier highlights how wars in developing regions create long-term economic challenges. Collier argues that conflicts disrupt markets, reduce investment, and slow economic development for neighbouring countries as well.

Another important perspective is offered by Barry Buzan, who emphasizes the concept of regional security complexes. According to this theory, countries within a geographic region share interconnected security concerns. Therefore, instability in one country often affects others within the same region.

In the context of South Asia, scholars emphasize that historical tensions and border disputes have frequently influenced economic and political relations. Conflicts between neighbouring countries may affect regional cooperation organizations such as South Asian Association for Regional

Cooperation. Reduced cooperation may limit economic integration and development opportunities. The literature therefore suggests that regional wars can generate multiple consequences for neighbouring states, including economic instability, humanitarian crises, and political tensions. However, further research is needed to understand how these impacts may specifically affect India in the case of an induced conflict between neighbouring countries.

- **Methodology :**

This research adopts a qualitative analytical methodology based on secondary data sources. The study reviews academic literature, geopolitical analyses, economic reports, and policy studies related to regional conflicts and their socio-economic impacts.

The research focuses on three major dimensions :

4.1 Economic impacts

4.2 Social and humanitarian impacts

4.3 Political and strategic impacts

By examining historical examples of regional conflicts and applying theoretical frameworks from international relations, the study evaluates possible scenarios in which India may experience socio-economic consequences from wars occurring between neighbouring countries.

- **Potential Socio-Economic Impacts of an Induced War Between Neighbouring Countries on India : Impacts on India :**

5.1 Trade Disruptions :

One of the most immediate effects of regional conflict is disruption of trade. War between neighbouring countries may interrupt transportation networks, close borders, and increase logistical costs.

India maintains trade relations with many of its neighbours through land routes, sea routes, and regional trade agreements. If conflict disrupts these connections, several consequences may occur:

Decrease in cross-border trade

Increase in transportation costs

Supply chain disruptions

Shortage of essential goods

For example, regional conflicts may affect energy supply routes or raw material imports. Such disruptions can increase production costs for Indian industries and lead to inflation.

5.2 Impact on Investment and Economic Growth :

Regional instability often discourages foreign investment. Investors generally prefer stable

environments with predictable economic policies. If neighbouring countries are involved in war, international investors may perceive the entire region as unstable.

This perception can lead to :

Decline in foreign direct investment (FDI)

Reduction in tourism revenue

Increased financial market volatility

India's economic growth could slow if regional conflicts create uncertainty in the broader Asian economic environment.

5.3 Increase in Defence Expenditure :

War between neighbouring states may require India to strengthen its military preparedness to protect national borders. Increased security threats often lead governments to allocate more resources to defence.

Higher defence spending may have several economic implications :

Reduced funds for social welfare programs

Slower infrastructure development

Pressure on government budgets

While defence investments can improve security, excessive military spending may reduce resources available for long-term economic development.

5.4 Social and Humanitarian Impacts :

Refugee Migration :

One of the most significant consequences of war is displacement of populations. Civilians often flee conflict zones in search of safety and stability. Neighbouring countries typically become the primary destinations for refugees.

If war occurs in nearby regions, India may experience an influx of refugees seeking shelter. This situation could create humanitarian and administrative challenges such as :

Increased demand for housing and food

Pressure on healthcare systems

Need for refugee camps and humanitarian aid

While providing assistance is a moral and humanitarian responsibility, large refugee populations can strain public resources and infrastructure.

Social Tensions and Cultural Challenges :

Migration resulting from war may sometimes lead to social tensions between local populations and displaced communities. Differences in language, culture, or employment opportunities may

contribute to misunderstandings.

In border regions, rapid population changes may affect local economies and social structures. Governments must therefore implement effective policies to promote social harmony and integration.

5.6 Psychological Impact and Public Perception :

War in neighbouring regions can influence public perception of security and stability. Continuous media coverage of conflict may generate fear and anxiety among citizens.

Communities living near international borders may experience particular stress due to concerns about possible escalation. Governments must address these psychological impacts through effective communication and security measures.

5.7 Political and Strategic Impacts :

Regional Diplomatic Relations

War between neighbouring countries can significantly influence diplomatic relations across the region. Countries may align themselves with different political blocs or strategic partners.

India's foreign policy may need to balance relationships with multiple states while maintaining neutrality or promoting peace. Diplomatic tensions may arise if India is pressured to support one side in the conflict.

5.8 Weakening of Regional Cooperation :

Regional organizations play an important role in promoting economic integration and political dialogue. However, conflicts between member states can weaken such institutions.

For example, tensions between South Asian countries have historically limited the effectiveness of South Asian Association for Regional Cooperation. If war occurs between neighbouring states, regional cooperation initiatives may slow or collapse.

This could negatively affect :

Regional trade agreements

Cultural exchanges

Development programs

Security Challenges

Regional wars may increase security challenges such as arms smuggling, militant activity, or border instability. Governments must strengthen border management systems and intelligence networks to prevent such threats.

India's geographic size and strategic location require constant monitoring of regional security developments.

- **Discussion :**

The analysis shows that an induced war between neighbouring countries could create complex

socio-economic challenges for India. Even without direct involvement, India may experience economic disruptions, humanitarian pressures, and political tensions.

However, India also possesses several advantages that may help mitigate these impacts. The country has a large and diversified economy, growing technological capabilities, and strong diplomatic relationships with many global powers.

India can adopt several strategies to reduce risks associated with regional conflicts :

Strengthening diplomatic engagement with neighbouring countries

Promoting regional cooperation and conflict resolution

Diversifying trade partnerships

Investing in economic resilience and infrastructure

Enhancing border security and humanitarian preparedness

Through these measures, India can protect its socio-economic stability while contributing to regional peace.

- **Conclusion :**

War between neighbouring countries can produce far-reaching consequences that extend beyond national borders. For India, the socio-economic impacts of such conflicts may include trade disruptions, increased defence spending, refugee migration, social tensions, and diplomatic challenges. Although India may not be directly involved in an induced war between neighboring states, the spillover effects could influence its economic growth and domestic stability. Therefore, proactive diplomacy, economic planning, and regional cooperation are essential to mitigate potential risks.

Ultimately, sustainable development in South Asia depends on peaceful relations among neighbouring countries. By promoting dialogue and cooperation, India can play a significant role in maintaining regional stability and preventing conflicts from escalating.

References :

- Buzan, B., & Wæver, O. (2003). Regions and powers: The structure of international security. Cambridge University Press.
- Collier, P. (2007). The bottom billion: Why the poorest countries are failing and what can be done about it. Oxford University Press.
- Keohane, R., & Nye, J. (2012). Power and interdependence. Pearson.
- Waltz, K. (1979). Theory of international politics. McGraw-Hill.
- Government of India. (2023). Economic survey of India. Ministry of Finance.
- United Nations High Commissioner for Refugees. (2022). Global trends in forced displacement.

aroravinod260491@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED PRINT RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 14, Issue 7-8
पृष्ठ : 114–119

'एक कहानी यह भी' : संघर्ष के विशेष संदर्भ में

Dr. Sanu Thomas
Assistant Professor,
Dept. of Hindi, Catholicate College, Pathanamthitta, Kerala,Pin: 689645

मन्नू भंडारी हिंदी की प्रसिद्ध कथाकारों में प्रमुख स्थान रखती हैं। उनकी रचनाओं में आधुनिक भारतीय समाज, विशेषकर मध्यवर्गीय स्त्री के जीवन, उसकी आकांक्षाओं, मानसिक द्वंद्वों और संघर्षों का अत्यंत संवेदनशील चित्रण मिलता है। 'एक कहानी यह भी' उनकी महत्त्वपूर्ण आत्मकथात्मक रचना है। इसमें उन्होंने अपने जीवन की घटनाओं को क्रमबद्ध आत्मकथा के रूप में प्रस्तुत करने के बजाय उन व्यक्तियों, परिस्थितियों और घटनाओं को केंद्र में रखा है, जिन्होंने उनके व्यक्तित्व तथा लेखकीय चेतना के निर्माण में निर्णायक भूमिका निभाई। इस रचना में संघर्ष का क्षेत्र अत्यंत व्यापक है। लेखिका का संघर्ष केवल बाहरी परिस्थितियों से नहीं है, बल्कि वह अपने भीतर की हीन–भावना, आत्म–संदेह, पारिवारिक अपेक्षाओं, पुरुषवादी मानसिकता, वैवाहिक संबंधों, मातृत्व की जिम्मेदारियों और लेखकीय पहचान के प्रश्न से भी संघर्ष करती हैं। इसीलिए 'एक कहानी यह भी' को एक स्त्री के अस्तित्व, आत्मसम्मान और स्वतंत्र पहचान के संघर्ष की कथा कहा जा सकता है।

क) पारिवारिक संघर्ष :

मन्नू भंडारी के संघर्ष का आरंभ उनके पारिवारिक जीवन से होता है। उनके पिता अत्यंत प्रभावशाली, विद्वान और सामाजिक रूप से प्रतिष्ठित व्यक्ति थे। घर में उनका व्यक्तित्व इतना प्रभावशाली था कि परिवार के अन्य सदस्यों, विशेषकर उनकी पत्नी और बच्चों की स्वतंत्रता सीमित थी।लेखिका की माँ अशिक्षित थीं और घर–परिवार की जिम्मेदारियों में ही लगी रहती थीं। इस प्रकार घर का वातावरण स्पष्ट रूप से पितृसत्तात्मक था। पिता की इच्छाएँ और निर्णय परिवार में सर्वोपरि थे। मन्नू भंडारी अपने पिता के व्यक्तित्व का मूल्यांकन करते हुए केवल उनका गुणगान नहीं करतीं। वे उनके व्यक्तित्व के सकारात्मक और नकारात्मक दोनों पक्षों को समझने का प्रयास करती हैं। वे लिखती हैं–"यह पितृ–गाथा मैं इसलिए नहीं गा रही कि मुझे उनका गौरव–गान करना है।"[1] यह कथन इस बात का संकेत है कि लेखिका अपने पिता के प्रति श्रद्धा रखते हुए भी उनके व्यवहार की आलोचनात्मक समीक्षा करने से पीछे नहीं हटतीं।

यहाँ संघर्ष बेटी और पिता का मात्र व्यक्तिगत संघर्ष नहीं है, बल्कि पितृसत्तात्मक सत्ता और स्त्री की स्वतंत्र चेतना के बीच संघर्ष है।

ख) हीन भावना से संघर्ष :

मन्नू भंडारी के जीवन में रंग–रूप को लेकर उत्पन्न हीन–भावना अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। उनकी बड़ी बहन

सुशीला उनसे अधिक गोरी, स्वस्थ और हँसमुख थीं। पिता को गोरा रंग विशेष रूप से पसंद था। परिणामस्वरूप पिता की तुलना और प्रशंसा ने मन्नू के मन में हीनता की भावना पैदा कर दी। लेखिका का अत्यंत प्रसिद्ध आत्मस्वीकृतिपूर्ण कथन है– "मैं काली हूँ, बचपन में दुबली और मरियल भी थी।"[2] यह केवल बाहरी रूप का वर्णन नहीं है। इसके पीछे बचपन में बनी वह मानसिक ग्रंथि है, जिसका प्रभाव लेखिका की सफलता के बाद भी बना रहता है। वे स्वीकार करती हैं कि नाम, सम्मान और प्रतिष्ठा प्राप्त करने के बावजूद वे उस हीनभावना से पूरी तरह मुक्त नहीं हो पाईं। उनके शब्दों में– "सब कुछ मुझे तुक्का ही लगता है।"[3] यह कथन उनकी गहरी आत्म–संशय की मानसिकता को व्यक्त करता है। इस प्रकार रंग–रूप को लेकर सामाजिक दृष्टिकोण व्यक्ति के आत्मविश्वास को किस प्रकार प्रभावित करता है, यह रचना अत्यंत प्रभावशाली ढंग से दिखाती है।

ग) लैंगिक संघर्ष :

'एक कहानी यह भी' में स्त्री–पुरुष असमानता का प्रश्न बार–बार सामने आता है। मन्नू भंडारी जिस सामाजिक वातावरण में पली–बढ़ीं, वहाँ लड़कियों से आज्ञाकारी, मर्यादित और घरेलू बने रहने की अपेक्षा की जाती थी। लेकिन मन्नू इस सीमित भूमिका को स्वीकार नहीं करतीं। वे शिक्षा प्राप्त करती हैं, सामाजिक गतिविधियों में भाग लेती हैं और स्वतंत्रता आंदोलन से जुड़ती हैं। कॉलेज में वे जुलूसों और आंदोलनों में सक्रिय भूमिका निभाती हैं। इस प्रकार उनका व्यक्तित्व धीरे–धीरे पारंपरिक स्त्री–छवि से बाहर निकलता है। शिक्षा उनके लिए केवल डिग्री प्राप्त करने का माध्यम नहीं थी, बल्कि स्वतंत्र व्यक्तित्व निर्माण का साधन थी। दिल्ली शिक्षा विभाग की अध्ययन–सामग्री भी इस रचना के आधार पर लड़कियों के समान अधिकार और सामाजिक भागीदारी को महत्त्वपूर्ण मूल्य के रूप में रेखांकित करती है।

घ) राजनीतिक एवं सामाजिक जागरूकता का संघर्ष :

मन्नू भंडारी के जीवन में सामाजिक संघर्ष का एक महत्त्वपूर्ण चरण स्वतंत्रता आंदोलन से जुड़ा हुआ है। कॉलेज जीवन में उनकी मुलाकात शीला अग्रवाल से होती है। शीला अग्रवाल ने उनके भीतर पढ़ने, सोचने और सामाजिक गतिविधियों में भाग लेने की चेतना विकसित की। 1946–47 के स्वतंत्रता आंदोलन के समय मन्नू जुलूसों, भाषणों और छात्र गतिविधियों में सक्रिय हो जाती हैं। इस सक्रियता के कारण कॉलेज प्रशासन उनसे नाराज होता है और उनके पिता को शिकायत की जाती है। लेकिन इस घटना का परिणाम उलटा होता है। पिता को यह जानकर गर्व होता है कि उनकी बेटी नेतृत्व कर रही है। इस प्रकार मन्नू का सामाजिक संघर्ष उन्हें एक संकोची लड़की से सक्रिय, जागरूक और आत्मविश्वासी युवती में परिवर्तित करता है।

ङ) पीढ़ीगत संघर्ष :

मन्नू भंडारी और उनके पिता के बीच वैचारिक अंतर भी रचना का महत्त्वपूर्ण पक्ष है। पिता परंपरागत मूल्यों, अनुशासन और सामाजिक प्रतिष्ठा को महत्त्व देते हैं, जबकि मन्नू धीरे–धीरे स्वतंत्र चिंतन और आधुनिक दृष्टि की ओर बढ़ती हैं। शीला अग्रवाल का प्रभाव इस परिवर्तन में विशेष महत्त्व रखता है। वे मन्नू को पुस्तकें पढ़ने के लिए प्रेरित करती हैं और उनके भीतर सामाजिक–राजनीतिक चेतना उत्पन्न करती हैं। इस प्रकार लेखिका का व्यक्तित्व पारंपरिक पारिवारिक संस्कारों और आधुनिक वैचारिक चेतना के बीच विकसित होता है। यह पुरानी पीढ़ी और नई पीढ़ी के विचारों का संघर्ष भी है।

च) व्यक्तिगत स्वायत्तता का संघर्ष :

मन्नू भंडारी के जीवन में एक महत्त्वपूर्ण संघर्ष अपने निर्णय स्वयं लेने का है। विवाह के मामले में भी उन्होंने अपने जीवन का निर्णय स्वयं लिया। वे राजेंद्र यादव के साहित्यिक व्यक्तित्व और आधुनिक विचारों से प्रभावित होती हैं। उन्हें लगता है कि एक ही पेशे से जुड़े दो लोगों का वैवाहिक जीवन उनके लेखकीय जीवन के लिए उपयोगी होगा। वे सोचती हैं– "एक ही रुचि, एक ही पेशा कितना सुगम रहेगा जीवन..."[4] यहाँ विवाह उनके लिए केवल व्यक्तिगत संबंध नहीं था, बल्कि लेखकीय जीवन के विकास की संभावना भी था। लेकिन विवाह के बाद वास्तविकता उनकी अपेक्षाओं से भिन्न सिद्ध होती है। उन्होंने कहा– "इसमें कोई संदेह नहीं कि मेरे लेखकीय व्यक्तित्व को राजेंद्र ने जरूर प्रेरित और प्रोत्साहित किया। इनके साथ मिलने वाला साहित्यिक वातावरण, होने वाली गप्प गोष्ठियां मेरे बहुत बड़े प्रेरणा स्रोत भी रहे। लेकिन मेरे व्यक्तित्व का पत्नी रूप? इस पर राजेंद्र निरंतर जो और जैसा प्रहार करते रहे, उसका परिणाम मेरे लेखक ने ही भोगा।"[5]

छ) वैवाहिक संघर्ष :

'एक कहानी यह भी' का सबसे महत्त्वपूर्ण संघर्ष वैवाहिक जीवन का संघर्ष है। राजेंद्र यादव और मन्नू भंडारी दोनों साहित्यकार थे। विवाह से पहले मन्नू को लगता था कि समान पेशे और समान साहित्यिक रुचि के कारण उनका दांपत्य जीवन सहज होगा। लेकिन विवाह के बाद राजेंद्र यादव ने 'समानांतर जिंदगी' की अवधारणा सामने रखी। उनका कथन है – "छत जरूर हमारी एक होगी लेकिन जिंदगियाँ अपनी–अपनी होंगी।"[6] यह कथन आधुनिक स्वतंत्रता का प्रतीक दिखाई देता है, लेकिन व्यवहार में इसके कारण मन्नू भंडारी के सामने अनेक समस्याएँ उत्पन्न होती हैं। वे एक ओर पत्नी और माँ की भूमिका निभाती हैं, दूसरी ओर नौकरी और लेखन की जिम्मेदारी भी उठाती हैं। इस प्रकार जिस 'समानांतर जिंदगी' की कल्पना की गई थी, उसमें स्वतंत्रता और जिम्मेदारियों का समान वितरण नहीं हो पाता। लेखिका इस स्थिति को अत्यंत मार्मिक ढंग से व्यक्त करती हैं– "सर पर छत का आश्वासन देकर जैसे पैर के नीचे की जमीन ही खींच ली हो।"[7] यह उद्धरण उनके वैवाहिक जीवन की निराशा और मानसिक पीड़ा का अत्यंत प्रभावशाली प्रतीक है। मन्नू भंडारी की सबसे बड़ी समस्या यह थी कि वे केवल पत्नी की पारंपरिक भूमिका में सीमित नहीं रहना चाहती थीं। वे एक स्वतंत्र लेखिका थीं और अपने लेखकीय अस्तित्व को बनाए रखना चाहती थीं। उनके सामने प्रश्न था कि क्या वे परिवार की जिम्मेदारियों को निभाते हुए अपने लेखन को जारी रख सकती हैं? उनका जीवन इस प्रश्न का व्यावहारिक उत्तर बन जाता है। वे अपने लेखन को परिवार की जिम्मेदारियों की कीमत पर नहीं, बल्कि उन जिम्मेदारियों के बीच समय निकालकर जारी रखती हैं।

ज) स्त्री के दोहरे दायित्व का संघर्ष :

बेटी के जन्म के बाद मन्नू भंडारी की जिम्मेदारियाँ और बढ़ जाती हैं। उन्हें घर संभालना है, बेटी की देखभाल करनी है, नौकरी करनी है और साथ–साथ लिखना भी है। वे अपने जीवन की स्थिति का वर्णन करते हुए लिखती हैं–"बेटी और घर ... के साथ नौकरी ... के बीच में से ही लिखने के लिए समय और सुविधा जुटानी पड़ती थी।"[8] यहाँ संघर्ष का मूल प्रश्न है– क्या स्त्री से परिवार और पेशे दोनों में पूर्णता की अपेक्षा की जाती है? मन्नू भंडारी अपने लेखन को छोड़ती नहीं हैं। वे तमाम कठिनाइयों के बीच भी लेखन जारी रखती हैं।

झ) आर्थिक संघर्ष :

स्वतंत्र जीवन जीने के लिए आर्थिक आत्मनिर्भरता आवश्यक है। मन्नू भंडारी के जीवन में नौकरी का महत्त्व इसी कारण बढ़ जाता है। घर की जिम्मेदारियाँ बढ़ने के साथ उन्हें नौकरी करनी पड़ती है। आर्थिक जिम्मेदारी उनके लिए केवल व्यक्तिगत आवश्यकता नहीं, बल्कि परिवार के संचालन का साधन बन जाती है। इस प्रकार उनके जीवन में नौकरी, परिवार और लेखन तीनों को साथ लेकर चलने का संघर्ष दिखाई देता है। यह संघर्ष आधुनिक शिक्षित स्त्री की उस स्थिति को व्यक्त करता है जिसमें वह आर्थिक रूप से स्वतंत्र तो होती है, लेकिन घरेलू जिम्मेदारियों से मुक्त नहीं होती।

ञ) साहित्यिक संघर्ष :

मन्नू भंडारी का सबसे महत्त्वपूर्ण संघर्ष एक रचनाकार के रूप में अपनी पहचान स्थापित करने का है। शुरुआत में उन्हें अपनी रचनात्मक क्षमता पर पूरा विश्वास नहीं था। साहित्यिक सम्मेलनों में जाने और स्थापित साहित्यकारों के बीच स्वयं को स्वीकार करने में भी उन्हें संकोच होता था। उनके लेखकीय विकास में शीला अग्रवाल, राजेंद्र यादव और समकालीन साहित्यिक वातावरण की भूमिका रही। धीरे–धीरे उनकी कहानियाँ प्रकाशित होने लगीं और उनकी साहित्यिक पहचान मजबूत हुई। उनका साहित्यिक संघर्ष केवल प्रसिद्धि प्राप्त करने का संघर्ष नहीं था, बल्कि अपनी स्वतंत्र रचनात्मक आवाज विकसित करने का संघर्ष था।

ट) पति से साहित्यिक प्रतिस्पर्धा :

मन्नू भंडारी और राजेंद्र यादव दोनों साहित्यकार थे। इसलिए उनका संबंध केवल पति–पत्नी का नहीं, बल्कि दो रचनाकारों का भी था। यह स्थिति कई बार तनावपूर्ण हो जाती थी। 'एक इंच मुस्कान' जैसे संयुक्त लेखन के प्रसंग में भी दोनों की साहित्यिक पहचान और सफलता का प्रश्न सामने आता है। इस स्थिति में मन्नू के सामने एक अतिरिक्त चुनौती थी–प्रसिद्ध पुरुष साहित्यकार की पत्नी होने के बावजूद अपनी स्वतंत्र साहित्यिक पहचान बनाए रखना। यही कारण है कि उनका संघर्ष केवल घर के भीतर का नहीं था, साहित्यिक दुनिया में भी उन्हें अपनी पहचान के लिए संघर्ष करना पड़ा।

ठ) मानसिक संघर्ष :

मन्नू भंडारी की रचना में बाहरी संघर्षों के साथ मानसिक संघर्ष भी अत्यंत गहरा है। बचपन की हीनभावना, पिता की तुलना, वैवाहिक तनाव, अकेलापन, लेखन को लेकर आत्म–संदेह और पारिवारिक जिम्मेदारियाँ उनके मन को लगातार प्रभावित करती हैं। वे अपनी उपलब्धियों पर भी पूरी तरह विश्वास नहीं कर पातीं। उनका यह कथन– "सब कुछ मुझे तुक्का ही लगता है।"[9] उनके आत्म–संदेह की तीव्रता को व्यक्त करता है। यह मानसिक संघर्ष रचना को विशेष संवेदनशीलता प्रदान करता है। लेखिका अपने भीतर के कमजोर पक्षों को छिपाती नहीं हैं, बल्कि उन्हें स्वीकार करती हैं।

ड) विश्वास और अविश्वास का संघर्ष :

मन्नू भंडारी अपने पिता के शक्की स्वभाव को बचपन में नकारात्मक रूप में देखती थीं। लेकिन जीवन के अनुभवों के बाद उन्हें लगता है कि विश्वासाघात व्यक्ति के मन में किस प्रकार संदेह पैदा करता है। वे लिखती हैं– "वे तो न जाने कितने रूपों में मुझमें हैं।"[10] यहाँ लेखिका स्वीकार करती हैं कि जिन व्यक्तियों से हमारा संघर्ष होता है, उनके व्यक्तित्व का कुछ अंश भी हमारे भीतर आ जाता है। इस आत्मस्वीकार से रचना का मनोवैज्ञानिक

पक्ष अत्यंत गहरा हो जाता है।

ढ) आत्मपहचान और अस्तित्व का संघर्ष :

'एक कहानी यह भी' में सबसे व्यापक संघर्ष अपने अस्तित्व की पहचान का संघर्ष है। बचपन में मन्नू अपने भाई–बहनों की तुलना में स्वयं को कमतर समझती हैं। लेकिन जब बड़ी बहन विवाह करके चली जाती हैं और दोनों भाई पढ़ाई के लिए बाहर चले जाते हैं, तब पहली बार पिता का ध्यान उन पर केंद्रित होता है। यहीं से लेखिका को अपने अलग अस्तित्व का अनुभव होता है। दिल्ली शिक्षा विभाग की अध्ययन–सामग्री भी इस घटना को उनके नए अस्तित्व–बोध की शुरुआत मानती है। यही आत्मबोध आगे चलकर शिक्षा, सामाजिक सक्रियता, साहित्य और स्वतंत्र निर्णयों में विकसित होता है।

ण) समझौते और प्रतिरोध का संघर्ष :

मन्नू भंडारी के जीवन में समझौता और प्रतिरोध दोनों साथ–साथ चलते हैं। वे परिवार को बनाए रखने के लिए कई स्तरों पर समझौते करती हैं, लेकिन अपने लेखकीय अस्तित्व के प्रश्न पर समझौता नहीं करतीं। यही उनकी सबसे बड़ी विशेषता है। उनका जीवन बताता है कि स्त्री की स्वतंत्रता हमेशा किसी एक बड़े विद्रोह का परिणाम नहीं होती। कई बार वह छोटे–छोटे निर्णयों, आत्मनिर्भरता, शिक्षा, लेखन और अपनी पहचान को बनाए रखने से निर्मित होती है।

निष्कर्ष :

अंततः कहा जा सकता है कि 'एक कहानी यह भी' मन्नू भंडारी के संघर्षशील व्यक्तित्व की कहानी है। इसमें संघर्ष अनेक स्तरों पर दिखाई देता है–पारिवारिक संघर्ष, लैंगिक संघर्ष, रंग–रूप से उत्पन्न हीनभावना, वैचारिक संघर्ष, सामाजिक संघर्ष, आर्थिक संघर्ष, वैवाहिक संघर्ष, मातृत्व का संघर्ष, मानसिक संघर्ष, साहित्यिक संघर्ष तथा आत्मपहचान का संघर्ष। मन्नू भंडारी की विशेषता यह है कि वे अपने संघर्षों को केवल शिकायत या आरोप के रूप में प्रस्तुत नहीं करतीं। वे अपने जीवन को पीछे मुड़कर देखती हैं और यह समझने का प्रयास करती हैं कि किन परिस्थितियों ने उनके व्यक्तित्व को निर्मित किया। इस दृष्टि से 'एक कहानी यह भी' केवल मन्नू भंडारी के निजी जीवन का दस्तावेज नहीं है। यह आधुनिक भारतीय स्त्री के उस संघर्ष की प्रतिनिधि कथा है जिसमें वह परंपरा और आधुनिकता, परिवार और स्वतंत्रता, पत्नी और रचनाकार, जिम्मेदारी और आत्मसिद्धि तथा प्रेम और आत्मसम्मान के बीच संतुलन स्थापित करने का प्रयास करती है। मन्नू भंडारी का संघर्ष अंततः उनकी पराजय की कहानी नहीं, बल्कि अपने अस्तित्व और लेखकीय पहचान को बचाए रखने की संघर्षशील यात्रा है। यही इस आत्मकथात्मक रचना का सबसे महत्त्वपूर्ण संदेश है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. एक कहानी यह भी, मन्नू भण्डारी, पृ. 83
2. वहीं, पृ. 18
3. वहीं, पृ. 24
4. वहीं, पृ. 56
5. वहीं, पृ. 10

6. वहीं, पृ. 56
7. वहीं, पृ. 57
8. वहीं, पृ. 13
9. वहीं, पृ. 91
10. वहीं, पृ. 221

Ph : 9656086017,
Email: sanubiju@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED PRINT RESEARCH JOURNAL
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. 14, Issue 7-8
पृष्ठ : 120–123

साहित्यिक पत्रकारिता के आलोक में पत्रकारिता का स्वरूप एवं अंतःसंबंध

बबिता मौर्या
शोध छात्रा, हिंदी विभाग,
महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी।

पत्रिकाएं मानव मात्र के लिए अत्यंत उपयोगी है, क्योंकि हमारे सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक तथा सांस्कृतिक जीवन की सभी समस्याओं का उनमें समावेश होता है। ये युग के अनुकूल विविध विषयों के प्रति नए विचार हमारे सामने उपस्थित करती हैं। पत्रकारिता सामाजिक नजरिए की एक ऐसी प्रक्रिया है जो घटनाओं की तथ्यपरक जानकारी के साथ–साथ उसके प्रभावों से अवगत कराती है। वास्तव में मानव जब से एक–दूसरे के प्रति जानकारी रखने की ओर प्रवृत्त हुआ तभी से जनसंपर्क की अवधारणा पुष्ट होने लगी।

पत्रकारिता के लिए अंग्रेजी में 'जर्नलिज्म' शब्द व्यवहृत होता है जो श्जर्नलश से निकला है, जिसका शाब्दिक अर्थ 'दैनिक' है।

साहित्यिक पत्रकारिता दरअसल साहित्य और पत्रकारिता का मिला–जुला रूप है। इसके अंतर्गत साहित्य का पत्रकारिता में एवं पत्रकारिता का साहित्य में प्रतिफल होता है। साहित्यिक पत्रकारिता की पड़ताल करते हुए साहित्य एवं पत्रकारिता दोनों के अंतर्संबंधों पर विचार करना भी आवश्यक हो जाता है, क्योंकि उनके दोनों के अपने–अपने विशेष स्वरुप, प्रकृति एवं उद्देश्य होते हैं। उनके अंतर्संबंधों के महत्व को जॉर्ज बर्नार्ड शॉ का यह कथन भी समर्थित करता है कि ऐसा कोई भी साहित्य बहुत दिनों तक जीवित नहीं रह सकता जो पत्रकारिता ना हो। बर्नार्ड शॉ कि इस बात का समर्थन कमलापति त्रिपाठी के इस कथन से भी मिलता है कि –'कवि के लिए अनुभूति की अभिव्यक्ति का, आलोचक के लिए जीवन की स्थूल और सूक्ष्म धारा के विवेचन का, साहित्य के लिए लौकिक और अलौकिक, यथार्थ और भावुक जगत को प्रकाश में लाने का पथ एक साथ ही उपस्थित करने में सिवाय पत्रकार के आज कौन समर्थ है? साहित्य के छोटे बड़े प्रवाहों को प्रतिबिंबित करने में पत्रकारिता के समान दूसरा कौन सफल होता है।'

साहित्य की शाश्वतता एवं पत्रकारिता की गतिशीलता की दृष्टि से भी इन दोनों में गहरा संबंध है। साहित्यकार जिस शाश्वत साहित्य का निर्माण करता है,उसकी गतिशीलता और विकास के लिए पत्रकारिता आवश्यक है। पत्रकारिता साहित्य के मार्ग में अवरोध नहीं बनती, बल्कि उसकी यथेष्ट सहायता करती है। यदि साहित्य ने सामाजिक रूढ़ियों के विद्रोह से लेकर स्वाधीन चेतना तक अलख जगाने का कार्य किया तो इसमें

तत्कालीन पत्र–पत्रिकाओं का महत्वपूर्ण योगदान रहा। उस समय के महान पत्रकार वस्तुतः साहित्यकार भी थे जो साहित्य की आत्मा से परिचित थे और उन्होंने साहित्य को सामाजिक सुधार एवं आंतरिक परिष्कार का माध्यम बनाया, किंतु आज उद्देश्य के स्तर पर, मूल्य के स्तर पर, अभिव्यक्ति के स्तर पर, भाषा के स्तर पर तो इनमें अंतर है ही, साथ ही साथ व्यावसायिक दृष्टिकोण एवं विज्ञान के आधिकाधिक ट्रेण्ड ने उनके मध्य दूरियां पैदा की हैं। इन सबका प्रभाव साहित्यिक पत्रकारिता पर पड़ा है एवं उसकी प्रवृत्तियां बदली हैं।

साहित्य एवं पत्रकारिता की मूल चेतना प्रवाह एक ही है क्योंकि दोनों का सरोकार समाज से है। सामायिक परिवेश से किसी न किसी रूप में प्रत्येक लेखक प्रेरणा ग्रहण करता है, चाहे वह पत्रकार हो या साहित्यकार। दोनों ही लेखक हैं, दोनों ही सर्जनाकर हैं, दोनों के कार्य किन्हीं ऐसे गुणों की अपेक्षा करते हैं जो दोनों के लिए अपरिहार्य है – अनाविल दृष्टि, चिंतन, लेखन में प्रेषणीयता की शक्ति। दोनों देश और काल के आयामों पर अपनी विशिष्ट परंपराओं के अतिरिक्त उस संश्लिष्ट सांस्कृतिक परंपरा, उस सामाजिक चेतना–प्रवाह से भी सम्बद्ध हैं जिससे उन्हें अपनी बात औरों के प्रति निवेदित करने की प्रेरणा और शक्ति मिलती है। प्रत्येक पत्रकार अंशतः साहित्यकार भी है और प्रत्येक साहित्यकार अनिवार्यतः पत्रकार भी।

सफल साहित्यिक पत्रकारिता में प्रारंभ में निकलने वाली पत्र–पत्रिकाओं ने अनेक काम किये जिनमें प्रमुख हैं – नये लेखकों को प्रकाश में लाना, हिंदी आलोचना साहित्य के प्रचार–प्रसार में सहायक बनना, महत्वपूर्ण भाषिक एवं साहित्यिक विषयों पर विचार–विनिमय का आयोजन करना और साहित्य की व्यवस्था तथा प्रचार का प्रभावी उपक्रम करना आदि। इन पत्र–पत्रिकाओं के सुयोग्य साहित्यकार संपादक रहे और पत्रकारिता में विभिन्न साहित्यिक मूल्यों की स्थापना इनके द्वारा की गयी। हिंदी साहित्य इस प्रकार इन पत्र–पत्रिकाओं के माध्यम से ही नवीन साहित्यिक रूपों के प्रयोग में प्रयत्नशील हुआ था। प्रयोग की यह परंपरा भारतेंदु हरिश्चंद्र द्वारा प्रारंभ की गई थी तथा एक विशेष काल तक चलती रही। इस कार्य में स्वयं भारतेंदु जी ही सलंग्न नहीं रहे वरन् उन्होंने दूसरों को भी इसमें संलग्न रखा।

वर्ष 1990 से हिंदी की पत्रकारिता खासकर साहित्यिक पत्रकारिता के क्षेत्र में नए युग का परिवर्तन होता है। इसी वर्ष हिंदी को बहुआयामी उत्कर्ष प्रदान करने वाली पत्रिका 'सरस्वती' का प्रकाशन प्रारंभ हुआ जिसका संपादन 1903 से आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने किया। 1900 से 1950 के अंतराल में हिंदी में कई उन्नत चरित्र के साहित्यिक पत्र निकले। 20वीं शताब्दी के प्रथम दो दशक के प्रमुख पत्र आनंद कदंबिनी, जासूस, क्षत्रिय, मासिक वैश्योपकारक, आनंद, स्वराज, मासिक देवनागर, मासिक नृसिंह, कर्मयोगी, मर्यादा, प्रवासी भारतीयों का गदर, प्रताप, प्रभा, नवजीवन, ज्ञान शक्ति विजय, कर्मवीर, भविष्य, विश्वमित्र आदि हैं। इस काल की पत्रकारिता की सबसे बड़ी उपलब्धि है भारतीय राष्ट्रवाद का उदय।

इस प्रकार हम देखते हैं कि हिंदी पत्रकारिता के इतिहास में भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र से लेकर पंडित बाबू राव विष्णु पराड़कर तक पत्रकारिता में साहित्यिक अवदान की एक सुदीर्घ परंपरा रही है। द्विवेदी युग की पत्रकारिता अपनी साहित्यिक आदर्शवादिता के लिए विख्यात थी। इस युग में नई चेतना के साथ ही भाषा के क्षेत्र में एक नई क्रांति का जन्म हुआ। भाषा पर व्याकरण के अनुशासन को प्राथमिकता दी गई। पत्रकारिता और साहित्य दोनों ने ही, अपने–अपने मूल्यों को आरक्षित और पल्लवित किया।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् द्विवेदी युगीन साहित्यिक आदर्शवाद विखंडित होने लगा। नवीन विधाओं तथा

विविध विषयों पर पत्र–पत्रिकाएं प्रकाशित होने लगीं। पत्रकारिता का क्षेत्र बढ़ा तो सोच भी अपनी दिशा बदलने लगी। नवीन राजनैतिक, सामाजिक परिस्थितियों ने पत्रकारिता की प्रवृत्तियों में बदलाव करना प्रारंभ कर दिया, जिससे साहित्यिक पत्रकारिता प्रभावित होने लगी। पत्रकारों की योग्यता, कर्मठता, लगन एवं परमार्थ के भाव को जैसे ग्रहण लग गया। बालकृष्ण भट्ट,द्वारिका प्रसाद चतुर्वेदी, बालमुकुंद गुप्त, बनारसी दास चतुर्वेदी, आचार्य जगदीशचंद्र मिश्र तथा कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' आदि जैसे पत्रकारों की कमी हो गयी, जो ना तो किसी से भयभीत हुए और न ही नौकरी की चिंता की।

स्वतंत्रता के पश्चात् सब कुछ अर्थ की दृष्टि से देखा जाने लगा। पत्रों का नियंत्रण संपादक के हाथ से निकलकर पैसा लगाने वाले स्वामियों के हाथ में आ गया। हमारा आदर्श बदल गया और राष्ट्र की ओर से उदासीन होकर हम निजी अस्तित्व की चिंता में डूब गये। दीर्घ पराधीनता से उबरने के बाद राष्ट्र निर्माण की जिस आकुल आकांक्षा और कर्मठता की अपेक्षा थी, वह दिखाई नहीं पड़ती और हम इस तरह आश्वस्त हो गये, जैसे हमारा दायित्व शेष न रहा हो।

साहित्यिक पत्रों का योगदान हिंदी की गद्य शैलियों की स्थापना में विशेष रूप से रहा है। हिंदी की गद्य शैलियों के विकास में समाचार–पत्रों और मासिक पत्रों ने विशेष रूप से सहायता दी है। इन पत्रों द्वारा वैसे तो बहुत सी शैलियों का विकास हुआ है, परंतु हृदय स्पर्शी तथा अनूठी भाषा–शैली पत्रकारिता की ही देन है। साहित्यिक पत्रों की सफलता का रहस्य यह है कि पत्रकार उसमें अपने हृदयगत भावों को सरलता तथा तीव्रता के साथ साधारण पाठक को हृदयंगम कर देता है। संपादकीय लेखों में पत्र की भाषा– शैली का पूर्णाभास मिल जाता है। इसमें सुगठित वाक्य विन्यास, ओजपूर्ण शैली तथा तीव्रता से प्रभावित कर सकने वाले शब्दों का प्रयोग किया जाता है। साहित्यिक पत्रिकाओं की भाषा–शैली में एक–एक शब्द में एकरूपता रहती है। पत्रों की विशेषता उनकी वैयक्तिकता में है, इसलिए पत्रों में व्यक्तित्व तथा शैली का स्फुरण और अधिक स्पष्ट होता है।

इन पत्रिकाओं में प्रकाशित लेखों का महत्व शोध–कार्य की दृष्टि से सर्वाधिक विशिष्ट है। निर्भीकता पूर्वक मान्यताओं की मर्यादा का पालन करना अनिवार्य है। इनमें साहित्य की विविध विधाओं – कविता, कहानी, उपन्यास एकांकी, निबंध, शब्द–चित्र, रेखाचित्र, नाटक, समीक्षा आदि का समावेश होना चाहिए। इनमें समयानुसार विधि स्तंभ महिला मंडल, बाल साहित्य, रजत–पट, पुस्तक–परिचय इत्यादि का समावेश होना चाहिए।

साहित्य और पत्रकारिता अंतः संबंधित हैं, इतना ही नहीं, वे सहगामी और सहयोगी भी हैं। अतः यह चाहे बदलती हुई प्रवृत्तियों का प्रश्न हो, या लोकतंत्र में उनकी उपयोगिता की बात हो अथवा साहित्यिक पत्रकारिता और व्यावसायिक पत्रकारिता में परस्पर घात–प्रतिघात हो,पत्रकारिता और साहित्य के विकास की अंतर्यात्रा भी सहगामी ही है। इसका कारण यह है कि साहित्य और पत्रकारिता दोनों ही देश–काल और परिस्थिति सापेक्ष होते हैं, दोनों की पृष्ठभूमि समान होती है। हिंदी पत्रकारिता के उद्‌गम काल से लेकर नवोत्थान काल तक के क्रमिक विकास के इतिहास पर विचार करें तो पता चलता है कि साहित्य और पत्रकारिता सहयात्री ही नहीं रहे हैं, बल्कि एक–दूसरे के पूरक भी हैं। जागरण–उत्थान के साथ ही पत्रकारिता ने साहित्य को समृद्धि प्रदान की। विशेषतः हिंदी गद्य साहित्य को ऐश्वर्य प्रदान किया तो, साहित्य ने पत्रकारिता को प्रखर और धारदार बनाया।

साहित्य और पत्रकारिता दोनों एक ही धरातल से उठकर समान उद्देश्य की पूर्ति के लिए एक ही दिशा में अग्रसर हैं। दोनों का उद्देश्य है अपने कृतित्व द्वारा जीवन को अनुप्रमाणित करना, जीवन की चुनौतियों का

सामना करने के लिए सजग, सावधान करना जिससे देश उत्कर्ष के उच्चतम शिखर पर आरूढ़ हो सके। साहित्य और पत्रकारिता दोनों की विषयवस्तु एक ही है, दोनों नित्य गतिमान जीवन की घटनाओं से तत्व ग्रहण करते हैं।

सन्दर्भ -ग्रंथ :

1. डॉ राममोहन पाठक, साहित्यिक पत्रकारिता, पृष्ठ–17
2. माध्यम, बालकृष्ण राव, वर्ष 1, अंक 1
3. साहित्यिक पत्रकारिता, डॉ राम मोहन पाठक, भूमिका पृष्ठ–4
4. डॉ रामकुमार वर्मा, हिंदी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास, पृष्ठ– 149
5. साहित्यिक पत्रकारिता, डॉ राम मोहन पाठक, भूमिका पृष्ठ –5
6. नरेंद्र भानावत, दशक की पत्र –पत्रिकाएं लेख से, विश्वनाथ की पुस्तक।
7. डॉ अर्जुन तिवारी, आधुनिक पत्रकारिता, पृष्ठ –18
8. ऋचा शर्मा, स्वातंर्त्योत्तर हिंदी की साहित्यिक पत्रकारिता और रचनात्मक नवलेखन का अंतःसंबंध, पृष्ठ –81
9. डॉ अर्जुन तिवारी, हिंदी पत्रकारिता का वृहद् इतिहास, पृष्ठ– 26
10. कृपाशंकर चौबे, पत्रकारिता के उत्तर आधुनिक चरण, पृष्ठ –28
11. आर के गुप्ता, हिंदी पत्रकारिता : इतिहास एवं विकास, पृष्ठ –154
12. विनोद गोदरे, हिंदी पत्रकारिता : स्वरूप एवं संदर्भ
13. जॉर्ज बर्नार्ड शॉ, आधुनिक पत्रकारिता, पृष्ठ –40
14. ज्योतिष जोशी, साहित्यिक पत्रकारिता, पृष्ठ–137

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED PRINT RESEARCH JOURNAL
Vol. 14, Issue 7-8
पृष्ठ : 124–130

Preserving Tribal Cultural Identity and Customary Practices through PESA Gram Sabhas in Madhya Pradesh

Ravi Verma, Research Scholar, School of Social Sciences,
Devi Ahilya Vishwavidyalaya (DAVV), Indore, Madhya Pradesh, India
J.C. Sinha, Principal & Head, Department of Political Science,
Pradhan Mantri College of Excellence, Shahid Chandra Shekhar Azad Government Post Graduate College, Jhabua, Madhya Pradesh, India.

Abstract :

The Panchayats (Extension to the Scheduled Areas) Act, 1996 (PESA) serves as a critical legislative instrument for institutionalizing tribal self-governance and protecting the cultural heritage of indigenous communities in India's Fifth Schedule Areas. This research evaluates the efficacy of PESA Gram Sabhas in Madhya Pradesh, specifically focusing on the period following the notification of state-specific rules in November 2022. Utilizing a mixed-methods approach that synthesizes official government datasets from the Ministry of Panchayati Raj and secondary scholarly analysis, the study investigates the impact of decentralized authority on "Jal, Jungle, Jameen" (water, forest, and land). Quantitative findings indicate that Madhya Pradesh achieved the second-highest national ranking in PESA implementation for the 2024–25 cycle, with 11,757 villages across 89 tribal blocks now exercising statutory rights over Minor Forest Produce (MFP) and traditional justice mechanisms. The paper concludes that while the Madhya Pradesh PESA Rules 2022 have successfully created a constitutional shield for tribal cultural identity, continued capacity building is essential to harmonize statutory frameworks with ancestral customary practices.

Keywords *: PESA Act, Madhya Pradesh, Gram Sabha, Tribal Identity, Customary Law, Self-Governance.*

- **Introduction**

The enactment of the Panchayats (Extension to the Scheduled Areas) Act, 1996, commonly known as the PESA Act, represents a definitive paradigm shift in the governance of India's indigenous populations. This legislation was specifically designed to bridge the structural gap created by the 73rd Constitutional Amendment, which initially excluded Fifth Schedule Areas from the mandatory three-tier Panchayati Raj system to avoid the imposition of unsuitable administrative models on tribal societies. The primary objective of PESA is to recognize the inherent right of tribal communities to self-rule by positioning the Gram Sabha (village assembly) as the supreme authority for local decision-making. In the specific geographical and socio-political context of Madhya Pradesh, the implementation of PESA is of paramount importance as the state hosts the largest tribal population in India, comprising approximately 15.34 million individuals or 21.1% of its total demographic.

The operational scope of PESA in Madhya Pradesh involves 46 recognized Scheduled Tribes. For these communities, cultural identity is not merely a social construct but is inextricably linked to their ancestral relationship with the forest and the land, as "Jal, Jungle, Jameen". A critical turning point in the state's governance occurred on November 15, 2022, when the Government of Madhya Pradesh officially notified the Madhya Pradesh PESA Rules 2022 during the celebration of Janjatiya Gaurav Divas. The rules apply to exactly 89 tribal development blocks across 20 districts, encompassing 11,757 revenue and majra villages grouped under 5,254 Gram Panchayats. The research problem addressed in this paper concerns the effectiveness of these decentralized structures in genuinely preserving tribal cultural identity while facilitating sustainable economic development. The ongoing diversion of forest land for non-forest purposes (totaling 91,650 hectares nationally between 2021 and 2025) presents a direct threat to the resource-based identity of forest-dwelling tribes. This paper aims to analyze how the Gram Sabhas in Madhya Pradesh are navigating these challenges as of mid-2026, utilizing current government data that ranks the state second nationally in PESA implementation efficacy.

- **Objectives of the study are :**
- To evaluate the administrative status of PESA in the 89 tribal blocks of Madhya Pradesh.
- To assess the impact of Gram Sabha empowerment on the management of Minor Forest Produce and the protection of customary land rights.
- To investigate the role of traditional justice systems in maintaining tribal social harmony.
- **Literature Review & Conceptual Framework :**

The scholarly discourse surrounding the Panchayats (Extension to the Scheduled Areas) Act, 1996 (PESA) characterizes it as a transformative legislative intervention designed to decentralize

power and restore tribal autonomy in India. Researchers argue that the Act's primary contribution lies in its legal elevation of the Gram Sabha from a mere consultative body to an institution of self-government, vested with the mandate to protect tribal traditions and manage communal resources. By August 2026, academic evaluations of PESA's implementation in states like Madhya Pradesh highlight a complex landscape where progressive statutory rights often collide with entrenched administrative structures and modern economic pressures.

3.1 Conceptualizing the Gram Sabha as the Nucleus of Tribal Democracy :

Scholarly analysis emphasizes that for tribal communities, the Gram Sabha is not merely an administrative unit but a cultural one, reflecting the "Gaon Ganarajya" (Village Republic) ideal where local affairs are managed according to ancestral customs. This bottom-up approach to governance is intended to safeguard the "Jal, Jungle, Jameen" (water, forest, land) which forms the material basis of tribal cultural identity (Rohit, 2025). Studies indicate that when the Gram Sabha is recognized as the primary authority, there is a statistically significant correlation with improved ecological stewardship and higher household incomes from Minor Forest Produce (MFP), as seen in successful models like Mendha (Lekha) (Choubey, 2015; Sisodia & Dalapati, 2018). Scholars have identified a persistent tension between tribal customary law and modern regulatory frameworks, such as the Madhya Pradesh Land Revenue Code of 1959 and various forest conservation acts. Despite PESA's mandate that state laws must align with tribal practices, empirical evidence from the districts of Jhabua, Alirajpur, and Dhar suggests that poor enforcement and a lack of formal recognition for customary tenures often lead to indirect land alienation (Dwivedi & Arya, 2026). This "top-down" approach to decentralization often permits state administrations to retain de facto control over resources, thereby subverting statutory powers (Kindo & Bhowmick, 2024; Kurup, 2008). Systemic criminalization of certain tribal practices under forest laws continues to marginalize communities, exacerbating local economic inequalities (Nandwani, 2015). The management of Minor Forest Produce (MFP) is central to both the cultural and economic survival of tribes such as the Gond and Baiga in central India. Researchers argue that this shift is essential for dismantling exploitative middlemen-based systems and ensuring that tribal households capture a greater share of the estimated ?50,000 crore annual MFP trade value. This study adopts a "5-E approach" (Effectiveness, Efficiency, Ethical Considerations, Manageability, and Establishment of Recommendations) to evaluate the status of PESA in Madhya Pradesh.

- **Methodology & Data Sources :**

The research methodology for this study adopts a mixed-methods analytical framework designed to evaluate the multifaceted impact of the PESA Act on tribal cultural identity and resource governance in Madhya Pradesh.

Table 1 : Key Administrative and Economic Indicators of PESA in MP (2024–2026)

Indicator	Value / Statistic
Total Notified PESA Villages	11,757 Villages
Tribal Development Blocks Covered	89 Blocks
National Ranking (PESA Implementation)	2nd Position (2024–25)
Annual Tendu Leaf Production	25 Lakh Standard Bags
Tribal Disputes Resolved via Choupals	8,000 Cases
Saharia Tribe TB Prevalence	1,518 per 100,000

Source : *Government of India*. (2026).

This study utilizes an exploratory and descriptive research design, categorized under a rights-based policy evaluation framework. The primary analytical lens is the "5-E approach," which assesses the compliance and impact of PESA provisions through five critical dimensions: Effectiveness, Efficiency, Ethical Considerations, Manageability, and the Establishment of Recommendations for structural transformation. The data utilized in this research are derived from a combination of primary official sources and secondary academic repositories.

- **Results & Findings :**

As of August 2026, the PESA Act implementation in Madhya Pradesh covers 89 blocks and 11,757 villages, securing a second-place national ranking for the 2024–25 cycle. Economic autonomy is driven by ownership of Minor Forest Produce, where tribal collectives manage 25% of India's tendu leaf production. Qualitative success includes 8,000 disputes resolved via customary law and traditional choupals, leading to a 24.6% reduction in rural police cases. Environmental data reveals a 3% annual increase in forest cover (Gulzar et al., 2023) and decreased deforestation (Agarwal, 2026). Despite gains, the Saharia tribe faces high tuberculosis prevalence, addressed through the 2026 Work Plan's indigenous health integration. Furthermore, the Gram Sabha now exercises mandatory consent authority over land acquisition, providing a shield against land alienation and unauthorized cultural disruptions. This framework ensures the ethnic status of 46 recognized tribes is preserved through statutory and customary empowerment.

- **Discussion & Policy Implications :**

The empirical findings regarding the implementation of the PESA Act in Madhya Pradesh as of August 2026 underscore a profound shift in the governance of India's tribal heartland, yet they also

illuminate persistent structural and institutional frictions. While Madhya Pradesh's second-place national ranking for the 2024–25 cycle suggests robust administrative progress, this achievement must be viewed through the lens of "legalism from below". Findings from districts like Jhabua and Alirajpur indicate that while Gram Sabhas have been formally empowered, their executive functions are frequently hampered by bureaucratic opposition and a lack of specific capacity building. By August 2026, the success of community-owned enterprises in areas like Devlikala has shown that when Gram Sabhas manage resources directly, they can turn collective assets into sustainable revenue generators. To scale this, the state must ensure that the Minimum Support Price (MSP) for dry flowers and other produce remains remunerative and is indexed to inflation. From a policy perspective, the state should formalize the integration of these committees into the larger "e-Samadhan" digital governance framework to provide them with a recognized record-keeping platform like SabhaSaar.

Table 2 : Proposed Policy Framework for Strengthening Tribal Governance (2026–2030)

Policy Domain	Actionable Recommendation	Expected Outcome
Legal Reform	Mandatory harmonization of MP Land Revenue Code with PESA Rules	Eradication of indirect land alienation
Economic	Funding for Gram Sabha -owned MFP processing units (ODOP)	30–40% increase in tribal household revenue
Judicial	Formal recognition of choupal resolutions in district courts	50% reduction in minor rural litigation
Health	Certification of indigenous healers and midwives	Improved PVTG health indicators (e.g., Saharia TB)
Capacity	Annual mandatory training for Patwaris and Forest Guards	Reduced administrative resistance a t the grassroots

Source : *PESA Act a significant step towards tribal empowerment*. (2026).

The empirical finding that 91,650 hectares of forest land were diverted for non-forest use nationally between 2021 and 2025 highlights a critical policy failure in protecting tribal "Jal, Jungle, Jameen". The high prevalence of tuberculosis (1,518 per 100,000) among the Saharia tribe is a stark reminder that administrative empowerment must be coupled with targeted health interventions. The 2026 policy focus on "Honoring Indigenous Midwives" is a constructive example of integrating traditional maternal care into the primary healthcare delivery system. Policy should expand this model

by recognizing and certifying traditional tribal healers (Vaidyas) to serve as first-line health workers in remote hamlets where formal medical infrastructure is sparse. This approach not only improves health outcomes but also validates indigenous knowledge systems as a legitimate component of national development.

- **Conclusion :**

As of August 2026, the implementation of the PESA Act in Madhya Pradesh has successfully operationalized tribal self-governance across 11,757 villages. The notification of the 2022 rules established the Gram Sabha as a constitutional shield for 15.34 million residents, securing rights over "Jal, Jungle, Jameen." Key successes include economic empowerment through Minor Forest Produce ownership and the resolution of 8,000 disputes via traditional choupals, reducing police litigation by 24.6%. Despite a high national ranking, challenges persist, including bureaucratic resistance, industrial forest diversion, and health vulnerabilities like tuberculosis. This research identifies Madhya Pradesh as a functional proof of concept for decolonial governance. Future progress requires enhancing legal literacy, digital empowerment through SabhaSaar, and harmonizing statutory laws with customary law to preserve tribal cultural identity. Ultimately, empowering village assemblies ensures that indigenous leadership can adapt to 21st-century challenges while maintaining the communal social fabric.

References

- Agarwal, B. (2026). Can indigenous political representation improve forest conservation? *World Development*, 185, Article 106834. https://doi.org/10.1016/j.worlddev.2025.107295
- Choubey, K. N. (2015). The public life of a 'progressive' law: PESA and Gaon Ganarajya (Village Republic). *Studies in Indian Politics*, 3(2), 247–259. https://doi.org/10.1177/2321023015601745
- Drishti IAS. (2025, July 24). *MP leads the nation in PESA Act implementation*. State PCS Current Affairs. https://www.drishtiias.com/state-pcs-current-affairs/mp-leads-the-nation-in-pesa-act-implementation
- Dwivedi, G., & Arya, S. (2026). *State land alienation laws and customary rights: Conflict and convergence in tribal Panchayats of Western Madhya Pradesh* (Publication No. 10823456). Zenodo. https://doi.org/10.5281/zenodo.18670223
- *Government of India*. (2026). https://www.pib.gov.in/PressReleaseDetail.aspx?PRID=2218679&reg=3&lang=1
- Gulzar, S., Lal, A., & Pasquale, B. (2023). Representation and forest conservation: Evidence

from India's Scheduled Areas. *American Political Science Review*, 118(2), 764–783. https://doi.org/10.1017/S0003055423000758

- Kindo, D. P., & Bhowmick, P. K. (2024). Assessing the compliance of the Local Self-Governance Act for PESA in Jharkhand: A policy review after two-and-a-half decades of its inception. *Journal of Rural Development*, 43(1), 40–59. https://doi.org/10.25175/jrd/2024/v43/i1/173020
- Kurup, A. M. (2008). Tribal law in India: How decentralized administration is extinguishing tribal rights and why autonomous tribal governments are better. *Indigenous Law Journal*, 7(1), 87–124. https://hdl.handle.net/1807/17375
- Madhya Pradesh State Minor Forest Produce Federation. (2025). *Annual report on Tendu Patta and non-timber forest produce*. MP MFP Federation. http://www.mfpfederation.org/content/tendupatta.html
- Nandwani, B. (2015). Decentralisation, economic inequality and insurgency. *The Journal of Development Studies*, 55(7), 1379–1397. https://doi.org/10.1080/00220388.2018.1475650
- Press Information Bureau. (2026, January 25). *PESA state rankings for 2024–25 released* (Release ID: 2218679). Ministry of Panchayati Raj, Government of India. https://www.pib.gov.in/PressReleaseDetail.aspx?PRID=2218679&reg=1&lang=1
- *PESA Act a significant step towards tribal empowerment*. (2026). https://www.socialnews.xyz/2026/01/16/pesa-act-a-significant-step-towards-tribal-empowerment-mp-governor/
- Rohit. (2025). *Safeguarding tribal identity: A critical constitutional and policy analysis of indigenous cultural protection in India* (Publication No. 18800410). Zenodo. https://doi.org/10.5281/zenodo.18800410
- Sisodia, Y. S., & Dalapati, T. K. (2018). *Decentralised governance and implementation of PESA in tribal areas*. Routledge.
- Vidyagar, S. B. (2025). *The implementation and impact of PESA Act on tribal self-governance* (Publication No. 17663980). Zenodo. https://doi.org/10.5281/zenodo.17663980

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED PRINT RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 14, Issue 7-8
पृष्ठ : 131–136

समकालीन समाज में परिवार और मानवीय संबंधों के बदलते स्वरूप का मूल्यांकन

डॉ. बरखा घावरी
सहायक आचार्य, समाजशास्त्र,
राजकीय मीरा कन्या महाविद्यालय, उदयपुर, राजस्थान।

सारांश :

परिवार समाज की सबसे महत्वपूर्ण एवं आधारभूत सामाजिक संस्थाओं में से एक है। व्यक्ति के समाजीकरण, भावनात्मक सुरक्षा, सांस्कृतिक मूल्यों के हस्तांतरण तथा सामाजिक नियंत्रण में परिवार की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। औद्योगीकरण, नगरीकरण, वैश्वीकरण, आधुनिकीकरण, महिलाओं की शिक्षा एवं रोजगार, प्रवास और सूचना–प्रौद्योगिकी के विस्तार ने परिवार की संरचना तथा मानवीय संबंधों के स्वरूप में महत्वपूर्ण परिवर्तन उत्पन्न किए हैं। संयुक्त परिवार की अपेक्षा एकल परिवारों की प्रवृत्ति, विवाह संबंधों में व्यक्तिगत चयन, लैंगिक भूमिकाओं में परिवर्तन तथा डिजिटल संचार का बढ़ता प्रभाव समकालीन पारिवारिक जीवन की प्रमुख विशेषताएँ हैं।

प्रस्तुत शोध आलेख का उद्देश्य समकालीन समाज में परिवार एवं मानवीय संबंधों में हो रहे परिवर्तनों का समाजशास्त्रीय विश्लेषण करना तथा इनके सकारात्मक एवं नकारात्मक प्रभावों का मूल्यांकन करना है। आधुनिक परिवार में स्वतंत्रता, समानता और व्यक्तिगत अधिकारों का महत्व बढ़ा है, वहीं भावनात्मक दूरी, वृद्धजनों की देखभाल, पीढ़ीगत अंतर तथा कार्य–परिवार संतुलन जैसी चुनौतियाँ भी उभरी हैं।

प्रमुख शब्द : परिवार, मानवीय संबंध, सामाजिक परिवर्तन, संयुक्त परिवार, एकल परिवार, विवाह, लैंगिक समानता, डिजिटल समाज।

1. प्रस्तावना :

परिवार मानव समाज की सबसे प्राचीन सामाजिक संस्थाओं में से एक है। व्यक्ति का जन्म, पालन–पोषण, समाजीकरण तथा सांस्कृतिक मूल्यों का प्रारंभिक अधिग्रहण परिवार में ही होता है। भारतीय समाज में परिवार को केवल जैविक संबंधों का समूह न मानकर सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और भावनात्मक संस्था के रूप में देखा गया है।

भारतीय समाज में परंपरागत रूप से संयुक्त परिवार व्यवस्था का विशेष महत्व रहा है। संयुक्त परिवार में कई पीढ़ियाँ एक साथ निवास करती थीं और आर्थिक संसाधनों, घरेलू कार्यों, बच्चों के पालन–पोषण तथा

वृद्धजनों की देखभाल में सामूहिक भागीदारी होती थी। किंतु आधुनिकता की प्रक्रिया के साथ परिवार की संरचना में परिवर्तन दिखाई देने लगा है। नगरीकरण, औद्योगीकरण, शिक्षा, रोजगार, प्रवास और व्यक्तिगत आकांक्षाओं के विस्तार ने पारिवारिक संबंधों को नए रूप प्रदान किए हैं (Srinivas, 1966)।

Giddens (2017) के अनुसार आधुनिक समाज में व्यक्तिगत संबंधों का स्वरूप अधिक आत्मपरक एवं संवाद–आधारित होता जा रहा है। विवाह एवं परिवार अब केवल सामाजिक परंपराओं से निर्धारित नहीं होते, बल्कि व्यक्तिगत संतुष्टि, भावनात्मक निकटता और समानता भी महत्वपूर्ण आधार बन गए हैं।

2. परिवार की बदलती संरचना

2.1 संयुक्त परिवार से एकल परिवार की ओर :

भारतीय समाज में संयुक्त परिवार को लंबे समय तक आदर्श पारिवारिक व्यवस्था माना गया। संयुक्त परिवार में आर्थिक संसाधनों का सामूहिक उपयोग तथा विभिन्न पीढ़ियों के बीच सामाजिक एवं भावनात्मक सहयोग इसकी प्रमुख विशेषताएँ थीं।

आधुनिक परिस्थितियों में रोजगार और शिक्षा के लिए ग्रामीण क्षेत्रों से शहरी क्षेत्रों की ओर प्रवास बढ़ा है। इससे परिवार के सदस्य अलग–अलग स्थानों पर रहने लगे हैं। इसके परिणामस्वरूप एकल परिवारों की संख्या और महत्व में वृद्धि हुई है।

हालाँकि संयुक्त परिवार पूरी तरह समाप्त नहीं हुआ है। अनेक परिवारों में भौतिक रूप से अलग रहते हुए भी आर्थिक, सामाजिक और भावनात्मक संबंध कायम हैं। इस प्रकार परिवार की संरचना के साथ–साथ परिवार के संबंधों के स्वरूप में भी परिवर्तन हुआ है।

2.2 परिवार के आकार में परिवर्तन :

शिक्षा, स्वास्थ्य जागरूकता, परिवार नियोजन और बढ़ती जीवन–यापन लागत ने छोटे परिवार की अवधारणा को प्रोत्साहित किया है। National Family Health Survey के विभिन्न चरणों से भी भारत में प्रजनन व्यवहार और परिवार के आकार में दीर्घकालीन परिवर्तन दिखाई देते हैं (International Institute for Population Sciences [IIPS] & ICF, 2021)।

छोटे परिवार माता–पिता को बच्चों की शिक्षा, स्वास्थ्य और विकास पर अधिक संसाधन केंद्रित करने का अवसर प्रदान कर सकते हैं। दूसरी ओर, छोटे परिवारों में वृद्धजनों की देखभाल तथा बच्चों के सामाजिक समर्थन की जिम्मेदारी सीमित सदस्यों पर अधिक हो सकती है।

3. विवाह संस्था में परिवर्तन :

समकालीन समाज में विवाह के प्रति दृष्टिकोण में व्यापक परिवर्तन दिखाई देता है। पारंपरिक समाज में विवाह को परिवार और समुदाय द्वारा निर्धारित सामाजिक संस्था के रूप में देखा जाता था। आधुनिक समाज में व्यक्तिगत पसंद, शिक्षा, आर्थिक आत्मनिर्भरता और भावनात्मक अनुकूलता विवाह संबंधों के महत्वपूर्ण आधार बन रहे हैं।

Giddens (1992) ने आधुनिक समाज में अंतरंग संबंधों के बदलते स्वरूप को व्यक्तिगत चुनाव और भावनात्मक संतुष्टि से जोड़कर समझाया है। आज विवाह में पारस्परिक सम्मान, समानता और संवाद की अपेक्षा अधिक स्पष्ट दिखाई देती है।

विवाह की आयु में वृद्धि, जीवनसाथी के चयन में व्यक्तिगत निर्णय तथा विवाह और करियर के बीच संतुलन की आवश्यकता समकालीन युवा पीढ़ी के दृष्टिकोण में परिवर्तन को दर्शाती है।

4. महिलाओं की बदलती भूमिका :

महिलाओं की शिक्षा और रोजगार ने पारिवारिक संरचना को महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित किया है। पारंपरिक व्यवस्था में घरेलू श्रम को मुख्यतः महिलाओं की जिम्मेदारी माना जाता था। आधुनिक परिवार में महिला आर्थिक रूप से सक्रिय भूमिका निभा रही है।

महिलाओं की आर्थिक भागीदारी ने उनके निर्णय लेने के अधिकार तथा परिवार में उनकी स्थिति को मजबूत किया है। किंतु कई परिवारों में महिलाओं को रोजगार के साथ घरेलू कार्य और देखभाल की जिम्मेदारियाँ भी निभानी पड़ती हैं। इस स्थिति को दोहरे दायित्व या क्वनइसम ठनतकमद की समस्या के रूप में समझा जाता है।

इसलिए वास्तविक लैंगिक समानता के लिए केवल महिलाओं की रोजगार भागीदारी पर्याप्त नहीं हैय पुरुषों की घरेलू कार्यों और देखभाल में समान भागीदारी भी आवश्यक है।

5. माता-पिता और बच्चों के संबंधों में परिवर्तन :

परंपरागत परिवार में माता–पिता का बच्चों के जीवन संबंधी निर्णयों पर अपेक्षाकृत अधिक नियंत्रण था। आधुनिक समाज में बच्चों की शिक्षा, करियर तथा जीवनसाथी के चयन में उनकी व्यक्तिगत पसंद को अधिक महत्व मिलने लगा है।

पीढ़ीगत अंतर के कारण माता–पिता और बच्चों के बीच कभी–कभी विचारों का मतभेद उत्पन्न होता है। तकनीक, फैशन, करियर, विवाह और जीवनशैली के संबंध में अलग–अलग दृष्टिकोण पारिवारिक संवाद को प्रभावित कर सकते हैं।

इसके बावजूद यदि परिवार में खुला संवाद और पारस्परिक सम्मान हो, तो पीढ़ीगत अंतर को संघर्ष के बजाय सीखने और सहयोग के अवसर में बदला जा सकता है।

6. डिजिटल तकनीक और मानवीय संबंध :

इंटरनेट और सोशल मीडिया ने मानवीय संबंधों के स्वरूप में महत्वपूर्ण बदलाव किया है। मोबाइल फोन, वीडियो कॉल और सोशल नेटवर्किंग के माध्यम से दूर रहने वाले परिवारजन निरंतर संपर्क में रह सकते हैं।

Castells (2010) के अनुसार नेटवर्क समाज में संचार की तकनीक सामाजिक संबंधों के संगठन को प्रभावित करती है। डिजिटल माध्यमों ने भौगोलिक दूरी को कम किया है और सामाजिक संपर्क के नए अवसर पैदा किए हैं।

हालाँकि डिजिटल तकनीक के अत्यधिक उपयोग से आमने–सामने संवाद में कमी, परिवार के साझा समय में कमी तथा भावनात्मक दूरी जैसी समस्याएँ भी उत्पन्न हो सकती हैं। इसलिए डिजिटल तकनीक का प्रभाव उसके उपयोग के तरीके पर निर्भर करता है।

7. वृद्धजनों की स्थिति :

संयुक्त परिवारों के कमजोर होने और युवाओं के रोजगार हेतु प्रवास के कारण वृद्धजनों की पारिवारिक स्थिति में परिवर्तन आया है। कई वृद्धजन अपने बच्चों से अलग रहते हैं। इससे अकेलेपन और सामाजिक

अलगाव की समस्या उत्पन्न हो सकती है।

वृद्धजनों के लिए आर्थिक सुरक्षा के साथ–साथ भावनात्मक एवं सामाजिक सुरक्षा भी आवश्यक है। परिवार, समुदाय और राज्यकृतीनों की संयुक्त भूमिका वृद्धजनों के जीवन की गुणवत्ता सुधारने में महत्वपूर्ण है।

8. मानवीय संबंधों का बदलता स्वरूप :

मानवीय संबंधों में आज निम्नलिखित प्रमुख परिवर्तन देखे जा सकते हैं :

8.1 औपचारिकता से भावनात्मकता की ओर :

परिवार एवं विवाह संबंधों में केवल सामाजिक दायित्व की अपेक्षा भावनात्मक संतुष्टि और व्यक्तिगत समझ को अधिक महत्व दिया जा रहा है।

8.2 अधिकार एवं समानता का विस्तार :

महिलाओं और बच्चों के अधिकारों के प्रति जागरूकता बढ़ी है। परिवार में निर्णय लेने की प्रक्रिया अधिक सहभागी बनने की दिशा में बढ़ रही है।

8.3 व्यक्तिगत स्वतंत्रता :

व्यक्ति अब शिक्षा, रोजगार, विवाह और जीवनशैली से संबंधित निर्णयों में अधिक स्वायत्तता चाहता है।

8.4 डिजिटल संबंध :

सोशल मीडिया और डिजिटल संचार ने संबंधों को भौगोलिक सीमाओं से मुक्त किया है। लेकिन डिजिटल संबंध प्रत्यक्ष मानवीय संपर्क का पूर्ण विकल्प नहीं हैं।

9. बदलते पारिवारिक संबंधों के सकारात्मक प्रभाव :

समकालीन परिवार में परिवर्तन के अनेक सकारात्मक प्रभाव हैं :

- व्यक्तिगत स्वतंत्रता में वृद्धि।
- महिलाओं की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति में सुधार।
- पति–पत्नी के संबंधों में समानता की संभावना।
- बच्चों के व्यक्तिगत विकास पर अधिक ध्यान।
- पारिवारिक निर्णयों में सहभागिता।
- दूर रहने वाले परिवारजनों से निरंतर संपर्क।
- व्यक्तिगत अधिकारों एवं सम्मान के प्रति जागरूकता।

10. नकारात्मक प्रभाव :

परिवर्तन के साथ कुछ चुनौतियाँ भी सामने आई हैं :

- परिवार में भावनात्मक दूरी।
- वृद्धजनों के अकेलेपन की समस्या।
- कार्य एवं पारिवारिक जीवन में असंतुलन।
- पीढ़ीगत संघर्ष।
- डिजिटल माध्यमों पर अत्यधिक निर्भरता।
- वैवाहिक तनाव।

- बच्चों के पालन–पोषण की बढ़ती चुनौतियाँ।
- सामाजिक समर्थन के पारंपरिक स्रोतों में कमी।

11. समाजशास्त्रीय विश्लेषण :

परिवार में होने वाले परिवर्तन को विभिन्न समाजशास्त्रीय दृष्टिकोणों से समझा जा सकता है।

कार्यात्मकतावादी दृष्टिकोण परिवार को समाजीकरण, सामाजिक नियंत्रण, भावनात्मक सहयोग तथा सांस्कृतिक हस्तांतरण की संस्था मानता है (Macionis, 2018)।

संघर्षवादी दृष्टिकोण परिवार में सत्ता, संसाधनों और निर्णय लेने की असमानता पर ध्यान केंद्रित करता है। इस दृष्टिकोण से घरेलू श्रम एवं लैंगिक असमानता को समझा जा सकता है।

नारीवादी दृष्टिकोण परिवार में महिलाओं की स्थिति, घरेलू श्रम और लैंगिक सत्ता–संबंधों का विश्लेषण करता है। आधुनिक परिवार में लैंगिक समानता की बढ़ती माँग इसी विमर्श से जुड़ी है। उत्तर–आधुनिक दृष्टिकोण परिवार के किसी एक निश्चित स्वरूप को सार्वभौमिक मानने के बजाय परिवार की विविध संरचनाओं को स्वीकार करता है।

12. प्रमुख चुनौतियाँ :

समकालीन परिवार के सामने निम्न प्रमुख चुनौतियाँ हैं :

1. कार्य और पारिवारिक जीवन में संतुलन।
2. वृद्धजनों की देखभाल।
3. बच्चों के साथ पर्याप्त समय बिताना।
4. डिजिटल तकनीक का संतुलित उपयोग।
5. पति–पत्नी के बीच संवाद बनाए रखना।
6. घरेलू श्रम का समान वितरण।
7. पीढ़ियों के बीच संवाद एवं समझ विकसित करना।

13. सुझाव :

परिवार और मानवीय संबंधों को सुदृढ़ बनाने के लिए –

- परिवार में नियमित संवाद को बढ़ावा दिया जाए।
- घरेलू कार्यों का समान वितरण किया जाए।
- बच्चों और वृद्धजनों को पर्याप्त भावनात्मक समय दिया जाए।
- डिजिटल उपकरणों के संतुलित उपयोग को प्रोत्साहित किया जाए।
- परिवार में लैंगिक समानता और पारस्परिक सम्मान को महत्व दिया जाए।
- कार्यस्थलों पर परिवार–अनुकूल नीतियों को बढ़ावा दिया जाए।
- वृद्धजनों के लिए सामाजिक सुरक्षा एवं सामुदायिक सहयोग को मजबूत किया जाए।
- बदलते पारिवारिक स्वरूपों के प्रति सामाजिक सहिष्णुता विकसित की जाए।

14. निष्कर्ष :

समकालीन समाज में परिवार समाप्त नहीं हो रहा है, बल्कि उसका स्वरूप परिवर्तित हो रहा है। संयुक्त

परिवार से एकल परिवार, पारंपरिक लैंगिक भूमिकाओं से समानतापूर्ण भूमिकाओं तथा प्रत्यक्ष संचार से डिजिटल संचार की ओर परिवर्तन सामाजिक परिवर्तन की व्यापक प्रक्रिया का परिणाम है।

आधुनिक परिवार व्यक्ति को अधिक स्वतंत्रता, समानता और आत्मनिर्णय के अवसर प्रदान करता है। साथ ही, भावनात्मक दूरी, वृद्धजनों की देखभाल, पीढ़ीगत अंतर और कार्य–परिवार संतुलन जैसी चुनौतियाँ भी सामने आई हैं।

अतः समकालीन परिवार का मूल्यांकन केवल इस आधार पर नहीं किया जाना चाहिए कि वह संयुक्त है अथवा एकल। वास्तविक प्रश्न यह है कि परिवार अपने सदस्यों को प्रेम, सम्मान, सुरक्षा, समानता, संवाद और भावनात्मक सहयोग किस सीमा तक प्रदान करता है। भविष्य का परिवार अधिक विविध और लचीला हो सकता है, किंतु मानवीय संबंधों की गुणवत्ता उसकी सबसे महत्वपूर्ण विशेषता बनी रहेगी।

संदर्भ सूची (References) —

- Castells, M. (2010). The rise of the network society (2nd ed.). Wiley-Blackwell.
- Giddens, A. (1992). The transformation of intimacy: Sexuality, love and eroticism in modern societies. Stanford University Press.
- Giddens, A. (2017). Sociology (8th ed.). Polity Press.
- International Institute for Population Sciences, & ICF. (2021). National family health survey (NFHS-5), 2019–21: India report. International Institute for Population Sciences.
- Macionis, J. J. (2018). Sociology (17th ed.). Pearson.
- Ritzer, G. (2011). Sociological theory (8th ed.). McGraw-Hill.
- Sharma, K. L. (2019). Indian social structure and change. Rawat Publications.
- Srinivas, M. N. (1966). Social change in modern India. University of California Press.
- United Nations. (2020). World social report 2020: Inequality in a rapidly changing world. United Nations.
- United Nations Department of Economic and Social Affairs. (2020). World population ageing 2020 highlights. United Nations.

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED PRINT RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 14, Issue 7-8
पृष्ठ : 137–142

आधुनिक टोटम के रूप में राष्ट्रीय ध्वज : भारतीय तिरंगे के माध्यम से सामूहिक चेतना और राष्ट्र–निर्माण का समाजशास्त्रीय विश्लेषण

डॉ अंशु केडिया
प्राचार्या एवम प्रोफेसर समाजशास्त्र विभाग,
खुन खुन जी गर्ल्स पी जी कॉलेज, लखनऊ।

ध्वज किसी भी राष्ट्र या समाज का सबसे महत्वपूर्ण दृश्य प्रतीक है। यह सामूहिक पहचान, एकता, प्रेम, संप्रभुता, आत्म सम्मान, आत्म गौरव, राष्ट्रप्रेम और शौर्य का मूर्त रूप होता है। समाजशास्त्रीय दृष्टि से ध्वज केवल कपड़े का टुकड़ा नहीं, बल्कि सामूहिक चेतना (collective consciousness) का वाहक, कल्पित समुदाय (imagined community) का आधार और आधुनिक टोटम है। यह समाज के इतिहास, भूगोल, दर्शन और मूल्य व्यवस्था को प्रस्तुतीकरण है। इस शोध–पत्र में समाजशास्त्रीय प्रतीक विषयक अवधारणाओं के साथ भारतीय ध्वज के सामाजिक राष्ट्रवाद के निर्माण मे भूमिका का विश्लेषण किया गया है एवम् भारतीय तिरंगे के बनने के इतिहास को विशेष उदाहरण के रूप में लिया गया है।

मुख्य शब्द : सामूहिक पहचान, आत्म गौरव, तिरंगा, स्वतंत्रता, राष्ट्रवाद।

समाजशास्त्र (Sociology), मनोविज्ञान (Psychology), प्राणिविज्ञान (Zoology) आदि में 'लॉजी' (logy) शब्द वैज्ञानिक अध्ययन को दर्शाता है। इन्हीं विज्ञानों की भाँति एक और विज्ञान है वेक्सिलोलॉजी (Vexillology), जिसका अर्थ है ध्वज या बैनर का वैज्ञानिक अध्ययन।

'वेक्सिलोलॉजी' शब्द लैटिन भाषा के वेक्सिलम (vexillum) से बना है, जिसका अर्थ होता है ध्वज या बैनर (विशेष रूप से प्राचीन रोमन घुड़सवार सेना का मानक ध्वज), तथा ग्रीक भाषा के लॉजी (logia) से, जिसका अर्थ है वैज्ञानिक अध्ययन या शास्त्र।

इस प्रकार, वेक्सिलोलॉजी का पूर्ण अर्थ है – झंडों के इतिहास, प्रतीकवाद (symbolism), डिजाइन, प्रयोग, वर्गीकरण तथा उनके महत्व का वैज्ञानिक अध्ययन।

वेक्सिलोलॉजी सामान्य कक्षाओं में पढ़ाया जाने वाला विषय नहीं है, बल्कि यह एक स्वतंत्र शौक तथा अकादमिक विमर्श का विषय है।

अंतरराष्ट्रीय स्तर पर FIAV (International Federation of Vexillological Associations) जैसी संस्थाएँ

तथा विभिन्न राष्ट्रीय वेक्सिलोलॉजिकल संघ इस विषय पर नियमित रूप से सम्मेलनों, संगोष्ठियों और बैठकों का आयोजन करते हैं।

सैद्धांतिक आधार :

प्रसिद्ध समाजशास्त्री एमिल दुर्खीम के टोटम की अवधारणा मे ध्वज को आधुनिक टोटम के रूप में देखा जा सकता हैं।

दुर्खीम ने The Elementary Forms of Religious Life में टोटम की अवधारणा दी। टोटम एक प्रतीक होता है, जो एक साथ ईश्वर (पवित्र शक्ति) और समाज दोनों का प्रतिनिधित्व करता है।

आधुनिक राष्ट्र–राज्य में ध्वज ठीक यही भूमिका निभाता है :

यह सामूहिक प्रतिनिधित्व (collective representation) है। सीमा पर सैनिक "ध्वज के लिए" मरने को तैयार रहते है, क्योंकि ध्वज ही उसकी चेतना में देश बन जाता है।

ध्वज को अपमानित करना समाज को अपमानित करना माना जाता है।

बेंडिक्ट एंडरसन के अनुसार राष्ट्र "कल्पित राजनीतिक समुदाय" है। लोग कभी एक–दूसरे से नहीं मिलते, फिर भी वे स्वयं को एक ही समुदाय का सदस्य मानते हैं। ध्वज, राष्ट्रगान इसी कल्पना को मूर्त बनाते हैं। ध्वज राष्ट्र की सीमितता और संप्रभुता को दृश्य रूप में प्रस्तुत करता है।

इसी तरह प्रतीकात्मक अंतःक्रियावाद के अंतर्गत ध्वज महत्वपूर्ण प्रतीक है जो लोगों के बीच अर्थ और पहचान का निर्माण करता है।

सामाजिक पहचान सिद्धांत : ध्वज राष्ट्रीय पहचान को सक्रिय करता है और व्यक्ति को "हम" बनाता है।

एथ्नो–सिंबॉलिज्म (एंथनी स्मिथ) के अनुसार राष्ट्र जातीय मिथकों, स्मृतियों और प्रतीकों पर आधारित होते हैं। ध्वज इन प्रतीकों का केंद्रबिंदु है।

भारतीय तिरंगे के निर्माण का इतिहास और राष्ट्रवाद का विकास एक केस अध्ययन :

वेद, पुराण, रामायण, महाभारत आदि ऐतिहासिक, धार्मिक ग्रंथों मे झंडे के लिए केतु, ध्वज, अक्र जैसे शब्दों का प्रयोग मिलता है। बाद में पताका शब्द भी प्रचलित हुआ। युद्ध के दौरान शत्रु पक्ष द्वारा राजा के ध्वज को काटना उसकी पराजय या शक्ति के क्षय होने का स्पष्ट प्रतीक माना जाता था।

पुराणों में इन्द्रध्वज महोत्सव का उल्लेख है। देवताओं की विजय की कामना के लिए भगवान नारायण ने देवताओं को ध्वज भेंट किया था– यह अनेकों उदाहरणों में से एक है।

रामायण के अनुसार भगवान राम के सूर्यवंशी राजवंश के ध्वज पर सूर्य के साथ–साथ कोविदार वृक्ष का चिन्ह अंकित था। लंकापति रावण के ध्वज पर वीणा अथवा कपाल–मुंड का चिन्ह था, जबकि राजा जनक के ध्वज पर हल का चिन्ह अंकित रहता था। महाभारत में अर्जुन के रथ पर कपिध्वज (हनुमान का चिन्ह), दुर्योधन के रथ पर सर्प का चिन्ह और भीम के रथ पर सिंह का प्रतीक रहता था। पाणिनि के अष्टाध्यायी तथा महाजनपदों के सिक्कों व अन्य साक्ष्यों में भी अलग–अलग प्रतीक चिन्ह दिखाई देते हैं। सिकंदर के भारत अभियान के दौरान पोरस (पौरव) की सेना में हेराक्लस नामक प्रतीक चिन्ह लेकर सैनिक आगे बढ़ते थे। यूनानी इतिहासकारों ने हेराक्लस को बलराम अथवा कृष्ण से जोड़ा है। चाणक्य ने अर्थशास्त्र में लिखा है कि सेना में प्रतीक (ध्वज) लेकर आगे चलना चाहिए। यह सेना को जोड़कर रखता है और मनोबल बढ़ाता है। गुप्त काल में गरुड़ ध्वज शाही

प्रतीक था। मुगल काल में ध्वज को 'आलम' कहा जाता था। छत्रपति शिवाजी महाराज का भी केसरिया (भगवा) त्रिकोणी ध्वज हुआ करता था।

भारत में 1857 की बगावत के बाद एक साझा झंडे की आवश्यकता तीव्रता से महसूस की जाने लगी। अंग्रेजों के खिलाफ अलग–अलग रियासतें और नेता लड़ रहे थे– चाहे रानी लक्ष्मीबाई हों, तात्यां टोपे, बहादुर शाह जफर या अवध की बेगम हजरत महल, लेकिन ये सभी संघर्ष बिखरे हुए थे। उनके पास एक–दूसरे से जुड़ने और एक साझा पहचान बनाने के लिए कोई साझा प्रतीक चिन्ह नहीं था।

1858 में ईस्ट इंडिया कंपनी की समाप्ति के बाद शासन सीधे ब्रिटिश क्राउन के अधीन चला गया। अब यूनियन जैक के साथ स्टार ऑफ इंडिया का चिन्ह ब्रिटिश भारत का आधिकारिक प्रतीक बन गया। यह झंडा भारतीयों के लिए धीरे–धीरे अस्वीकार्य होता जा रहा था, क्योंकि यह ब्रिटेन का झंडा होने के कारण गुलामी और पराधीनता का अहसास कराता था।

इस बीच अलग–अलग छोटे–छोटे प्रयास हुए। बड़े प्रयासों में सबसे पहले 1904 में सिस्टर निवेदिता (स्वामी विवेकानंद की शिष्या) ने एक ध्वज तैयार किया। यह लाल रंग का ध्वज था, जिसमें पीले रंग का वज्र (इंद्र का अस्त्र) अंकित था। यह वज्र महर्षि दधीचि की हड्डियों से बना माना जाता है, इसलिए इसे त्याग और अजेय शक्ति का प्रतीक माना गया। ध्वज के एक ओर वंदे मातरम् लिखा हुआ था।

सिस्टर निवेदिता का मानना था कि भारत को अपनी जड़ों की ओर लौटना चाहिए। उनका यह ध्वज भारतीय राष्ट्रीय ध्वज की औपचारिक और वैचारिक शुरुआत का महत्वपूर्ण प्रतीक माना जाता है।

वर्ष 1906 में बंगाल के पारसी बागान चौक (जिसे वर्तमान में ग्रीन पार्क या ग्रीयर पार्क कहा जाता है) पर 7 अगस्त को एक जनसभा के दौरान भारत का पहला राष्ट्रीय झंडा फहराया गया। यह झंडा स्वदेशी आंदोलन और बंगाल विभाजन के विरोध की भावना से जुड़ा था। इसे सचिंद्र प्रसाद बोस और हेमचंद्र कानूनगो ने तैयार किया था। झंडे में तीन क्षैतिज पट्टियाँ थींकृऊपर लाल, बीच में पीला और सबसे नीचे हरा रंग। पीली पट्टी पर "वंदे मातरम्" लिखा था तथा नीचे हरी पट्टी पर सूरज और चाँद अंकित थे।

इसके ठीक एक वर्ष बाद, 22 अगस्त 1907 को जर्मनी के स्टटगार्ट में आयोजित अंतरराष्ट्रीय समाजवादी कांग्रेस में सभी देशों के प्रतिनिधि अपने–अपने राष्ट्रीय झंडे लेकर पहुँचे थे, लेकिन भारत का अपना कोई झंडा नहीं था। उस समय स्वतंत्रता सेनानी भीकाजी कामा ने विनायक दामोदर सावरकर और श्यामजी कृष्ण वर्मा के सहयोग से भारत का एक झंडा तैयार किया। यह झंडा 1906 के कलकत्ता झंडे पर आधारित था। इस झंडे में सबसे ऊपर हरा रंग था, जिसमें आठ कमल के फूल बने थे जो भारत के तत्कालीन आठ प्रांतों के प्रतीक थे। बीच में केसरिया रंग की पट्टी पर "वंदे मातरम्" लिखा गया था। सबसे नीचे लाल रंग की पट्टी पर सूर्य और चंद्र अंकित थे।

सम्मेलन में भीकाजी कामा ने यह झंडा फहराते हुए गर्व से कहा :

"ऐ संसार के कॉमरेड्स! देखो, यह भारत का झंडा है। यह भारत के लोगों का प्रतिनिधित्व करता है। इसे सलाम करो।"

यह घटना ऐतिहासिक रूप से महत्वपूर्ण है क्योंकि पहली बार किसी भारतीय झंडे को विदेशी भूमि पर फहराया गया था। भीकाजी कामा की इस साहसिक कार्रवाई ने अंतरराष्ट्रीय मंच पर भारत की स्वतंत्रता की

आकांक्षा को आवाज दी। होम रूल लीग आंदोलन शुरू किया। इन्होंने एक झंडा भी बनाया। झंडे में 5 लाल और 4 हरी पट्टियाँ थीं और ऊपर यूनियन जैक का निशान था। यह झंडा जानबूझकर ऐसा बनाया गया था। उस समय कनाडा और ऑस्ट्रेलिया जैसी डोमिनियन स्टेट की ही माँग थी, यानी ब्रिटिश साम्राज्य के अंदर स्वतंत्रता। इसलिए झंडे में यूनियन जैक रखा गया। लेकिन गरम दल के नेताओं ने इसका विरोध किया। उन्हें झंडे में ब्रिटिश झंडे का चिह्न पसंद नहीं आया।

आंध्र प्रदेश के मछलीपट्टनम में पिंगली वेंकैया ने 1916 से 1921 के बीच दुनिया के करीब 30 देशों के झंडों का अध्ययन किया और एक किताब लिखी जिसमें कई झंडों के डिजाइन थे। गांधी जी ने पिंगली वेंकैया को झंडा बनाने की जिम्मेदारी दी। वेंकैया जी ने लाल और हरा रंग का झंडा बनाकर 1921 में विजयवाड़ा के कांग्रेस अधिवेशन में पेश किया। गांधी जी ने इसमें सफेद रंग जोड़ने की बात कही, जो अन्य समुदायों और शांति–सत्य का प्रतीक था। उन्होंने चरखा भी जोड़ने को कहा। चरखा स्वावलंबन, आत्मनिर्भरता और गरीब बुनकरों की ताकत का प्रतीक था, जिसने मैनचेस्टर की मिलों को चुनौती दी थी। गांधी जी के लिए यह सिर्फ राजनीतिक झंडा नहीं, बल्कि नैतिक आंदोलन का प्रतीक था। 1923 के बाद स्वराज या कांग्रेस के इस तिरंगे को जिसमे ऊपर सफेद, बीच मे हरा और नीचे लाल रंग और बीच मे चरखा को लेकर लोग निकल पड़ते थे, इस झंडे को कई जगहों पर अवैध घोषित कर दिया गया। इसे लेकर चलना अपराध माना जाने लगा। पुलिस ने कई क्षेत्रों में झंडा लेकर जुलूस निकालने पर रोक लगा दी।

इसके विरोध में जबलपुर और नागपुर में झंडा सत्याग्रह शुरू हुआ। यह अहिंसक आंदोलन था। हजारों निहत्थे सत्याग्रही हाथ में तिरंगा लेकर पुलिस की लाठियाँ झेलते रहे। जमनालाल बजाज, सरदार पटेल और सुभद्रा कुमारी चौहान जैसे नेताओं ने इस आंदोलन को आगे बढ़ाया। इतिहासकार अरुंधती विरमानी इसे ध्वज का राष्ट्रीयकरण कहती हैं।

यही वह समय था जब तिरंगा सिर्फ एक सूती कपड़ा नहीं रह गया, बल्कि भारतीयों के आत्मसम्मान का प्रतीक बन गया। पुलिस झंडा छीन लेती तो लोग अपनी कमीज फाड़कर उससे झंडा बना लेते।

1931 में कांग्रेस के कराची अधिवेशन के बाद रंगों को लेकर चल रही सांप्रदायिक बहस खत्म की गई। पहले जो रंग धर्म से जोड़े जाते थे, उनके अर्थ बदल दिए गए। केसरिया रंग अब साहस और बलिदान का प्रतीक माना गया, सफेद रंग सत्य और शांति का, और हरा रंग विश्वास व उर्वरता का।

इतिहासकार श्रीरूपा रॉय अपनी लेख "A Symbol of Freedom" में लिखती हैं कि कैसे इस झंडे ने आगे चलकर राष्ट्रवाद को विजुअल पॉलिटिक्स में बदल दिया।

नीले रंग का चरखा अभी भी वहीं रहा। 1942 के भारत छोड़ो आंदोलन में इस झंडे ने पूरे देशवासियों में एकजुटता लाकर अंग्रेजों की सत्ता को कमजोर कर दिया। आंदोलन की शुरुआत में सभी मुख्य नेताओं की गिरफ्तारी के बाद अरुणा आसफ अली ने मुंबई के गोवालिया टैंक मैदान में झंडा फहराया। कई रेलवे स्टेशनों, कचहरियों और सरकारी इमारतों पर झंडा फहराने की कोशिश में पंद्रह–पंद्रह साल के युवक–युवतियाँ भी गोलियाँ खाकर शहीद हो गए। तिरंगा अब सिर्फ एक निशान नहीं रह गया था, बल्कि मौत को चुनौती देने वाली जिद बन चुका था।

1947 में जब देश आजाद हुआ तो भारत के झंडे को अंतिम स्वरूप देने का प्रयास शुरू हुआ, क्योंकि

अब तक तिरंगा कांग्रेस का झंडा था। डॉ. राजेंद्र प्रसाद की अध्यक्षता में एक झंडा समिति बनी। इसमें मौलाना अबुल कलाम आजाद, बी.आर. अंबेडकर, सी. राजगोपालाचारी, सरोजिनी नायडू आदि शामिल थे। नेहरू जी भी इससे जुड़े। बदरुद्दीन तय्यबजी (आईसीएस अधिकारी) ने समिति के काम में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। माना जाता है कि उनकी पत्नी सुरैया तय्यबजी ने चरखे की जगह अशोक चक्र की डिजाइन बनाई, जिसे समिति ने स्वीकार किया।

चरखे को लेकर समिति और गांधी जी के बीच विवाद गहरा गया। नेहरू जी का कहना था कि चक्र दोनों तरफ से एक जैसा दिखेगा, जबकि चरखा एक तरफ से सीधा और दूसरी तरफ से उल्टा दिखाई देता है। साथ ही अशोक चक्र अशोक महान के धम्म चक्र का प्रतीक था। यह न्याय, नैतिकता और प्राचीन भारतीय इतिहास–परंपरा को दर्शाता था। गांधी जी के लिए चरखा करोड़ों भारतीयों की धड़कन और गरीबों का हथियार था। उन्होंने साफ कहा कि अगर ध्वज से चरखा हटा दिया गया तो वे उसे सलाम भी नहीं करेंगे। भावनात्मक जुड़ाव बहुत गहरा था। अंत में नेहरू, मौलाना आजाद और अन्य नेताओं ने गांधी जी को समझाया कि यह चक्र भी गतिशीलता और प्रगति का प्रतीक है और चरखा के मूल भाव को बनाए रखता है। लंबी चर्चाओं के बाद 22 जुलाई 1947 को संविधान सभा ने इस नए स्वरूप को सर्वसम्मति से स्वीकार कर लिया।

डॉक्टर सर्वपल्ली राधाकृष्णन ने उस दिन ध्वज की व्याख्या दी। उन्होंने कहा कि केसरिया रंग वैराग्य और निःस्वार्थ सेवा का प्रतीक है। सफेद रंग प्रकाश और सत्य का मार्ग है। हरा रंग हमारी मिट्टी और वनस्पति से जुड़ाव दर्शाता है। चक्र के बारे में उन्होंने कहा कि यह धम्म का पहिया है। ठहरना मतलब मौत है और गतिशीलता ही जीवन है। भारत को निरंतर आगे बढ़ना है।

आजादी के बाद भारतीय ध्वज संहिता (Flag Code) और राष्ट्रीय गौरव की रक्षा से जुड़े प्रशासनिक नियमों के तहत आम जनता को अपने घरों या निजी संस्थानों पर राष्ट्रीय ध्वज फहराने की पाबंदी रखी गयी स इसका मुख्य कारण देश की संप्रभुता, पहचान, सामूहिकता, आत्म सम्मान के प्रतीक तिरंगे के सम्मान, उसकी गरिमा को बनाए रखना और उसके अपमान या व्यावसायिक दुरुपयोग को रोकना था।

उद्योगपति नवीन जिंदल ने अपने कारखाने के परिसर में राष्ट्रीय ध्वज फहराने का प्रयास किया तो प्रशासनिक अधिकारियों ने Flag Code of India का हवाला देकर उन्हें रोक दिया। इसके विरोध में उन्होंने आम नागरिकों को भी सम्मानपूर्वक तिरंगा फहराने का अधिकार दिलाने के लिए लगभग एक दशक तक कानूनी लड़ाई लड़ी। यह मामला दिल्ली उच्च न्यायालय से होते हुए सर्वोच्च न्यायालय तक पहुँचा। 23 जनवरी 2004 को सर्वोच्च न्यायालय ने ऐतिहासिक फैसला सुनाया कि सम्मान और गरिमा के साथ राष्ट्रीय ध्वज फहराना संविधान के अनुच्छेद 19(1)(क) के अंतर्गत प्रत्येक भारतीय नागरिक का मौलिक अधिकार है।

इस निर्णय के बाद तिरंगा धीरे–धीरे घरों की छतों, बालकनियों और हाथों का गौरव बन गया। दिसंबर 2021 में Flag Code में संशोधन कर मशीन से बने और पॉलिएस्टर के झंडों को भी अनुमति दी गई। इस बदलाव पर खादी और गांधीवादी मूल्यों के पक्षधरों तथा सरकार के बीच बहस हुई। कुछ लोग इसे गांधी जी की स्वदेशी भावना के विपरीत मानते हैं। फिर भी, 'हर घर तिरंगा' जैसे अभियान इसी व्यापक अधिकार और उपलब्धता के कारण संभव हो सके।

तिरंगा भारत की विविधता का जीवंत प्रतीक है। यह विभिन्न प्रांतों, धर्मों और भाषाओं को एक सूत्र में

पिरोकर रखता है। किंतु इसके प्रयोग के कुछ स्पष्ट नियम हैं। ध्वज को भूमि से स्पर्श नहीं कराना चाहिए, न ही उसे मेज या मंच पर बिछाया जा सकता है। इसे मूर्ति या स्मारक को ढकने, कमर से नीचे पहनने, तकिए या रूमाल के रूप में उपयोग करने की अनुमति नहीं है। ध्वज उल्टा नहीं होना चाहिए और न ही उसे डुबोया जा सकता है। फूलों की केवल पंखुड़ियाँ ही उस पर चढ़ाई जा सकती हैं।

निष्कर्ष :

भारतीय तिरंगे के निर्माण और विकास की यात्रा राष्ट्र के कल्पित समुदाय (imagined community) के निर्माण की प्रक्रिया है। 1906 के अनौपचारिक ध्वज से लेकर 1947 के अशोक चक्र युक्त तिरंगे और 2004 में नागरिकों को इसे फहराने का अधिकार मिलने तक, यह प्रतीक सामूहिक चेतना का वाहक बनता गया।

दुर्खीम की दृष्टि में तिरंगा आधुनिक भारत का टोटेम है, जो समाज की एकता और संप्रभुता का पवित्र प्रतीक है। सामूहिक उत्साह (collective effervescence) के क्षणों में 'स्वतंत्रता दिवस या हर घर तिरंगा जैसे अवसरों पर' यह व्यक्तिगत पहचान को राष्ट्रीय पहचान में रूपांतरित कर देता है। यह भारतीय नागरिक धर्म (civil religion) का केंद्र है तथा प्रतीकात्मक पूंजी का स्रोत भी। झंडा फहराने का अनुष्ठान व्यक्ति को सामान्य जीवन से निकालकर राष्ट्रीय समुदाय का हिस्सा बनाता है।

एंथनी स्मिथ के एथ्नो–सिंबॉलिज्म और उत्तर–औपनिवेशिक दृष्टिकोण से देखा जाए तो तिरंगा भारतीय सभ्यता की स्मृतियों, विविधता और औपनिवेशिक प्रतिरोध की विरासत को एक साथ समेटे हुए है। इस प्रकार तिरंगे का इतिहास केवल डिजाइन परिवर्तन नहीं, बल्कि आधुनिक भारतीय राष्ट्र की सामूहिक चेतना के निर्माण और सुदृढ़ीकरण की समाजशास्त्रीय प्रक्रिया है।

सन्दर्भ सूची :

- Anderson, Benedict. (1991). Imagined Communities: Reflections on the Origin and Spread of Nationalism (Revised Edition). London : Verso.
- दोषी, एस.एल. एवं जैन, पी.सी. (2017). इमाइल दुर्खीम (Emile Durkheim) : समाजशास्त्रीय अध्ययन. जयपुर : रावत पब्लिकेशन्स.
- Roy, Srirupa. (2006). 'A Symbol of Freedom' : The Indian Flag and the Transformations of Nationalism, 1906–2002. The Journal of Asian Studies, 65(3), 495–527. Cambridge University Press.
- ध्वज एवं राष्ट्रवाद।
- सिंह, के.वी. (2024). तिरंगे की गौरव गाथा. नई दिल्ली : प्रभात प्रकाशन.
- धामा, तेजपाल सिंह. (2019). हमारा राष्ट्रीय ध्वज तिरंगा. नई दिल्ली : पेंगुइन रैंडम हाउस इंडिया.
- हबीब, एस. इरफान (संपादक). भारतीय राष्ट्रवाद : एक अनिवार्य पाठ. नई दिल्ली।
- Union of India v. Naveen Jindal & Another, (2004) 2 SCC 510; AIR 2004 SC 1559. Supreme Court of India.
- Flag Code of India, 2002 (यथासंशोधित दिसंबर 2021). गृह मंत्रालय, भारत सरकार।

akedia43@yahoo.in

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED PRINT RESEARCH JOURNAL
Vol. 14, Issue 7-8
पृष्ठ : 143–154

Identification of the Buddha Footprint and the Kāṣāya-Robe Rock in the Mountain Spring Northeast of Gṛdhrakūṭa Vihāra : A Regional Archaeological Study in the Light of Xuanzang's Account

Lalan Kumar Singh
Researchers & Lecturer, Department of Geography
P.M.S. College, Bihar Sharif, Nalanda, Bihar
Prince Kumar
Researcher and Explorer, M.A in Ancient Indian History & Archaeology,
Patna University, Bihar.

Abstract :

Rajagṛha (modern Rajgir) has been an important centre of the political, religious, and cultural history of ancient Magadha. It holds particular significance in Buddhist tradition, as the Buddha spent several periods of his life at Rajagṛha and in the surrounding mountainous region and delivered numerous discourses there. Gṛdhrakūṭa Mountain occupies a particularly important position in the Buddhist tradition of Rajagṛha because of its association with the Buddha's residence and teachings. Xuanzang, the Chinese Buddhist pilgrim who travelled to India in the seventh century CE, provided detailed descriptions of Rajagṛha and several sites associated with the Buddha in and around the ancient city.

In his travel account, Si-Yu-Ki (The Records of the Western Regions), Xuanzang refers to a site situated northeast of Gṛdhrakūṭa Vihāra, in the middle of a mountain Spring.

According to the tradition recorded by him, a large and broad rock was located in or near the spring, on which the Buddha was believed to have dried his Kāṣāya robe. Near this rock was another rock bearing the footprint of the Buddha. The wheel markings on the footprint were described as indistinct or almost erased, although the

footprint itself remained clearly visible.

The present study is based on a regional field survey of two adjoining rocks located northeast of Gṛdhrakūṭa Vihāra. During a field survey conducted in September 2025, a footprint measuring approximately 9 inches in length was identified on the first rock. The rock has a perimeter of approximately 29 feet. Its east–west length is approximately 9 feet 2 inches, while its width varies from approximately 4 feet on the eastern side to 6 feet 9 inches on the western side. Its height also varies considerably in different directions. The adjoining second rock measures approximately 10 feet in length, 6 feet 5 inches in width, and approximately 1½ to 1¾ feet in thickness.

Of particular significance is the fact that both rocks are still situated within the central area of the mountain spring. A comparison of this geographical setting with Xuanzang's account reveals a notable correspondence. The reddish and fibre-like markings observed on the second rock may, on preliminary field inspection, be associated with natural mineralogical or geological processes.

This study examines the historical and archaeological potential of these two rocks on the basis of literary sources, field observations, topographical characteristics, and measured evidence. The study does not claim definitive identification without further scientific examination; rather, it proposes the site as a significant subject for archaeological, geological, and historical investigation.

Keywords : Rajagṛha, Gṛdhrakūṭa, Buddha Footprint, Kāṣāya Robe, Xuanzang,Magadha, Buddhist Archaeology, Vihāra, Rock, Rock Markings, Regional Survey, Mountain, Stūpa, Rajgir.

1. Introduction :

Rajgir, ancient Rajagṛha or Girivraja, occupies an exceptionally important position in the political, religious, and cultural history of ancient Magadha. Surrounded naturally by a series of hills, Rajgir possesses a distinctive geographical character that has contributed to its historical development since antiquity. It served as an important centre of the early political power of Magadha and subsequently functioned as the capital of Magadha before the rise of Pāṭaliputra.

The historical importance of Rajgir is deeply connected with the history of Buddhism. The Buddha visited Rajagṛha on numerous occasions, spent several rainy seasons there, resided in the surrounding mountainous areas, and delivered teachings to his followers. Gṛdhrakūṭa Mountain occupies a particularly significant position within the Buddhist traditions associated with Rajagṛha. Buddhist literature identifies it as one of the important places where the Buddha resided and delivered teachings.

The mountainous region of Rajgir contains numerous natural rocks, caves, springs, and ancient religious remains. Together, these natural and cultural elements created an important Buddhist sacred landscape. A number of local traditions associated with the Buddha appear to have remained connected with natural features of the landscape.

The travel accounts of Chinese Buddhist pilgrims are particularly valuable for understanding the historical and religious geography of Rajagṛha. Among these accounts, the record of Xuanzang, the seventh-century Chinese Buddhist pilgrim, is especially significant. He visited Rajgir and recorded numerous sites associated with the Buddha, along with the traditions that were prevalent concerning those places.

One description provided by Xuanzang is particularly important. According to his account, northeast of Gṛdhrakūṭa Vihāra, in the middle of a mountain spring, was a large and broad rock. According to local Buddhist tradition, the Buddha had dried his Kāṣāya robe upon this rock. On another rock nearby was a footprint attributed to the Buddha, with indistinct markings of a Dharma Wheel.

The present study examines two adjoining rocks located northeast of Gṛdhrakūṭa Mountain in the light of this literary description.

2. Objectives of the Study :

The principal objectives of this study are :

1. To examine the literary description of the site provided by Xuanzang. To document the regional field survey of the rock formations located northeast of Gṛdhrakūṭa Vihāra.
2. To provide the physical and measured description of the first rock bearing the Buddha footprint.
3. To examine the structure and surface markings of the adjoining second rock.
4. To assess the present geographical relationship of both rocks with the mountain spring.
5. To compare Xuanzang's literary description with the present physical evidence.
6. To understand the religious and symbolic significance of the Buddha footprint in Buddhist tradition.
7. To establish a preliminary basis for future archaeological and geological investigations.

3. Sources and Research Methodology :

The present study employs both primary and secondary sources. The principal literary source is Xuanzang's travel account. In addition, relevant Pāli literature, studies concerning the historical geography of Rajgir, and works on Buddhist archaeology have been consulted.

The most important primary evidence for this study is the regional field survey conducted by the researcher in September 2025. During the survey, the location, orientation, length, width, height, thickness, and visible rock markings of the two rocks were examined through direct field observation.

Measurements were recorded using feet and inches. The length and width of the footprint, together with its approximate depth, were also documented.

The study therefore combines textual analysis, geographical observation, field measurement, and preliminary visual examination. However, scientific laboratory analysis has not yet been undertaken. Accordingly, the proposed identification should be regarded as a research hypothesis rather than a definitive archaeological determination.

4. Xuanzang's Description of the Site :

Xuanzang's travel account describes a site located northeast of Gṛdhrakūṭa Vihāra, in the middle of a mountain spring. According to his account, a large and broad rock was situated in or near the spring. Buddhist tradition associated this rock with the Buddha, who was believed to have dried his Kāṣāya robe upon it.

Xuanzang further recorded that markings resembling the fibres of a garment could be seen on the rock. Near it was another rock bearing a footprint attributed to the Buddha. The markings of the Dharma Wheel on the footprint were described as indistinct.

Xuanzang also referred to a stūpa on a northern hill from which the Buddha was believed to have looked over the land of Magadha and preached the Dharma for seven days.

This description is important because it provides several geographical and archaeological clues simultaneously: Gṛdhrakūṭa Vihāra, the northeastern direction, a mountain spring, a large rock, a tradition concerning the Buddha's Kāṣāya robe, a nearby Buddha footprint, and a stūpa on a northern hill.

5. Regional Field Survey and Site Identification in September 2025 :

A regional field survey was conducted by the researcher in September 2025 in the northeastern area of Gṛdhrakūṭa Mountain and the associated mountain spring. During the survey, two significant adjoining rocks were identified.

The first rock bears a footprint-like marking on its upper surface, while the adjoining second rock is comparatively larger. A particularly noteworthy feature of both rocks is their present location within the central area of the mountain spring.

This geographical setting shows a significant correspondence with Xuanzang's description, which refers to a large rock in the middle of a mountain spring and a Buddha footprint on a nearby rock.

At present, from the remains of the ancient Gṛdhrakūṭa Vihāra situated on Grdhrakuta Mountain, a descending path proceeds northward and reaches a three-way junction. From this junction, one path proceeds eastward and another westward. Along the northern side of the junction flows the water of the mountain spring. For most of the year, the stream remains dry, while during the rainy season it carries water intermittently.

From this three-way junction, after walking approximately 20 steps eastward and then descending from the path and walking approximately 10 steps northward, the location of the two rocks and the spring can be observed.

Furthermore, from the spring, following the route eastward from the three-way junction and changing direction along the route, after travelling approximately 850 metres, the remains of a stūpa are found on a hilltop. This stūpa-bearing hill has been identified in the context of ancient Buddhist literature with Pratibhāna Kūṭa. The Chinese pilgrim Faxian also described this stūpa in his travel account. Xuanzang associated the stūpa with Emperor Aśoka.

The stūpa-bearing hilltop has a circumference of approximately 42 feet at the upper portion, while the circumference at the base is approximately 190 feet. The vertical distance from the base to the upper circumferential level near the diameter is approximately 29 feet. At the top is an external polished stone element. The bricks used in the stūpa, on the basis of preliminary observation, appear to range in antiquity from the Mauryan to the Gupta periods.

6. **Rock No. 1: The Buddha Footprint Rock**

The first major rock identified during the survey is situated towards the eastern side. A rock marking associated with a Buddha footprint is visible on its upper surface.

6.1 **Measurements of the Rock :**

The approximate perimeter of the rock is 29 feet.

Its east–west length is approximately 9 feet 2 inches.

Its width varies considerably :

Eastern side — approximately 4 feet

- Western side — approximately 6 feet 9 inches

Its height also varies in different directions :

- North — approximately 6 feet

- South — approximately 4 feet 7 inches

- West — approximately 3 feet 6 inches

- East — approximately 5 feet 2 inches

These measurements indicate that the rock is an irregular naturally formed boulder, with considerable variation in height and width from one side to another.

7. **Physical Description of the Buddha Footprint :**

A footprint-like marking measuring approximately 9 inches in length is present on the upper surface of the rock. In the context of Xuanzang's description, it may be associated with the footprint of the Buddha and appears, on preliminary observation, to represent a left foot.

The footprint is located slightly towards the eastern portion of the upper surface of the rock.

Its approximate width was recorded as follows :

- Near the heel — approximately 1½ inches
- Middle portion — approximately 3½ inches
- Near the toes — approximately 4 inches

The depth of the footprint has been estimated at approximately one sūta to half an inch in different portions. From the heel towards the big toe, the depth reaches approximately half an inch in some places.

The present condition, erosion, and surface morphology of the footprint require detailed scientific examination. The area appears to have remained surrounded by vegetation and mountain shrubs for a long period. The wheel marking is now indistinct; nevertheless, the general location and characteristics of the footprint appear to correspond closely with the description preserved by Xuanzang.

8. **Significance of the Buddha Footprint in Buddhism :**

The Buddha footprint, or Buddhapāda, constitutes an important symbol within Buddhist religious and artistic traditions. In early Buddhist art, instead of representing the Buddha in direct human form, his presence was often symbolically expressed through footprints, the Dharma Wheel, the Bodhi Tree, the empty throne, and the stūpa.

The Buddha footprint symbolically represents the presence of the Buddha, his path, and the memory of his teachings. The footprints are also associated symbolically with the

Buddha's physical journeys and the spread of his teachings.

In later Buddhist traditions, Buddha footprints are frequently accompanied by symbols such as the Dharma Wheel, lotus, and Triratna. Among these, the Dharma Wheel is particularly important as a symbol of the Buddha's teaching and the turning of the Wheel of Dharma.

Therefore, the presence of a footprint tradition associated with the Buddha on a rock may connect a particular location with Buddhist sacred memory and pilgrimage traditions. The footprint identified at the present site is worthy of examination within this broader religious and archaeological context.

However, attributing a footprint historically to the Buddha cannot be established solely on the basis of religious tradition. Archaeological, technological, chronological, and geological examinations would be required to determine whether the marking is natural, artificially modified, or historically created.

9. **Rock No. 2: The Rock Associated with the Kāṣāya Robe :**

Immediately adjoining Rock No. 1 is a second, larger rock. Its dimensions are as follows:

- Length — approximately 10 feet

- Width — approximately 6 feet 5 inches

- Thickness — approximately 1½ to 1¾ feet

Several reddish natural markings and fibre-like linear structures are visible on its surface.

The rock is of particular interest because Xuanzang described a rock associated with the tradition that the Buddha dried his Kāṣāya robe upon it. The present rock is similarly situated next to the footprint-bearing rock and within the mountain spring.

10. **Fibre-** Like Markings Observed on Rock No. 2 Some reddish and linear markings visible on the surface of the rock resemble fibres or threads when observed visually. Xuanzang's description similarly refers to markings resembling the fibres of a garment on the rock associated with the Buddha's Kāṣāya robe.

The present field study does not claim that these markings are actual surviving remains of an ancient Kāṣāya robe. On the basis of preliminary field observation, the reddish colour and linear structures may instead be related to natural geological structures or mineral deposits.

In mountainous rock formations, iron-bearing minerals and weathering processes can naturally produce reddish or ochre-coloured surfaces. Therefore, petrographic, mineralogical, and geochemical analyses are necessary to establish the actual nature of these markings.

Despite this caution, the visual similarity between the markings and the fibre-like marks described by Xuanzang makes the rock worthy of further scientific investigation.

11. **Comparative Study of the Mountain Spring, the Two Rocks, and Xuanzang's Description :**

Xuanzang's account provides several important clues for identifying the site:

1. The site was located northeast of the Vihāra.

2. It was situated in a mountainous region.

3. A mountain spring was present.

4. A large rock was situated in or near the spring.

5. The rock was associated with the tradition of the Buddha's Kāṣāya robe.

6. A Buddha footprint was located on a nearby rock.

7. A stūpa was situated on a northern hill.

The present regional survey likewise identified two adjoining rocks situated

within the mountain spring. The spatial relationship between the Buddha-footprint rock and the larger adjoining rock is particularly noteworthy.

Description in Xuanzang's Account	Present Regional Evidence
Site northeast of Gṛdhrakūṭa Vihāra	Site located in the northeastern sector of Gṛdhrakūṭa
Mountain spring	Mountain spring still present
Large rock in the spring	Two adjoining rocks located within the spring.
Rock associated with drying the Kāṣāya robe	Rock No. 2
Fibre-like markings	Reddish linear natural markings on Rock No. 2
Nearby Buddha footprint	Footprint-like marking on Rock No. 1
Stūpa on the northern hill	Stūpa remains identified on a nearby hilltop.

These correspondences provide an important basis for the hypothesis that the present site may preserve the location referred to in Xuanzang's account. Nevertheless, these similarities should not yet be regarded as conclusive archaeological proof. Further scientific investigation is required.

12. Historical and Archaeological Significance :

The two adjoining rocks located northeast of Gṛdhrakūṭa Mountain are potentially significant for understanding the Buddhist archaeological landscape of Rajgir. Their importance derives not merely from local religious tradition but from the apparent correspondence between the ancient literary description and the present topographical setting.

The first rock, bearing the footprint-like marking, relates to Buddhist sacred memory and symbolism, while the second rock provides a possible basis for examining the tradition associated with the Buddha's Kāṣāya robe.

The close relationship of both rocks with the mountain spring further enhances their archaeological significance.

Detailed scientific documentation of these features could contribute to a better understanding of the smaller and relatively less-discussed Buddhist sacred sites of Rajgir whose memories have survived through ancient travel accounts.

13. Conclusion :

The regional field survey conducted in September 2025 of two adjoining rocks located northeast of Gṛdhrakūṭa Mountain presents significant possibilities for reassessing the Buddhist archaeological geography of Rajgir.

The first rock, with an approximate perimeter of 29 feet and an east–west length of 9 feet 2 inches, exhibits considerable variation in height and width and represents a distinctive naturally formed rock formation. On its upper surface is a footprint-like marking measuring approximately 9 inches in length, with varying widths at the heel, middle, and toe regions.

The second adjoining rock measures approximately 10 feet in length, 6 feet 5 inches in width, and approximately 1½ to 1¾ feet in thickness. Reddish and fibre-like linear markings are visible on its surface. The present study considers the possibility

that these markings may have a natural mineralogical or geological origin; however, this hypothesis requires scientific verification.

The most significant comparative observation is that Xuanzang described a large rock associated with the Buddha's Kāṣāya robe in a mountain spring and another nearby rock bearing the Buddha's footprint. The present field survey likewise identified two adjoining rocks within the mountain spring in the northeastern sector of Gṛdhrakūṭa.

This geographical and descriptive correspondence provides an important basis for further investigation into the possible identification of the site described by Xuanzang.

The site therefore deserves systematic archaeological, geological, topographical, and conservation-oriented investigation. Scientific documentation, petrographic analysis, high-resolution 3D recording, GIS-based spatial analysis, and comparative study with Xuanzang's original Chinese account could help determine the historical significance and chronology of these features.

At the present stage, the identification should be treated as a provisional archaeological hypothesis, rather than a definitive identification. Nevertheless, the combination of literary evidence, geographical correspondence, physical measurements, and surviving rock markings makes the site an important subject for further research within the Buddhist cultural landscape of ancient Rajagṛha.

14. **Acknowledgements :**

The authors express their sincere gratitude to Xuanzang and other ancient Buddhist pilgrims and scholars whose travel accounts preserved valuable information concerning ancient Buddhist sacred sites. Their records have provided an important foundation for the modern identification and reassessment of historical Buddhist sites.

The authors also express special appreciation to Prince Kumar (Researcher and Explorer) for his significant contribution to the field survey, site identification, documentation, and preliminary assessment of the two rocks. His assistance in examining and measuring the difficult mountainous terrain and documenting the surrounding landscape was particularly valuable.

The authors further acknowledge the partial assistance of Alpana Kumari in understanding and interpreting the relevant literary materials and textual descriptions associated with the present study. Her contribution was limited to the literary aspect of the research and did not involve the field survey, site identification, or physical measurements.

The authors gratefully acknowledge the cooperation and participation of all those who contributed to the completion of this study.

15. References :

1. Xuanzang. (1972). Hiuen Tsang's Travels in India. First Edition. Translated by Thakur Prasad Sharma. Allahabad: Adarsh Hindi Pustakalaya, pp. 204–205.
2. Faxian. (2017). Faxian's Travels in India. First Edition. Translated by Thakur Prasad Sharma. New Delhi: Samyak Prakashan, 32/3, paschimi Puri, New Delhi.

3. Upadhyay, Bharat Singh. (2021). Buddha-Kālīna Bhāratīya Bhūgol [Geography of India in the Age of the Buddha]. First Edition. New Delhi: Samyak Prakashan.

4. Kumar, Anant. (1974). Buddhakālīn Rājgir [Rajgir in the Age of the Buddha]. First Edition. Patna: Bihar Hindi Granth Akademi.
5. Hiuen Tsing. (1884). Si-Yu-Ki: Buddhist Records of the Western World. Vol. II. Translated from the Chinese by Samuel Beal.

6. Kuraishi, M. H. (1956). Rajgir. 4th ed., revised by A. Ghosh. Delhi: Manager of Publications.
7. Field survey and site measurements conducted by the researchers in September 2025.



A

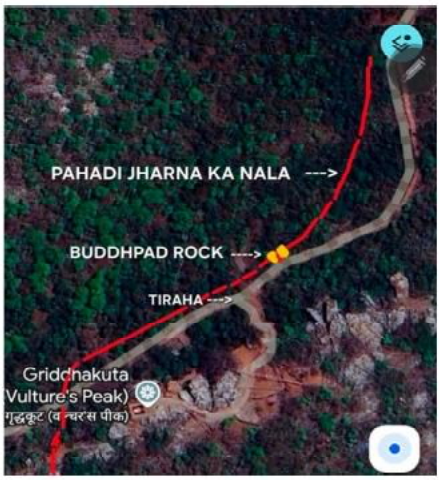


B

Archaeological remains of the Gridhrakuta Vihara, Gridhrakuta Hill, Rajagriha (Rajgir) : (a) Brick structural remains of the Vihara complex; (b) Remains of the Vihara and the surrounding natural mountain landscape.



Budh Pad Rock no.-1



Area of the mountain spring located northeast of Gṛdhrakūṭa/ Griddhakuta Vihāra, as described by Xuanzang in his travel account.



According to Xuanzang, this large flat rock was the place where the Buddha sunned his kāṣāya robe. Rock No.- 2







Buddha's footprint on a flat rock no.- 1







Flat rock bearing the footprint of the Buddha, located Rock No. -1 described by Xuanzang,
in the middle of the mountain spring, as described bearing an engraved footprint of the Buddha. by Xuanzang in his travel account.



Griddhakuta (Vulture's Peak), Rajgriha, Bihar.
Present view of the stūpa located on the summit of the hill north of the mountain spring described by Xuanzang.



Both researchers at the mountain spring (North East of Gridhakuta Vihara)
described by Xuanzang.

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED PRINT RESEARCH JOURNAL
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. 14, Issue 7-8
पृष्ठ : 155–157

यात्रा साहित्य में मिश्रजी का योगदान

डॉ. रोसी पी. वर्गीस
असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग,
कैथोलिकेट कॉलेज, पत्तनम्तिट्टा, केरल।

व्यक्ति आदिकाल से यात्राएँ करता चला आ रहा है। यात्री अपने यात्रावृत्तांतों को अपने संपर्क में आनेवाले लोगों को सुनाता रहा है। किंतु साहित्य में इनको लिखने की परम्परा नहीं दिखाई देती है। आधुनिक हिन्दी साहित्य में इस परम्परा की शुरुआत भारतेन्दु युग से मानी जाती है। भारतेन्दु ने सरयूपार की यात्रा, मेहंदावल की यात्रा आदि शीर्षकों से इन यात्राओं का रोचक वर्णन किया है। परिणामतः पिछले कुछ वर्षों में हिन्दी का यात्रा साहित्य और समृद्ध हुआ। हमारा संपर्क बढ़ा, हमारे साहित्यकार रूस, चीन, जापान, अफ्रीका और यूरोपीय देशों के साहित्यकारों में रूचि लेने लगे और यात्राएँ भी करने लगे। सांस्कृतिक यात्राएँ भी बढ़ी, विदेश भ्रमण भी कर आए। इसके फलस्वरूप यहाँ के रचनाकारों द्वारा यात्रा वृत्तान्त भी लिखे जाने लगे। उन रचनाकारों में सबसे प्रमुख है – डॉ. रामदरश मिश्र।

रामदरश मिश्र का यात्रा साहित्य हिंदी यात्रा–वृत्तांत की परंपरा में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। उनके यात्रा–वृत्तांतों में केवल स्थानों का वर्णन नहीं, बल्कि वहाँ के मनुष्य, समाज, संस्कृति, प्रकृति और जीवनानुभव का आत्मीय चित्रण मिलता है। स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी साहित्य में विशिष्ट पहचान बनाने के कारण मिश्रजी का महत्वपूर्ण स्थान है। उन्हें प्यार करनेवालों की संख्या निरंतर बढ़ती जा रही है। "रामदरश मिश्र गमले के फूल नहीं, एक खास जमीन में उगे हुए पेड़ हैं। जिनके फूलों की महक लोक–जीवन के साथ–साथ व्यक्ति जीवन लय के अन्वेषण में भी है।'[1] मिश्रजी ने हिन्दी साहित्य की प्रायः सभी विधाओं में लिखा है। गाँव में संबन्धों की जो सहजता होती है, वही उनके लेखन में झिलमिलाती है। मिश्रजी का जन्म उत्तरप्रदेश के डुमरी नामक गाँव में 15 अगस्त सन् 1924 ई. को हुआ। पाँच वर्ष की आयु में ग्रामीण पाठशाला में प्रवेश पानेवाले मिश्रजी सन् 1957 ई. को काशी हिन्दु विश्वविद्यालय से "हिन्दी आलोचना की प्रवृत्तियाँ और उनकी आधार–भूमि" पर पी. एच. डी. की उपाधी भी प्राप्त की। रचनाकार रामदरश मिश्रजी का व्यक्तित्व बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न है। ऐसे विशिष्ट व्यक्ति का व्यक्तित्व कमल की पंखुड़ियों के समान धीरे–धीरे खुलता है।

रामदरश मिश्र ने जिन स्थानों की यात्राएँ की है वहाँ से अपने अनुभव बटोरकर ले आये हैं। "देश हो या विदेश, गाँव हो या शहर जिंदगी के समीप गुजरती, यथार्थ से उपजी उनकी रचनाएँ मनुष्यता पर गहरा संवाद करती है।'[2] उनके यात्रावृत्तान्त दृश्यों का ऐसा बिम्ब प्रस्तुत करते हैं जो सहज ही उनके कवित्व का स्मरण भी कराता है। 'तना हुआ इन्द्रधनुष' (1989), 'भोर का सपना' (1993) और 'पड़ोस की खुशबु' (1998) उनके

यात्रानुभव को याद करानेवाली रचनाएँ हैं।

घुमक्कड़ी एक कला है। देशाटन करते हुए नये देशों में क्या देखा, क्या पाया, यह देखनेवाले पर निर्भर करता है। एक नजर होती है जिसके सामने देश भूगोल की किताब के नक्शे जैसे या रेल–जहाज के टाइम–टेबल जैसे बिछे रहते हैं, एक दूसरी होती है जिसके स्पर्श से देश एक प्राणवान प्रतिमा सा आपके सामने खड़ा होता है– आप उसकी बोली ही नहीं, हृदय की धड़कन सुन सकते हैं। 'एक बूँद सहसा उछली' के लेखक अज्ञेय देश में ही नहीं काल में भी यात्रा करते हैं। जो प्रदेश वह आपके सामने लाते हैं उसका सांस्कृतिक परिपाश्व आपकी आँखों के सामने रूप ले लेता है। उसी प्रकार जिस चरित्र को वह आपके सम्मुख खड़ा करता है उसकी चितवन में एक पूरे समाज के इतिहास की झांकी आपको मिल जाती है। लेखक संस्कार से भारतीय होने पर भी मानव जाति से जो तादात्म्य खोजता है, उसमें वह केवल एक संयोग है। यात्रावृत्तान्त में लेखक ने स्थलों और चेहरों की अविस्मरणीय झाँकियाँ दिखाई है।

मिश्रजी का 'तना हुआ इन्द्रधनुष' यात्रावृत्तान्त में यात्रा के वृत्तान्तों का चित्रण बहुत ही सरलता से किया गया है। कवि के रूप में हिन्दी साहित्य में प्रवेश करनेवाले मिश्रजी यात्रावृत्त भी सफलता पूर्वक लिखे हैं। इस साहित्यकार के योगदान के कारण वे हिन्दी साहित्य के बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न साहित्यिक के रूप में अपना विशेष स्थान निर्धारित कर चुके हैं। इस कृति में मिश्रजी की उत्तर कोरिया, चीन और रूस के यात्रा संस्मरण हैं, किन्तु केन्द्र में उत्तर कोरिया की यात्रा ही है। उत्तर कोरिया की सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक गतिविधियों की पहचान भी प्रस्तुत की है। साथ ही दूसरे देशों के माध्यम से अपने देश पर दृष्टि डालना भी लेखक का लक्ष्य रहा है। इसीलिए पुस्तक में स्थान–स्थान पर लेखकीय टिप्पणियों द्वारा उत्तर कोरिया और भारत के अनुभवों को परस्पर ताना गया है।

'भोर का सपना' नामक यात्रावृत्तान्त में डॉ. रामदरश मिश्र अपने कोरिया के शिष्य उनगूली के निमंत्रण पर कोरिया जाते हैं। लेखक यहाँ कहते हैं – "विश्वास है कि भोर का सपना सच होता है। मुझे लगा कि दक्षिण कोरिया भी भोर का सपना है। वह सपने की तरह मोहक है लेकिन यह मोहकता वायवीय नहीं है यथार्थ के भीतर से फूटी हुई है। यह सपने का यथार्थ है या यथार्थ का सपना, कहना कठिन है।'[3] उनगूली के घर मिश्रजी अपनी पत्नी के साथ पहुँचते हैं, तो उनगूली के परिवार के सदस्यों को भी अत्यधिक आनन्द हो जाता है। उनगूली के घर का वातावरण उत्सव–सा हो जाता है। जिससे भावुक मिश्रजी अनुभव करते हैं कि एक परदेशी गुरु के प्रति उनगूली जैसे शिष्य और उसके परिवारजनों में भाव का समुद्र उमड़ आया है। यात्रा संस्मरण में कोरिया को अनेक रूप में देखने का प्रयास किया गया है। जैसे वहाँ के गाँव, शहर, वहाँ की प्राकृतिक संपदा आदि का जिक्र भी संस्मरण में मिश्रजी ने किया है। कोरिया के सांस्कृतिक परिवेश को भी सूक्ष्मता से रेखांकित करना लेखक नहीं भूले।

अपने कोरियाई शिष्य श्री उनगूली के निमंत्रण पर दक्षिण कोरिया की यात्रा का अवसर मिश्रजी को मिला। जब विदेश यात्रा का संयोग बना तब दोनों ही बार कोरिया ने ही बुलाया। पहली बार का बुलावा उत्तरी कोरिया से आया तो दूसरी बार का बुलावा दक्षिणी कोरिया से आया। कोरिया से मिश्रजी का नाता पूर्वजन्म का लगता है। दूसरे बार उनके साथ उनकी पत्नी भी थी। जाने की तैयारी करते समय उन्हें पता चला कि उनके आलसी स्वभाव के कारण उनकी पासपोर्ट की अवधि बीत चुकी थी। नया पासपोर्ट बनाने में फिर कई महीने बीत गये।

बच्चों ने जब मिलकर कोशिश की तो पासपोर्ट जल्दी ही मिल गयी। उसके बाद ली ने वीसा–टिकट आदि का प्रबन्ध करवा दिया। इस प्रकार मिश्रजी अपने आलसी स्वभाव और न जाने की इच्छा के बावजूद कोरिया पहुँच गये।

यात्रा वृत्तान्तों में दृश्यों, परिस्थितियों, व्यक्तियों और आधुनिक टेकनिक के कारण अनेक विस्मयकारी परिदृश्यों एवं इनके प्रति लेखक की अनुकूल–प्रतिकूल प्रतिक्रियाओं को साथ–साथ पाठक अनुभव करता है। यात्रावृत्तों का प्रकाशन आज भी हो रहा है। अन्य विधाओं के समान यात्रा वृत्त भी आलोच्यकाल में पर्याप्त मात्रा में लिखा गया है। अज्ञेय की यूरोप यात्रा वृत्तान्त 'एक बूँद सहसा उछली' भी इस क्रम में पठनीय है। हिमांशु जोशी कृत 'यातना शिविर में' नामक पुस्तक अण्डमान की यात्रा पर इतिहास कथा शैली में लिखी गयी है। ''हिन्दी की सर्वप्रथम यात्रा पुस्तक श्रीमती इरदेवी की लिखी 'लंदन यात्रा' 1884 है।"[4] इसके बाद भास्करानन्द सरस्वती जी की 'बिलायत यात्रा' लिखी गयी है।

हम आखिर इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि मिश्रजी को परिवार के साथ यात्रा करना बहुत अच्छा लगता था। मिश्रजी अपना यात्रा विवरण पुस्तकों के माध्यम से पाठकों को सुना भी रहे हैं। हम कई लोगों के यात्रा वृत्तान्त पढ़ चुके हैं। इस प्रकार हमें कई स्थानों के बारे में जानकारी मिलती है। रामदरश मिश्र ने हिंदी यात्रा साहित्य को सहज भाषा, मानवीय संवेदना, सामाजिक यथार्थ, प्रकृति–चित्रण और कथा–रस प्रदान किया। राहुल सांकृत्यायन की यात्रा–परंपरा जहाँ ज्ञान–अन्वेषण और घुमक्कड़ी पर अधिक केंद्रित दिखाई देती है, वहीं रामदरश मिश्र के यात्रा–वृत्तांतों में मनुष्य और उसके जीवन से जुड़ी आत्मीय संवेदना विशेष रूप से उभरती है। इसी कारण उनका यात्रा साहित्य हिंदी की आधुनिक यात्रा–वृत्तांत परंपरा में अपना विशिष्ट स्थान रखता है।

संदर्भ ग्रंथ सूचि :

1. विमलकुमार – रचनाकार रामदरश मिश्र, पृ. 23
2. प्रो. मनहर के गोस्वामी – रामदरश मिश्र के उपन्यासों में नारी, पृ. 98
3. रामदरश मिश्र – 21 दिसम्बर 1992
4. डॉ. सुरेश माथुर – यात्रा साहित्य का उद्‌भव और विकास, पृ. 92

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED PRINT RESEARCH JOURNAL
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. 14, Issue 7-8
पृष्ठ : 158–162

सामाजिक परिवर्तन और राजनीतिक चेतना : समकालीन भारतीय समाज में सत्ता, पहचान और भागीदारी का समाजशास्त्रीय अध्ययन

डॉ. अर्चना गोदारा
सहायक आचार्य, समाजशास्त्र, राजकीय नेहरू मेमोरियल महाविद्यालय, हनुमानगढ़।
डॉ. अभिलाषा आबूसरिया
सह आचार्य, राजनीति विज्ञान, राजकीय कन्या महाविद्यालय, झुंझुनूं।

सार –

राजनीति को प्रायः चुनाव, सरकार, राजनीतिक दल और सत्ता परिवर्तन के संदर्भ में समझा जाता है, जबकि समाजशास्त्रीय दृष्टि से राजनीति का प्रभाव इससे कहीं व्यापक है। व्यक्ति किस सामाजिक समूह से जुड़ा है, उसकी पहचान क्या है, उसे अवसरों और संसाधनों तक कितनी पहुँच प्राप्त है तथा वह अपने अधिकारों को किस रूप में समझता है, इन सभी का संबंध उसके राजनीतिक व्यवहार से जुड़ता है। दूसरी ओर, राजनीतिक निर्णय भी सामाजिक संबंधों, अवसरों, पहचान और संसाधनों के वितरण को प्रभावित करते हैं। इस प्रकार सामाजिक परिवर्तन और राजनीतिक चेतना एक दूसरे से अलग प्रक्रियाएँ नहीं हैं।

समकालीन भारत में जाति, वर्ग, लिंग, शिक्षा, नगरीकरण, युवा आकांक्षाओं और डिजिटल संचार ने राजनीतिक चेतना के स्वरूप को प्रभावित किया है। राजनीतिक भागीदारी भी केवल मतदान तक सीमित नहीं रही है। सोशल मीडिया पर अभिव्यक्ति, जन अभियान, स्थानीय मुद्दों पर सामूहिक सक्रियता और विभिन्न समूहों द्वारा अपने अधिकारों की माँग इसके नए रूप हैं। प्रस्तुत आलेख इन्हीं परिवर्तनों को समाजशास्त्रीय दृष्टि से समझने का प्रयास करता है तथा यह प्रश्न उठाता है कि बदलते सामाजिक संबंध किस प्रकार राजनीतिक व्यवहार को प्रभावित कर रहे हैं और राजनीति स्वयं समाज को किस प्रकार पुनर्गठित कर रही है।

बीज शब्द : सामाजिक परिवर्तन, राजनीतिक चेतना, सत्ता, पहचान, राजनीतिक भागीदारी, भारतीय समाज।

प्रस्तावना –

किसी गाँव में पंचायत चुनाव के समय अचानक सक्रिय हो जाने वाले रिश्ते, शहर की किसी बस्ती में पानी की समस्या को लेकर लोगों का एक साथ खड़ा होना, किसी युवा का सोशल मीडिया पर राजनीतिक मुद्दे पर लगातार अपनी बात रखना या किसी महिला का पहली बार ग्रामसभा में बोलना, ये घटनाएँ देखने में अलग

अलग लग सकती हैं। लेकिन इनके भीतर एक समान बात छिपी है। लोग अपने सामाजिक अनुभवों को राजनीतिक अर्थ देने लगे हैं।

राजनीतिक चेतना का निर्माण केवल राजनीतिक दलों के प्रचार से नहीं होता। वह रोजमर्रा के जीवन में बनती है। जिस व्यक्ति को सरकारी कार्यालय में किसी सुविधा के लिए बार–बार चक्कर लगाने पड़ते हैं, जिस किसान को बाजार की कीमतों की चिंता है, जिस महिला को सार्वजनिक स्थान पर सुरक्षा का प्रश्न परेशान करता है या जिस युवा को रोजगार नहीं मिल रहा है, उनके व्यक्तिगत अनुभव धीरे–धीरे सार्वजनिक प्रश्न बन सकते हैं। यहीं से सामाजिक अनुभव और राजनीति के बीच संबंध दिखाई देता है।

भारतीय समाज में यह संबंध विशेष रूप से महत्वपूर्ण है क्योंकि यहाँ सामाजिक विविधता बहुत गहरी है। जाति, वर्ग, धर्म, भाषा, क्षेत्र, लिंग और ग्रामीण तथा शहरी अंतर व्यक्ति की सामाजिक स्थिति को प्रभावित करते हैं। लोकतांत्रिक राजनीति इन सामाजिक वास्तविकताओं से बाहर नहीं रह सकती। वह इन्हीं के बीच आकार लेती है और इन्हीं को प्रभावित भी करती है।

सामाजिक परिवर्तन से बदलती राजनीतिक चेतना –

सामाजिक परिवर्तन का अर्थ केवल आर्थिक विकास या तकनीकी प्रगति नहीं है। परिवार की संरचना में बदलाव, महिलाओं की शिक्षा, युवाओं की नई आकांक्षाएँ, ग्रामीण समाज में गतिशीलता, शहरों का विस्तार और संचार माध्यमों का प्रसार भी सामाजिक परिवर्तन के महत्वपूर्ण पक्ष हैं। इन परिवर्तनों ने व्यक्ति और सत्ता के संबंध को बदला है। पहले किसी सरकारी निर्णय की जानकारी प्राप्त करने के लिए सूचना के सीमित माध्यम थे। आज नागरिक सरकारी योजनाओं, नीतियों और सार्वजनिक बहसों के बारे में अपेक्षाकृत तेजी से जानकारी प्राप्त कर सकता है। इससे अपेक्षाएँ भी बढ़ी हैं।

अब नागरिक केवल यह नहीं पूछता कि सरकार क्या कर रही है, बल्कि यह भी पूछता है कि मेरे लिए क्या किया जा रहा है और क्यों नहीं किया जा रहा है। यहीं राजनीतिक चेतना का एक महत्वपूर्ण बदलाव दिखाई देता है। नागरिकता धीरे–धीरे केवल अधिकार प्राप्त करने की स्थिति न रहकर सवाल पूछने और जवाबदेही की अपेक्षा करने वाली स्थिति बन रही है।

यह परिवर्तन सभी सामाजिक समूहों में समान रूप से नहीं हुआ है। शिक्षा, आर्थिक स्थिति, डिजिटल पहुँच और सामाजिक संसाधनों की असमानता राजनीतिक जागरूकता और भागीदारी में भी अंतर पैदा करती है।

पहचान और राजनीति :–

भारतीय राजनीति को सामाजिक पहचान से अलग करके समझना कठिन है। जाति लंबे समय से सामाजिक संबंधों को प्रभावित करती रही है और लोकतांत्रिक राजनीति में भी उसका प्रभाव दिखाई देता है। लेकिन पहचान की राजनीति को केवल जातीय मतदान के रूप में देखना इसके व्यापक अर्थ को सीमित कर देता है। पहचान व्यक्ति को यह समझने में सहायता करती है कि वह समाज में कहाँ खड़ा है और उसके समूह की क्या अपेक्षाएँ हैं। जब किसी समूह को लगता है कि उसके साथ अवसरों या संसाधनों के वितरण में असमानता है, तो वह अपनी सामूहिक पहचान के आधार पर राजनीतिक माँग उठा सकता है।

यहीं पहचान राजनीति की शक्ति भी बनती है और उसकी सीमा भी। सामूहिक पहचान वंचित समूहों को आवाज दे सकती है, प्रतिनिधित्व बढ़ा सकती है और सत्ता के पुराने समीकरणों को चुनौती दे सकती है। लेकिन

यदि राजनीतिक पहचान केवल 'हम' और 'वे' के कठोर विभाजन में बदल जाए, तो सामाजिक दूरी भी बढ़ सकती है। इसलिए पहचान को न तो राजनीति की समस्या मात्र माना जा सकता है और न लोकतांत्रिक सशक्तिकरण का स्वतः प्रमाण। उसका सामाजिक संदर्भ समझना आवश्यक है।

सत्ता का बदलता स्वरूप :-

सत्ता को यदि केवल सरकार या राजनीतिक पद के रूप में देखा जाए तो सामाजिक जीवन में उसके अनेक रूप दिखाई नहीं देंगे। परिवार में निर्णय कौन लेता है, गाँव में किसकी बात अधिक सुनी जाती है, किसी संस्था में किसकी आवाज प्रभावशाली है और समाज में किस समूह को अधिक सम्मान प्राप्त है, ये सभी सत्ता के सामाजिक रूप हैं। समाजशास्त्रीय दृष्टि से सत्ता का प्रश्न इसलिए महत्वपूर्ण है क्योंकि राजनीतिक सत्ता अक्सर सामाजिक सत्ता से जुड़ी होती है। जिस समूह के पास आर्थिक संसाधन अधिक हैं, उसके पास राजनीतिक प्रभाव के अवसर भी अधिक हो सकते हैं। जिस समूह के पास शिक्षा और सामाजिक नेटवर्क हैं, वह प्रशासनिक और राजनीतिक संस्थाओं तक आसानी से पहुँच सकता है। इसके विपरीत कमजोर सामाजिक स्थिति राजनीतिक भागीदारी को सीमित कर सकती है।

इसलिए लोकतंत्र में केवल मतदान का अधिकार पर्याप्त नहीं है। यह भी देखना आवश्यक है कि किसकी आवाज निर्णय लेने की प्रक्रिया तक पहुँचती है और किसकी आवाज रास्ते में ही दब जाती है।

महिलाओं की राजनीतिक भागीदारी :-

महिलाओं की राजनीतिक भागीदारी सामाजिक परिवर्तन का महत्वपूर्ण संकेत है। स्थानीय निकायों में महिलाओं के प्रतिनिधित्व ने राजनीति को केवल सत्ता संस्थाओं में महिलाओं की उपस्थिति का प्रश्न नहीं रहने दिया, बल्कि घरेलू और सार्वजनिक भूमिकाओं के बीच संबंध पर भी प्रश्न खड़े किए हैं। कई ग्रामीण क्षेत्रों में निर्वाचित महिला प्रतिनिधि के सामने यह चुनौती रहती है कि पद उसका है, लेकिन निर्णयों पर प्रभाव किसी और का। दूसरी ओर ऐसी अनेक महिलाएँ भी हैं जिन्होंने स्थानीय राजनीति के माध्यम से सार्वजनिक जीवन में अपनी स्वतंत्र पहचान बनाई है।

इसलिए महिला राजनीतिक प्रतिनिधित्व को केवल संख्या के आधार पर मापना पर्याप्त नहीं है। वास्तविक प्रश्न यह है कि क्या महिला निर्णय ले रही है, अपनी बात रख रही है और अपने क्षेत्र की प्राथमिकताओं को राजनीतिक एजेंडे में ला पा रही है। महिलाओं की राजनीतिक भागीदारी तब अधिक अर्थपूर्ण होगी जब सार्वजनिक निर्णयों के साथ साथ परिवार के भीतर भी उनकी निर्णय क्षमता मजबूत होगी।

युवा और डिजिटल राजनीतिक चेतना :-

युवा पीढ़ी राजनीति को समझने और व्यक्त करने के लिए पारंपरिक माध्यमों के साथ डिजिटल माध्यमों का भी इस्तेमाल कर रही है। मोबाइल फोन और सोशल मीडिया ने राजनीतिक सूचना के प्रवाह को तेज किया है। अब राजनीतिक बहस केवल सभा या समाचारपत्र तक सीमित नहीं है। लेकिन डिजिटल राजनीतिक चेतना के साथ एक नई चुनौती भी आई है। सूचना की अधिकता हमेशा सही जानकारी की गारंटी नहीं देती। अधूरी जानकारी, अफवाह, भ्रामक सामग्री और भावनात्मक संदेश राजनीतिक धारणाओं को प्रभावित कर सकते हैं।

इसलिए डिजिटल सक्रियता और राजनीतिक चेतना को एक ही मान लेना उचित नहीं होगा। किसी मुद्दे पर पोस्ट करना राजनीतिक अभिव्यक्ति हो सकता है, लेकिन लोकतांत्रिक चेतना के लिए जानकारी की जाँच,

असहमति को स्वीकार करना और तर्क के आधार पर विचार बनाना भी आवश्यक है। आज का युवा राजनीति से उदासीन नहीं है। उसकी राजनीतिक भागीदारी का तरीका बदल रहा है।

सामाजिक वर्ग और राजनीतिक भागीदारी :-

राजनीतिक चेतना की चर्चा करते समय आर्थिक वर्ग की भूमिका को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। आर्थिक असुरक्षा व्यक्ति की राजनीतिक प्राथमिकताओं को प्रभावित करती है। रोजगार, महँगाई, शिक्षा, स्वास्थ्य, आवास और सामाजिक सुरक्षा जैसे प्रश्न अलग अलग वर्गों के लिए अलग महत्व रखते हैं। एक सम्पन्न परिवार के लिए किसी नीति का अर्थ निवेश या कर व्यवस्था से जुड़ा हो सकता है, जबकि निम्न आय वाले परिवार के लिए वही नीति राशन, रोजगार या शिक्षा की उपलब्धता से जुड़ी हो सकती है।

इसलिए राजनीतिक व्यवहार को केवल विचारधारा से समझना अधूरा होगा। व्यक्ति का सामाजिक और आर्थिक अनुभव उसके राजनीतिक निर्णयों को अर्थ देता है।

राजनीति समाज को भी बदलती है :-

संबंध केवल एक दिशा में नहीं चलता। समाज राजनीति को प्रभावित करता है, लेकिन राजनीति भी समाज को बदलती है। सरकारी नीतियाँ शिक्षा, रोजगार, सामाजिक सुरक्षा, आरक्षण, स्थानीय शासन और कल्याणकारी योजनाओं के माध्यम से सामाजिक अवसरों के वितरण को प्रभावित करती हैं। किसी नीति का प्रभाव केवल आर्थिक नहीं होता, वह सामाजिक संबंधों और समूहों की स्थिति को भी बदल सकता है। उदाहरण के लिए शिक्षा के विस्तार ने केवल रोजगार की संभावनाएँ नहीं बढ़ाईं, बल्कि उसने नई सामाजिक आकांक्षाएँ भी पैदा कीं। इसी तरह महिलाओं के लिए राजनीतिक प्रतिनिधित्व की व्यवस्था केवल सीटों की संख्या नहीं बदलती, बल्कि वह सार्वजनिक जीवन में महिला की सामाजिक छवि को भी प्रभावित करती है।

इस अर्थ में राजनीति समाज के बाहर खड़ी कोई संस्था नहीं है। वह समाज के भीतर काम करती है और धीरे–धीरे सामाजिक संबंधों को पुनर्गठित करती है।

भागीदारी का अर्थ केवल मतदान नहीं :-

लोकतंत्र की सफलता को अक्सर मतदान प्रतिशत से मापा जाता है। मतदान निस्संदेह राजनीतिक भागीदारी का महत्वपूर्ण रूप है, लेकिन नागरिक भागीदारी इससे कहीं बड़ी है। ग्रामसभा में प्रश्न पूछना, स्थानीय समस्या के लिए प्रशासन से संपर्क करना, किसी सामाजिक अभियान में भाग लेना, नीति पर सार्वजनिक चर्चा करना, शांतिपूर्ण विरोध करना या अपने समुदाय की समस्या को सार्वजनिक मंच तक पहुँचाना भी राजनीतिक भागीदारी के रूप हैं।

यहाँ एक महत्वपूर्ण बदलाव दिखाई देता है। राजनीति अब केवल 'नेताओं का काम' नहीं मानी जा रही है। नागरिक अपने रोजमर्रा के प्रश्नों को राजनीतिक प्रश्न में बदलने की क्षमता विकसित कर रहे हैं।

राजनीतिक चेतना की सीमाएँ :-

फिर भी राजनीतिक चेतना के विस्तार को लेकर बहुत आशावादी निष्कर्ष निकालना उचित नहीं होगा। सामाजिक असमानताएँ अभी भी राजनीतिक भागीदारी को प्रभावित करती हैं। सभी नागरिकों के पास समान समय, संसाधन, जानकारी और संस्थागत पहुँच नहीं है।

कई बार राजनीतिक चेतना भी पूर्वाग्रहों से मुक्त नहीं होती। जातीय, धार्मिक या क्षेत्रीय पहचान राजनीतिक

विचार को प्रभावित कर सकती है। सोशल मीडिया ने संवाद को बढ़ाया है, लेकिन कई बार वह समान विचार रखने वाले समूहों के भीतर बंद बहस भी पैदा करता है। इसलिए लोकतांत्रिक राजनीतिक चेतना का अर्थ केवल राजनीति में रुचि नहीं, बल्कि असहमति के साथ रहने की क्षमता भी है।

निष्कर्ष :-

समकालीन भारतीय समाज में सामाजिक परिवर्तन और राजनीतिक चेतना के बीच संबंध लगातार बदल रहा है। सामाजिक संरचनाएँ राजनीतिक व्यवहार को प्रभावित करती हैं, लेकिन राजनीतिक निर्णय भी सामाजिक संबंधों, अवसरों और पहचान को नया रूप देते हैं। यही कारण है कि राजनीति को केवल सत्ता परिवर्तन और चुनावी परिणामों तक सीमित करके देखना भारतीय समाज की जटिलताओं को समझने के लिए पर्याप्त नहीं है।

जाति, वर्ग, लिंग, शिक्षा, युवा आकांक्षाएँ और डिजिटल संचार, इन सभी ने राजनीतिक भागीदारी के स्वरूप को बदला है। नागरिक अब केवल मतदाता नहीं हैय वह सूचना प्राप्त करने वाला, प्रश्न करने वाला और अनेक स्तरों पर अपनी आवाज दर्ज कराने वाला सामाजिक व्यक्ति भी है। फिर भी राजनीतिक चेतना का विस्तार तभी लोकतांत्रिक शक्ति में बदल सकता है जब वह सामाजिक बराबरी और संवाद की संस्कृति से जुड़ा हो। केवल अपनी पहचान के लिए आवाज उठाना पर्याप्त नहीं है। दूसरे की पहचान और अधिकार को स्वीकार करना भी लोकतांत्रिक चेतना का हिस्सा है।

शायद आज भारतीय राजनीति के सामने सबसे बड़ा प्रश्न यह नहीं है कि कौन सत्ता में आएगा, बल्कि यह है कि सत्ता में आने के बाद समाज के किन वर्गों की आवाज सुनी जाएगी और किनकी नहीं। इसी प्रश्न के भीतर राजनीति का सामाजिक अर्थ छिपा है।

यहीं समाजशास्त्र राजनीति को देखने का एक अलग रास्ता देता है, सत्ता के केंद्र को देखने के साथ साथ उन लोगों को देखने का, जिनके जीवन पर उस सत्ता के निर्णय रोजमर्रा में असर डालते हैं।

संदर्भ सूची :-

- Beteille, André. 2002. Equality and Inequality: Theory and Practice. New Delhi: Oxford University Press.
- Chakravarti, Uma. 2003. Gendering Caste: Through a Feminist Lens. Calcutta: Stree.
- Giddens, Anthony. 2006. Sociology. Cambridge: Polity Press.
- Madan, G. R. 2011. Indian Social Problems. New Delhi: Allied Publishers.
- Srinivas, M. N. 1966. Social Change in Modern India. Berkeley: University of California Press.
- Tilly, Charles. 2007. Democracy. Cambridge: Cambridge University Press.
- Uberoi, Patricia, ed. 1997. Family, Kinship and Marriage in India. New Delhi: Oxford University Press.

ईमेल : archanamps@gmail.com

ईमेल : abhilasha.abusaria80@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED PRINT RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 14, Issue 7-8
पृष्ठ : 163–168

डॉ. मिथलेश अवस्थी की लघुकथा में कथ्यागत सौंदर्य

डॉ. मिनाक्षी सोनावणे
सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभागाध्यक्षा
एल ए डी और श्रीमाती आर पी महिला महाविद्यालय, शंकरनगर नागपूर, महाराष्ट्र.

प्रस्तावना :

हिंदी साहित्य बहुत ही विस्तृत और व्यापक है जिसमें विविध विधाओं का भंडार है इसमें पद्यात्मक – दोहा, चौपाई, कविता आदी तो गद्यात्मक – कहानी, उपन्यास, नाटक, एकांकी, संस्मरण, आत्मकथा आदी के साथ–साथ लघुकथा नामक विधा भी लिखी जा रही थी पर स्वयं साहित्यकार भी लघुकथा नाम से अनजाने थे, जिससे लघुकथा पाठकों तक भी परिचित नहीं थी किंतु लघुकथा आधुनिक साहित्य की एक अत्यंत लोकप्रिय और प्रभावशाली विधा है। आकार में लघु होने के बावजूद यह अपने भीतर एक विराट प्रभाव समेटे होती है। लघुकथा केवल 'छोटी कहानी' नहीं है, बल्कि यह जीवन के किसी एक मर्मस्पर्शी क्षण, विसंगति या सत्य को तीव्र प्रभाव के साथ अभिव्यक्त करने की कला रखती है। लघुकथा के इतिहास के बारे में देखा जाये तो कहा जा सकता है कि जहा कहानी, उपन्यास का विकास हुआ वही लघुकथा का विकास शुरू हो गया था पर उसे कहानी के रूप में ही ख्याती प्राप्त होने लगी, लघुकथा को आपने रूप में आने के लिए एक तप, एक संदर पार करना पड़ा यह आसान नहीं था, पर हिंदी साहित्यकारों की सृजनता ने लघुकथा के सौंदर्य को और अधिक प्रखर और प्रभावी रूप में रखने की कोशिश की और उसमें साहित्यकार सफल होते हुए दृष्टीगत होते है।

लघुकथा कथा परिवार की एक छोटी इकाई मानी जाती है जैसे विस्तृत और आपने आप में व्यापकता को अभिव्यक्त करनेवाली विधा उपन्यास कहलाई और इसका छोटा रूप कहानी कहलाई और कहानी से जो छोटा प्रारूप है वही तो लघुकथा है। साहित्य की यह विधा भी अन्य विधाओं की तरह मनुष्य और समाज को अच्छा बनाने के लिए लघुकथा विधा आगे आती हूई दिखाई देती है। कहानी की तरह विविध लघुकथा के विषय भी मनुष्य, पशु पक्षी, फुल पौधे, दिन–रात, आसमान – तारे साथ ही मनुष्य जीवन के हर पहलू को प्रखर और प्रभावित रखाने की कोशिश लघुकथा है।

लघुकथा का अर्थ और परिभाषा :

शब्दकोश और भाषा विज्ञान के दृष्टिकोण से 'लघुकथा' शब्द की निर्मिती और उसका व्याकरणिक विश्लेषण नीचे दिए गया है।

'लघुकथा' शब्द दो स्वतंत्र शब्दों के मेल से बना एक सामासिक शब्द है : लघु + कथा = लघुकथा, लघु एक विशेषण इसका अर्थ होता है छोटा, संक्षिप्त, कम आकार का, या अल्प। कथा (संज्ञा) : इसका अर्थ होता

है कहानी, वृत्तांत, या कोई आख्यान।

'हिंदी पर्यायवाची कोश में लघु शब्द को कनिष्ठ, छोटा, नन्हा, अल्प, कम थोडा आदी अर्थ बताये है'।[१]

१९४२ में बुद्धिनाथ झा 'भैरव' ने आपने 'साहित्य साधना की पृष्ठभूमि' के अंतर्गत लघुता शब्द का उल्लेख मिलता है। जिस में भैरव बताते है, की "प्राचीन भारतीय साहित्य में कथा कहानीयो में भी काव्यात्म का यथाविध समावेश कर दशकुमार– चरित, कांदम्बरी हर्ष चरित प्रभूत ग्रंथ लिखे गये किंतु अब पश्चिमी साहित्य प्रभाव से कहानीयों में लघुता (क्षिती प्रता अर्थात तेजी) लाना आवश्यक हो गया है।"[२]

अर्थात बहुत पहले से हिंदी साहित्य के अंतर्गत लघुकथा को लेकर जागरूक नजर आते है। जिस में विद्वानों ने लघुकथा शब्द को परिभाषित करने का प्रयास किया है।

विद्वानों के अनुसार परिभाषा :

हिंदी साहित्य में लघुकथा शब्द के उद्‌भव को देखते हुए विद्वानों ने लघुकथा को भी परिभाषित करने का प्रयास किया है कुछ इस तरह है :

नामवर सिंह : भारतीय लघुकथा ओं को पश्चात्य लघुकथाओं का पीछलग्गुसे नहीं मानते तथा हिंदी लघुकथाओं को निजत्व और विराट भावबोध से संपन्न मानते है'।[३]

अर्थात नामवर जी का मानना है कि यह लघुकथा पश्चात्य से अनुकरण की हुई विधा न होकर, लघुकथा हमारी खुद की निर्मित विधा है जिसमे हमारे ही भावबोध है।

डॉ. सतीशराज पुष्करणा : 'लघुकथा जीवन के किसी एक मार्मिक खंड या संवेदना को इस प्रकार प्रस्तुत करती है कि वह आकार में छोटी होते हुए भी अपने आप में पूर्ण हो और पाठक के मन पर एक गहरा प्रभाव छोड़े।'[४] अर्थात पुष्करणा जी का मानना है की लघुकथा जीवन के किसी एक खंड या संवेदना छोटे रूप में ही पाठको पर तीव्र प्रभाव छोडती है।

डॉ. मिथलेश अवस्थी : लेखक का मानना है की कथा लिखने कि बजाय लघुकथा लिखने में अधिक चुनौतियां होती है। बहुत कम साधन में 'बहुत कुछ' कहना होता है'[५] अर्थात अवस्थी जी का मानना है कि लघुकथा लेखन चुनौतीयों से भरा है पर कम से कम शब्दो में बहुत कुछ कहता है।

डॉ. मिथलेश अवस्थी का परिचय : मिथिलेश अवस्थी जी का जन्म स्थान ग्राम–गीदम, जिला– दंतेवाड़ा (छत्तीसगढ़) है। शिक्षा एम.ए. (हिन्दी, समाजशास्त्र), एम. फिल. (हिन्दी), पी–एच.डी. (हिन्दी) संप्रति सहयोगी आचार्य एवं अध्यक्ष (हिन्दी विभाग), डॉ. एम.डब्ल्यू.पी.डब्ल्यू.एस. कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय, कामठी मार्ग, नागपुर।

डॉ. मिथलेश अवस्थी के प्रकाशन – 1. इम्तहान रोज होते हैं (काव्य संग्रह), 2. चिन्तन के क्षण (विश्लेषण–विवेचन), 3. यशपाल के उपन्यासों में युग चेतना (शोध प्रबंध), 4. अहिन्दी भाषी और हिन्दी रंगमंच (लघु शोध प्रकल्प) विशेष संपादक मंडल द्वारा प्रकाशित ग्रंथ : 'डॉ. मिथिलेश अवस्थी : सृष्टि एवं दृष्टि'। प्रोफेसर डॉ. मिथिलेश अवस्थी के "कहा है नदी माई" लघुकथा संग्रह को विश्व हिंदी साहित्य परिषद द्वारा प्रकाशित किया गया। डॉ. मिथिलेश अवस्थी प्रखर कवि होने के साथ–साथ समर्थ आलोचक और लघुकथा के क्षेत्र में एक सशक्त हस्ताक्षर के रूप में जाने जाते हैं. सर जी के "कहा है नदी माई" इसी लघुकथा संग्रह की लघुकथाओं का कथ्यागत सौंदर्य को उजागर करने का प्रयास कर रही हूं।

डॉ. मिथिलेश अवस्थी इस पुस्तक कि प्रस्तावना में बताते है कि लघुकथा लेखन के विषय मुझे समाज, परिवार और मित्र मंडली से मिले है, सर जी ने यह भी बताया है कि हर दिन पढे जाने वाले समाचार पत्र कि खबरों ने भी मुझे झनझोर दिया जिससे मैने उन विषय पर भी लघुकथा रखी हैं। यात्रा के दौरा भी रेल में घटीत घटनाओं ने भी लघुकथा कि भूमी तयार कि'[६] मैने जब इस लघुकथा संग्रह को पढा तो मैं अनुभव किया कि सर जी के लघुकथा के पात्र चलते फिरते मनुष्य जो समाज में जीवन जिये जा रहे है और असंख्य समस्य से जूझ रहे है।

क) सामाजिक यथार्थ और विसंगतियाँ :

डॉ. मिथिलेश अवस्थी कि लघुकथा संग्रह "कहां है नदी मांई" में समाज के हर घटक के जीवन के हर पहलू को उभारने का प्रयास किया है। हमारा देश कितना भी क्यों न विकास कर ले पर आज भी गलत समाज (शगुन अपशगुन) अपनी जगह बनाये है 'अपशगुन कौन' लघुकथा के अंतर्गत छोटी बहु को कौआ स्पर्श कर लेता है तो घर में कोहराम मच जाता है कहते है – 'अब क्या होगा, न मालूम कीस अनर्थ का संकेत है ....., कौए का स्पर्श अपशगुन होता है .... वह भी नई बहु को'।[७]

लेखक की लघुकथा के अंतर्गत निम्नवर्ग को भी बखुबी से रखा गया है जिसमें 'एक थप्पड में एक थप्पड खाने पर दया के रूप में मिले पैसे बच्चा फिर लेखक से कहता है – 'साहब! एक थप्पड मिलेगा क्या?'[८] अर्थात समाज के ये वर्ग अब मजबूर है बेहाल जीवन जिने के लिए पैसे के लिए और मार खानी पडे तो चलेगा पर पैसा तो मिले।

'गुजारा' के अंतर्गत रखा गया है कि स्कूल से मिले कपडे, किताबे और स्कूल बैग पिता द्वारा बेच दिया गया है। बच्चे से शिक्षक जब ये पुछते है तो इस पर बच्चा कहता है – 'अब्बा लगातार बिमार रहते मैम .. और अम्मी कुछ कर नहीं पाती ... हम लोग रोज खान भी नहीं खाते मैम..... हप्ते में दो –तीन दिन घर में चुल्हा नहीं जलता।'[९]

यहां हम देख सकते है कि लेखक हर वर्ग को पास से अनुभव किया है और उनकी यथार्थ स्थिती को सार्थक रूप में रखने का प्रयास किया गया है।

मध्यम वर्ग को भी रखा है जहा 'दुआये' लघुकथा के अंतर्गत छोटी बच्ची सोनू दोनो पैर से अपाहीज भीख मांगते व्यक्ति को देखती है और पिता से कहती है 'पापा इसको कुछ पैसे दे दो ना ... ।'[१०]

इस पर पिताजी जल्दी चलने कहकर सोनू को टाल देते है पर पिता जी खाना खाने के उपरांत बिल के साथ ५० रुपया का नोट रखते है अर्थात जरुरत मद व्यक्ति को मदत नहीं करते।

ख) मानवीय संवेदना :

महानगरीय संस्कृति या आधुनिकता के कारण बिखरते संयुक्त परिवार, बुजुर्गों की उपेक्षा और रिश्तों में आती कड़वाहट/अकेलेपन को उन्होंने गहराई से उकेरा है।

आधुनिकता के शहरी तौर तरीकों को बखुबी से निभाते है लेखक ने इसके साथ ही 'सच्ची आधुनिकता' में दहेज जैसी कूरीती को तोडने का प्रयास किया है यहां शादी की बात चल रही है। शादी तैय होने पर वधू के पिता लेन देन क्या होगा या क्या देना होगा पर बात करता है तो वर के पिता कहते है – 'आपके घर में आपकी कन्या से अधिक किमती अगर कोई चीज हो तो दीजीये, अन्यथा .... बहु हि हमारा दहेज है'।[११]

एक ओर लोग शादियों में बडें–बडें दहेज कि मांग करते है आपने ही बेटे कि किंमत लगाते है वहीं लेखक

द्वारा दहेज जैसे प्रथा को तोंडने का प्रयास किया गया है। समाज कि हर विसंगती को रखने का प्रयास किया है। उनकी कहानियाँ समाज के मध्यवर्ग और निम्नवर्ग के संघर्षों को दिखाती हैं। जातिवाद, रूढ़िवादिता और सामाजिक ढोंग पर उनकी लघुकथाएँ तीव्र प्रहार करती हैं।

'भूख' इस लघुकथा के अंतर्गत एक व्यक्ती जोर जोर से कुछ बोल रहा था, देखते ही देखते भीड जमने लगी थी, किंतु उस कि कोई मदत नहीं कर रहा था तभी एक भिकमंगा आगे आता और रेल के नीचे पटरी से मोबाईल निकाल कर उस व्यक्ती के हात में रखा देता है, व्यक्ती दो पचास की नोटे उसे देता है किंतु वह भिकमंगा एक नोट रखकर एक नोट लौटा देता है और कहता है "अरे नहीं साहब! दो दिन से कुछ खाया नही था ..... इतने से पेट भर जाएगा"।[१२]

अर्थात समाज विदारक स्थिती है किंतु उसमें भी स्वाभिमानी, इमादार व्यक्ती भी है की जितने कि आवश्यकता है उतने ही ले अधिक की कामना न करे और लेखक ने इन दृश्यों को बहुत ही सार्थक रूप में चित्रित किया गया है।

बदलते रिश्ते :

'जहाज चला गया' के अंतर्गत विदेश में रहने वाला बेटा मां से मिलने बहुत दिन बाद आता है और कहता है, की मां आपकी बार आपको भी साथ विदेश ले कर जायेगा भोली भाली मां उसके झांसे में आ जाती है और घर बार जमीन सब बेचकर हवाई अड्डे की ओर निकल पडते है। बहु–बेटा और मां, वहां पहुंच कर मां को कहता है समान आंदर रखकर आता हुं और बहु–बेटा साथ चले जाते है। एक घंटा, दो घंटा बितता है और आसपास में हवाई अड्डे वाले कर्मचारी पूछताछ करने लगते है बेचारी एक ही बात कहती है कि सामान रखकर बेटा जहाज से विदेश लेकर जायेगा सुबह से शाम होने आई पर बेटा बहु नही लौटे और हवाई अड्डे के कर्मचारी "वह कह रहा था – अमरीका जाने वाला जहाज तो डेढ घंटे पहले चला गया ...।"[१३]

जहाज चला गया उसके बहु बेटा मां को झांसा देकार जमीन घर बेचकर पैसे लेकर मां को बेघर करके चले गये है। जिस बेटे को जन्म दिया पाला पोसा आज वही मां को अनाथ कर के चला गया मां विश्वास नाही कर पा रही है की मेरी परवरीश में क्या कमी थी याह लेखक बदलते रिश्तो को अंकित कर रहे है। बेटे मां के पवित्र रिश्ते भी तुटते नजर आ राहे है उन रिश्तो प्रस्तुत करने में लेखक सफल नजर आते है।

नारी त्याग की मूर्ती : डॉ. अवस्थी की लघुकथाओं में स्त्री चित्रण मिलता है। जिसमें गावं कि 'नाउन चाची' लघुकथा के अंतर्गत गावं के लागभाग सभी बच्चो के जन्म इन्ही के हाथों से माने जाते है। जन्म के वक्त कमजोर बच्चे नाउन चाची के हाथों से स्नेह से अच्छे हो जाते थे। इसे ही जब लेखक घर शहर से गावं लौट तब मां कहती नाउन चाची से मिल आन बहुत बिमार है जो बरसो गावं के बच्चो के स्वस्थ के लिये झुलसती रही आज वह मृत्यू की सय्या पर है। लेखक द्वारा परोपकारी महिला का सुंदर वर्णन मिलता है कहते है "ठिकई है बच्चा, बहुत कमजोर आ गई है, अब हाथ पाव उठाए नही उठत....।[१४]

'मेरा पेट भर गया' लघुकथा के अंतर्गत अस्पताल में भरती दादी नर्स से कहती है कि मुझे भूक लगी है कुच्छ देर में मुझे खिला देना और नर्स भी हमी भर देती है तभी घर से टिफिन आता है बच्चे वही दादी के पास बैठ कर खाना खाते है। उनके चेहरे पर कि तृप्ती देख जैसे दादी कि भी तृप्ती हो गई उसी समय नर्स आई बोली दादी दाल का पानी नाली से डालती हूं। तभी दादी कहती है "अम्मा ने हम तीनो की ओर देखते

हुए बहुत ही तृप्त भाव से कहा– मेरा तो पेट ही भर गया"।[१५]

अर्थात जिंदगी भर आपने बच्चो के दुख में दुखी और सुख में सूखी होने वाली नारी बिमारी से पिडीत है पार फिर भी आपने बच्चो कि भूख में उसे भी भूख लगी किंतु जैसे बच्चो कि तृप्ती हुई वैसे दादी कि भी भूख भाग गई।

'हार में जीत' इस लघुकथा के अंतर्गत प्रेरण बनकर शिक्षिका दिव्या हताश परेशान हुई छात्रा के जीवन में आशा की किरण बनकर आती है।

'घर इतना सजा क्यो है?' इस इस लघुकथा के अंतर्गत दादी आज घर अकेली है बहुए और बच्चे नानिहाल गये है। जिस से घर में हर वस्तू जहा कि वाह रखी है, जो सजा सजाया घर दादी को खल रहा है वह अस्त व्यस्त घर देखने की अब आदत बन गई है माता जी कहती है– "बच्चो के बिना अच्छा नहीं लगता है, घर इतना सजा क्यों है ? चीजे व्यवस्थित, जो दो दिन पहले जहां रखी थी आज भी वही है, इस तरह का घर देखने की आदत नहीं है मुझे ...। कहते हुए माता जी के आंखे भर आई"।[१६]

ईश्वर के प्रति आस्तिकता – डॉ. अवस्थी की लघुकथाओं में ईश्वर के प्रति आस्तिकता का वर्णन भी मिलता है। जिसमें 'आस्तिक' कथा के अंतर्गत सविता आन्टी कि चरित्र को अंकित किया जो छः महिने पहले आपने पति को खो चुकी है जो शांत नजर आती है, आज 22 साल के बेटे की सड़क दुर्घटना में चल बसा है पर सविता आन्टी आज भी शांत नजर आ रही है जब उनकी सहेलिया सांत्वना कर रही है तब सविता आन्टी कहती है "भगवान तो कभी कोई गलती नहीं करते ....., कहीं न कही गलती मेरी ही रही होगी ..."।[१७]

अर्थात जो कुछा हो रहा है उसके लिये ईश्वर को दोष नहीं देती स्वयं को दोषी मानती है।

'भोले के भरोसे' इस लघुकथा के अंतर्गत अमरनाथ जाने का दोस्त तैय करते है किंतु पत्नी संतोष से कहती है। आतंकवादियों ने धमकी दी है, जो मुझे कोरी नहीं लगती आप दोस्तो को ना कह दीजीये पर कुछ तैय नहीं हो पता तब पत्नी कहती है। श्रीनगर इकबाल को फोन कीजिये और पुछिये की वहा के हालत क्या है! अमरनाथ आने जैसे है, या नहीं तब फोन पर इकबाल को पूछा जाता है। उधार से जवाब आता है, भोले के भरोसे आना मेरे नहीं ईश्वर पर विश्वास हो तो हर तकलीफ में से ईश्वर बहार निकाल लायेंगे ये सुनते ही संतोष की पत्नी कहती है सबके लिये बाबा का प्रसाद लाना।

'कहां है नदी मांई' लघुकथ के अंतर्गत बाप्पा है जिनके साथ लेखक यात्रा कर रहे है, हर बार जब भी यात्रा को निकलते तो बप्पा कहते "कुछ छुट्टा जेब में रख लेना, रस्ता में जो भी माई परेगी, चढाना परेगा।"[१८] यहां ईश्वर की आस्था दिखाई देती है जिसमें नदी को माता का दर्जा दिया जाता है।

मूल संवेदना और विषयवस्तु – अवस्थी जी के लघुकथा के अंतर्गत पेड पौधों की पाठशाला, सभा साथ ही उनका वार्तालाप भी देखने मिलता है। 'जंगल और शहर' बताया गया है कि एक पाठशाला जिसके गुरुजी गरुड है, और वे पाठशाला में विद्यार्थीयों पक्षी है। गरुड गुरुजी सब से सवाल करते है – 'शहर और जंगल में क्या अंतर है?' ये सवाल सुनकर सब चिंता में पड़ गये बगुला कहता है गुरुजी "शहर में मनुष्य और मोटर गाडिया होती है जंगल में पेड पौधो कि भीड"।[१९]

निष्कर्ष रूप से कहा जा सकता है कि लघुकथा लेखन कार्य ये कहानी, उपन्यास के समय से ही मना जा सकता है। लघुकथा के बीज कहानी, उपन्यास से समय में ही हुआ अंकुरित आधुनिक युग में होता है जिसका

मुल भाव जीवन के किसी खंड के भाव को तीव्र एवं संवेदना को प्रवाभित रूप में अंकित करना रहा है जो सार्थक होता हुआ दिखाई देता है। डॉ. मिथलेश अवस्थी जी के 'कहां है नदी मांई' लघुकथा संग्रह कथ्यागत सौंदर्य अध्यायन करते हुये प्रति हुआ कि अवस्थी जी के पात्र सामन्य जीवन जिते, चलते फिरते रास्ते में जो मिले, आकर्षित किया और लेखक को मजबूर कर दिया की लेखक अपनी कलम से उनके चरित्र को उभारे जिसमें लेखक को सफलता हासिल होती हुई नजर आती है। लेखक ने सामाजिक जीवन के हर स्तर की व्यक्तिरेखा को प्रस्तुत किया है साथ ही लघुकथा की कथा प्रवाहमय शैली में गागर में सागर भरने का प्रयास सफल होता दिखाई देता है।

संदर्भ –

१. हिंदी पर्यायवाची कोश – डॉ भोलानाथ तिवारी, पृष्ठ क्र. ५३३
२. बुद्धिनाथ झा 'भैरव' ने आपने 'साहित्य साधना की पृष्ठभूमि' पृष्ठ क्र. १६४ प्रकाशन ज्ञानपीठ लिमिटेड, पटना १
३. चलें नीड कि ओर – लघुकथा संकलन – संपादक कांता रॉय, लघुकथा शोध केंद्र भोपाल (म.प्र.) पृष्ठ क्र. १४
४. हिंदी लघुकथा का इतिहास – डॉ. सतीशराज पुष्करणा।
५. "कहा है नदी माई" – डॉ मिथिलेश अवस्थी, प्रस्तावना से।
६. "कहा है नदी माई" – डॉ मिथिलेश अवस्थी, प्रस्तावना से।
७. अपशगुन कौन– "कहा है नदी माई"– डॉ मिथिलेश अवस्थी, पृष्ठ क्र. २३
८. "कहा है नदी माई"– डॉ मिथिलेश अवस्थी एक थप्पड मिलेगा क्या? पृष्ठ क्र. ११
९. "कहा है नदी माई –'गुजारा' पृष्ठ क्र. २६
१०. वही 'दुआये' पृष्ठ क्र. १२
११. वही 'सच्ची आधुनिकता' पृष्ठ क्र. ३०
१२. वही, भूख, पृष्ठ क्र. १७
१३. वही, जहाज चला गया' पृष्ठ क्र. ३६
१४. वही 'नाउन चाची' पृष्ठ क्र. ८७
१५. वही 'मेरा पेट भर गया' पृष्ठ क्र. ३४
१६. वही 'घर इतना सजा क्यो है?' पृष्ठ क्र. ५१
१७. वही 'आस्तिक' पृष्ठ क्र. ५३
१८. वही 'कहां है नदी मांई' पृष्ठ क्र. २१
१९. वही 'जंगल और शहर' पृष्ठ क्र. २७

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED PRINT RESEARCH JOURNAL
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. 14, Issue 7-8
पृष्ठ : 169–178

पंचायती राज व्यवस्था में अनुसूचित जाति की महिला जन प्रतिनिधि की भूमिका का विश्लेषणात्मक अध्ययन (सतना जिले के विशेष संदर्भ में)

डॉ. रश्मि पाण्डेय

सारांश :–

भारत गांवों का देश है। गॉवों की उन्नति और प्रगति पर ही भारत की उन्नति प्रगति निर्भर करती है। गॉधी जी ने ठीक कहा था कि ''यदि गॉव नष्ट होते है तो भारत नष्ट हो जाएगा।'' भारत कें संविधान–निर्माता भी इस तथ्य से भली–भांति परिचित थे। अतः हमारी स्वाधीनता को साकार करने और उसे स्थायी बनाने के लिए ग्रामीण शासन व्यवस्था की ओर पर्याप्त ध्यान दिया गया। हमारे संविधान में यह निर्देश दिया गया है कि ''राज्य ग्राम पंचायतों के निर्माण के लिए कदम उठाएगा और उन्हें इतनी शक्ति और अधिकार प्रदान करेगा जिससे कि वे (ग्राम पंचायत) स्वशासन की इकाई के रूप में कार्य कर सकें।''

पंचायत राज का क्रियान्वयन एवं ग्रामीण महिला नेतृत्व का यह अध्ययन स्पष्ट करता है कि नेतृत्व की सामाजिक आर्थिक स्थिति कमोवेश अनुसूचित जन जाति वर्ग की तरह ही औसतन निम्न स्तर की है। ग्रामीण सामाजिक संरचना में परम्परागत रूप से निम्न स्थिति प्राप्त इस वर्ग की महिलाओं को नेतृत्व करने का यह प्रथम अवसर प्राप्त हुआ है।

पंचायत राज्य की बहुविविध गतिविधियों में ग्रामीण महिला वर्ग के नेतृत्व की स्थिति प्रशिक्षणार्थी के समान रही है। अशिक्षा, कमजोर सामाजिक आर्थिक पृष्ठ भूमि कार्य के औपचारिक अनुभव का अभाव जैसे कारणों से इन नेतृत्व में कई महत्वपूर्ण प्रावधानों के प्रति अनभिज्ञता दिखाई दी। इसके बावजूद ग्रामीण विकास पंचायत की समस्याएं अनुसूचित जन जाति वर्ग उत्थान जैसे विषयों पर इस नेतृत्व ने स्पष्ट विचार व्यक्त किए।

मुख्य शब्द :– पंचायतीराज, ग्रामीण विकास, महिला नेतृत्व।

प्रस्तावना :–

भारत में ग्राम पंचायतों का इतिहास बहुत पुराना है। प्राचीन काल में आपसी झगड़ों का फैसला पंचायतें ही करती थीं। परन्तु अंग्रेजी राज में जमाने में पंचायतें धीरे–धीरे समाप्त हो गयीं और सब काम प्रान्तीय सरकारें करने लगी। स्वाधीनता प्राप्ति के बाद राज्यों की सरकारों ने पंचायतों की स्थापना की ओर विशेष ध्यान दिया। प्रो0 रजनी कोठारी के अनुसार, ''राष्ट्रीय नेतृत्व का एक दूरदर्शितापूर्ण कार्य था पंचायती राज की स्थापना। इसमें

भारतीय राज व्यवस्था का विकेन्द्रीकरण हो रहा है और देश में एक सी स्थानीय संस्था के निर्माण से उसकी एकता भी बढ़ रही है।''[1] इसकी शुरूआत का श्रेय श्री जवाहर लाल नेहरू को है। पं. नेहरू का कहना था कि[2] ''गॉवों के लोगों को अधिकार सौंपना चाहिए। उनको काम करने दो चाहें वे हजारों गलतियॉ करें। इससे घबराने की जरूरत नहीं। पंचायतों को अधिकार दो।''

वस्तुतः हमारा जनतंत्र इस बुनियादी धारणा पर आधारित है कि शासन के प्रत्येक स्तर पर जनता अधिक से अधिक शासन कार्यो में हाथ बंटाए और अपने पर, राज करनेकी जिम्मेदारी स्वयं झेले। भारत में जनतंत्र का भविष्य इस बात पर निर्भर करता है कि ग्रामीण जनों का शासन से कितना अधिक प्रत्यक्ष और सजीव सम्पर्क स्थापित हो जाता है? दूसरे शब्दों में, ग्रामीण भारत के लिए पंचायती राज ही एकमात्र उपयुक्त योजना है। पंचायतें ही हमारे राष्ट्रीय जीवन की रीढ़ है। दिल्ली की संसद में कितने ही बड़े आदमी बैठें। लेकिन असल में 'पंचायतें' ही भारत की चाल बनाएंगी।

पण्डित जवाहर लाल नेहरू ने ठीक ही कहा था कि ''यदि हमारी स्वाधीनता को जनता की आवाज की प्रतिध्वनि बनना है तो पंचायतों को जितनी अधिक शक्ति मिले, जनता के लिए उतनी ही भली है।

ग्रामीण महिला नेतृत्व ने पंयाचत राज क्रियान्वयन में कहीं बहुत प्रभावकारी तो कहीं सामान्य भूमिका निभाई है। परम्परागत रूप से अप्रतिनिधित्व प्राप्त इस वर्ग की कार्य के माध्यम से प्रशिक्षण की प्रक्रिया पिछले चालू वर्षो से सतत् जारी है। क्रियान्वयन को अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए इस नेतृत्व के लिये विकेन्द्रीकरण की मूल अवधारणा को समझते हुए गंभीर प्रयास किए जाने की आवश्यकता है।

ग्राम पंचायत त्रिस्तरीय पंचायत राज व्यवस्था की सबसे निम्नतम स्तर की इकाई है। ग्रामीण क्षेत्रों में कार्य करने की सीधी जिम्मेदारी ग्राम पंचायतों की है। ग्राम पंचायत में स्वशासन से जुड़े सभी महत्वपूर्ण कार्य सम्पादित होते है। ऐसे में सरपंच की ग्राम पंचायत के प्रमुख के नाते केन्द्रीय एवं महत्वपूर्ण भूमिका होती है। मध्य प्रदेश शासन ने पंचायतों को स्थानीय स्व शासन की स्वतंत्र इकाईयॉ बनाने के उद्देश्य से बहुविविध कार्यो, अधिकारों कर्तव्यों एवं शक्तियों को पंचायतों को प्रदान किया गया है। ग्राम पंचायतों की वैविध्यपूर्ण भूमिका के सन्दर्भ में अनुसूचित जाति महिला सरपंचों से जानकारी प्राप्त की गई।

भारत में अनुसूचित जाति के महिलाओं की स्थिति काफी दयनीय है गरीबी की मार महिलाओं पर अधिक सीधी और तीखी है। भारतीय महिलायें परिवार के भरण पोषण के लिये जिम्मेदार ठहराई जाती है। अनुसूचित जाति महिला में रचनात्मकता होती है साथ ही साथ वे अपनी मदद स्वंय करने की उत्सुक होती हैं। एक सी पृष्ठभूमि बड़ी से बड़ी समस्या का समाधान करने में समर्थ है, इस भावना को समझ कर सरकार ने पंचायतीराज व्यवस्था का निर्माण किया, इसके अन्तर्गत वर्तमान समय में विभिन्न उत्पादक गति विधियों का संसाधन कर रहा है। इसमें ग्रामीण महिलायें विशेष कर पिछड़ी जाति अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जाति की महिलाओं का आर्थिक उत्थान हुआ है ये आज अपने परिवार की जिम्मेदारी को बखूवी से निभाने में सफल हुई है एवं आत्मनिर्भर हुई। सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक दुर्बलताओं का सर्वाधिक प्रभाव महिलाओं पर होता है भारतीय संदर्भ में यदि देखा जाये तो पिछड़े क्षेत्रों के ग्रामीण व श्रमिक बाहुल्य परिदृश्य में अनुसूचित जाति/जनजातीय महिलाओं की स्थिति बहुत ही दयनीय है। अशिक्षा, कुपोषण, काम का बोझ तथा आर्थिक विषमताओं के फलस्वरूप होने की संभावना के विषम में सोचना भी कठिन हो गया है।

मध्य प्रदेश में त्रि–स्तरीय पंचायत राज व्यवस्था है जिसमें 48 जिला पंचायतें, 313 जनपद पंचायतें एवं 23051 ग्राम पंचायतें हैं। 73वें संविधान संशोधन अधिनियम के अनुरूप मध्य प्रदेश में एक तिहाई स्थान महिलाओं हेतु आरक्षित किए गए हैं। महिलाएँ कुल 33.86 प्रतिशत स्थानों पर निर्वाचित हुई हैं। यदि महिलाओं हेतु आरक्षित स्थानों को विभिन्न वर्गो में विभाजित किया जाए तो सामान्य वर्ग का प्रतिनिधितव 37.79 प्रतिशत एवं अनुसूचित जन जाति का 29.86 प्रतिशत, अन्य पिछड़े वर्ग का 17.51 प्रतिशत एवं अनुसूचित एवं अनुसूचित जाति का 14.84 प्रतिशत है। प्रस्तुत अध्ययन ग्रामीण महिला वर्ग पर केन्द्रित है।

शोध का उद्देश्य –

1. अनुसूचित जाति महिला जनप्रतिनिधि के नेतृत्व की सामाजिक–आर्थिक पृष्ठभूमि का अध्ययन करना।
2. पंचायत राज व्यवस्था के क्रियान्वयन के सन्दर्भ मे अनुसूचित जाति महिला जनप्रतिनिधि की भूमिका के दृष्टिकोण का पता लगना।
3. अनुसूचित जाति महिला जनप्रतिनिधि की राजनीतिक सजगता एवं अभिरूचि का मूल्यांकन करना।

उपकल्पना –

शोध क्षेत्र में अनुसूचित जाति महिला जनप्रतिनिधि में शिक्षा रोजगार आर्थिक व्यवसायिक परिवर्तन में नगर पंचायत तथा जनपद पंचायत में प्रारंभिक योजनाओं के साधनों के लाभो पर नामांकन दर में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

- ग्राम पंचायत की बैठकों में नियमित भाग लेने के मामले मे अनुसूचित जाति महिला वर्ग का नेतृत्व का बहुत बड़ा प्रतिशत जागरूक है।
- ग्रामीण महिला नेतृत्व में पंचायती राज क्रियान्वयन में कही बहुत प्रभावकारी तो कही सामान्य भूमिका निभाई है। क्रियान्वयन को अधिक प्रभावशाली बनाने में लिए इस नेतृत्व के लिए विकेन्द्रीकरण की मूल अवधारणा को समझते हुए गंभीर प्रयास किये जाने की आवश्यकता है।
- ग्रामीण महिला नेतृत्व की पंचायतों ने प्रथम औपचारिक भागीदारी आने वाले समय में ज्यादा सजग एंव जागरूक नेतृत्व देने में सक्षम होगी।

पूर्व शोध साहित्य की समीक्षा :

सिद्धार्थ तिवारी (2007) ने पंचायती राज व्यवस्था में अनुसूचित जाति की महिलाओं के नेतृत्व विषय पर अध्ययन किया और निष्कर्ष में पाया कि पंचायती राज व्यवस्था में महिला नेतृत्व वाली ग्राम पंचायतों की स्थिति पुरूषों के नेतृत्व वाली ग्राम पंचायत 20 नहीं तो 19 भी नहीं है।

वंदना पाण्डेय (2008) ने मध्यप्रदेश में लोकतांत्रिक, विकेन्द्रीयकरण एवं पंचायती राज विषय पर अध्ययन किया और निष्कर्ष में पाया कि भारत के गांव की सामाजिक तथा आर्थिक उन्नति के लिए सामुदायिक विकास की इसकी पूर्ण सफलता ग्रामवासियों के सहयोग पर ही निर्भर थी। जन सहयोग की प्राप्ति के लिए पंचायती राज का शुभारंभ किया गया है। जिससे पंचायती राज के लाभ बहुत महत्वपूर्ण सिद्ध हुए।

सीमा भार्गव (2010) पंचायत में महिलाओं की भागीदारी का विश्लेषणात्मक विषय पर अध्ययन किया और निष्कर्ष में पाया कि 70 प्रतिशत महिलायें अपने अधिकारों को जानती हैं। निर्देशो का कहना है कि पंचायती

राज व्यवस्था में उन्नति हो रही है।

निधि सिंह (2012) ने पंचायती राज व्यवस्था में सूचना के अधिकार की प्रभावशीलता का विश्लेषण विषय पर अध्ययन किया है और निष्कर्ष में पाया है कि पंचायती राज व्यवस्था में जनपंद पंचायत स्तर पर सूचना के अधिकार प्रभावशील हैं।

आरती सिंह (2014) ने पंचायती राज व्यवस्था में निर्वाचन की भागीदारी एवं महिला सशक्तिकरण का विश्लेषणात्मक विषय पर अध्ययन किया और निष्कर्ष में पाया की पंचायती राज व्यवस्था में पाया कि निर्वाचन की भागीदारी जाति में सम्बन्ध में 40% सामान्य, 34% पिछड़ा वर्ग, 26% अनुसूचित जाति की महिलायें प्रतिनिधित्व कर रहीं है।

शोध का क्षेत्र –

प्रस्तुत शोध पत्र ''पंचायती राज व्यवस्था में अनुसूचित जाति की महिला जन प्रतिनिधि की भूमिका का विश्लेषणात्मक अध्ययन'' (सतना जिले के विशेष संदर्भ में) पर आधारित है। अपनी भौगोलिक स्थिति के कारण मध्य प्रदेश में सतना जिले का एक विशेष स्थान है। चूँकि शोधार्थी का अध्ययन क्षेत्र सतना नगर को लिया गया है। सतना जिला का क्षेत्रफल 7502 वर्ग किमी. है। जनगणना 2011 के अनुसार सतना जिला की जनसंख्या 22, 28, 935 है, जिसमें पुरूष 11,57,495 एवं महिला 10,71,440 शेष एवं अन्य वृद्ध एवं बच्चे सम्मिलित है। सतना जिले का जनसंख्या वृद्धि 19.19% है, जिले का लिंग अनुपात 1000 पुरूष पर 926 महिला है तथा साक्षरता दर 72.26% है जिसमें पुरूष साक्षरता 81.37% एवं महिला साक्षरता 62.45% है। सतना जिले जनसंख्या घनत्व 297 व्यक्ति प्रति वर्ग कि.मी. है। वर्तमान समय में सतना जिले मे 10 तहसीले और 08 विकास खण्ड है। प्रत्येक तहसील में कई गांव, नगर और कस्बे आबाद है।

शोध प्रविधि –

ज्ञान के क्षेत्र में शोध कार्य अपरिहार्य है। शोध कार्यो द्वारा उन प्रश्नों का उत्तर जानने का प्रयास किया जाता है, जिनका उत्तर उपलब्ध नही है। उन समस्याओं का समाधान करने का प्रयास किया जाता है जिनका समाधान उनलब्ध नही है। वर्तमान युग में शोध या अनुसंधान का अत्यधिक महत्व है, क्योंकि किसी भी क्षेत्र से संबंधित तथ्यों का प्रमाणीकरण, नवीनीकरण, एवं सत्यापन अनुसंधान के द्वारा ही किया जा सकता है।

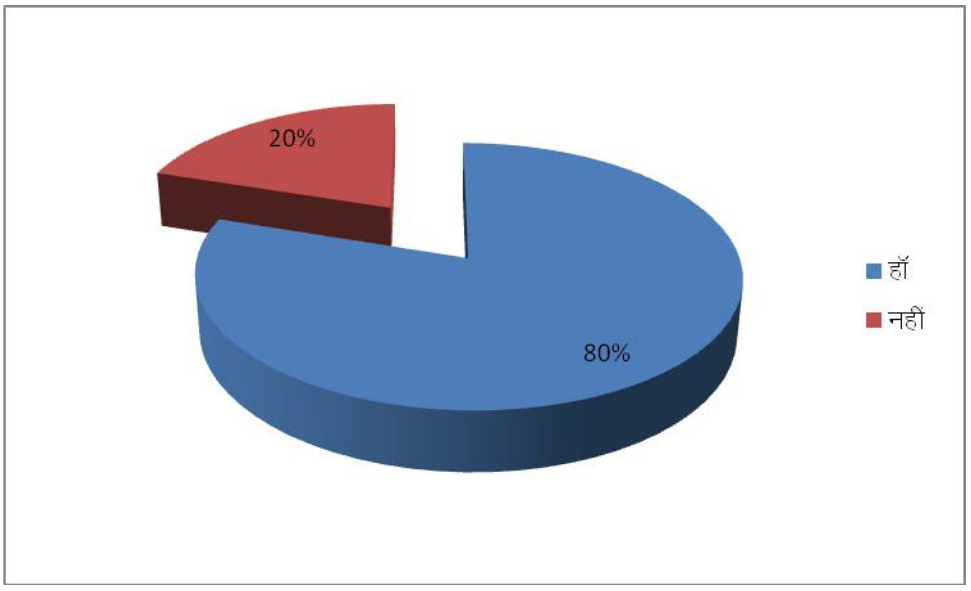
शोध कार्य में पंचायती राज व्यवस्था में अनुसूचित जाति की महिला जन प्रतिनिधि की भूमिका से सम्बन्धित वास्तविक एवं विश्वसनीय आकड़ो को प्राप्त करने के लिये प्राथमिक एवं द्वितीयक दोनों प्रकार के आकड़ों को एकत्र कर पूर्ण किया गया है। प्राथमिक आकड़े स्वयं कार्य स्थल पर जाकर मूल स्त्रोतो एवं साक्षात्कार अनुसूची द्वारा एकत्र किये गये हैं। जबकि द्वितीयक स्त्रोत में विषय से संबंधित पूर्व शोध अध्ययन, शोध आलेख, निबंध, अवसरिक पत्र, जर्नल, शासकीय प्रकाशन, आदेश परिपत्र, अध्यादेश, अधिनियम इत्यादि से तथ्यों का संकलन किया गया है।

अध्ययन क्षेत्र के रूप में सतना जिले में निवास करने वाली 50 उत्तर दाताओं का चयन कर पंचायती राज में शोधार्थी द्वारा साक्षात्कार के दौरान ग्रामीण महिला नेतृत्व के सन्दर्भ में उत्तरदाताओं द्वारा प्राप्त जानकारी निम्ननुसार है :–

सारणी क्रमांक – 1

ग्राम पंचायत की बैठकों में अनुसूचित जाति महिलाओं की भागीदारी

क्रमांक	ग्राम पंचायत की बैठक में नियमित भाग लेती है?	आवृत्ति	प्रतिशत
1.	हॉ	40	80%
2.	नहीं	10	20%
	योग	50	100%



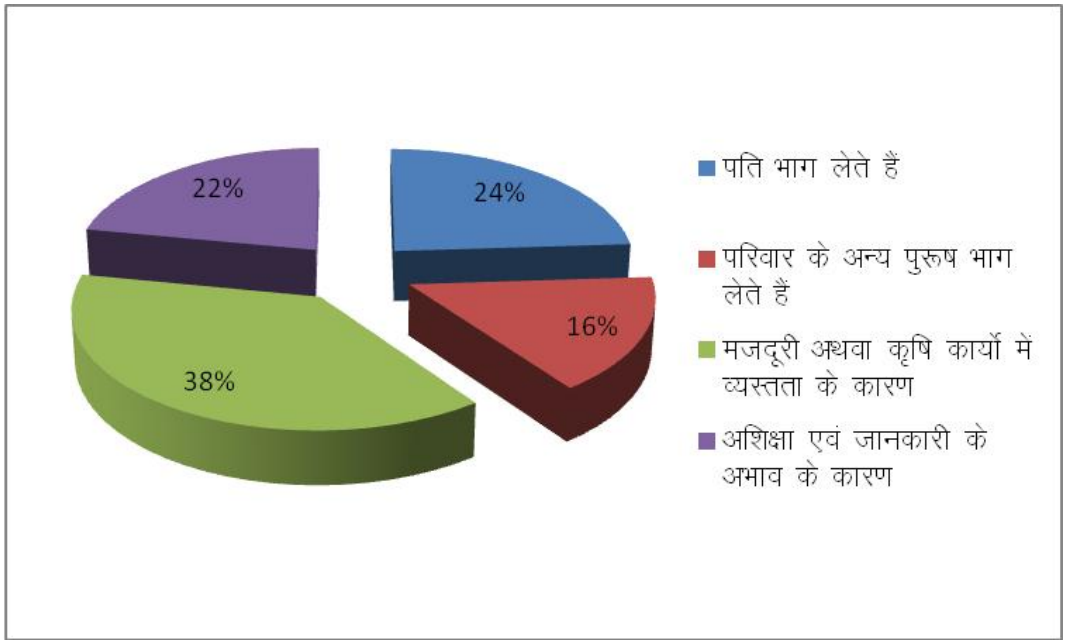
सारणी में ग्राम पंचायत की बैठकों में भागीदारी को दर्शाया गया है। इसके अनुसार 80 प्रतिशत उत्तरदात्रियो ने पंचायत की बैठकों में अपनी भागीदारी को नियमित बताया है। केवल 20 प्रतिशत ही बैठकों में नियमित भाग नहीं लेती है।

इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि ग्राम पंचायत की बैठकों में नियमित भाग लेने के मामले में ग्रामीण महिला वर्ग का नेतृत्व का बहुत बड़ा प्रतिशत जागरूक है।

सारणी क्रमांक – 2

ग्राम पंचायत की बैठक में नियमित भाग न लेने का कारण

क्रमांक	ग्राम पंचायत की बैठक में नियमित भाग न लेने का कारण	आवृत्ति	प्रतिशत
1.	पति भाग लेते हैं	12	24%
2.	परिवार के अन्य पुरूष भाग लेते हैं	8	16%
3.	मजदूरी अथवा कृषि कार्यो में व्यस्तता के कारण	19	38%
4.	अशिक्षा एवं जानकारी के अभाव के कारण	11	22%
	योग	50	100%

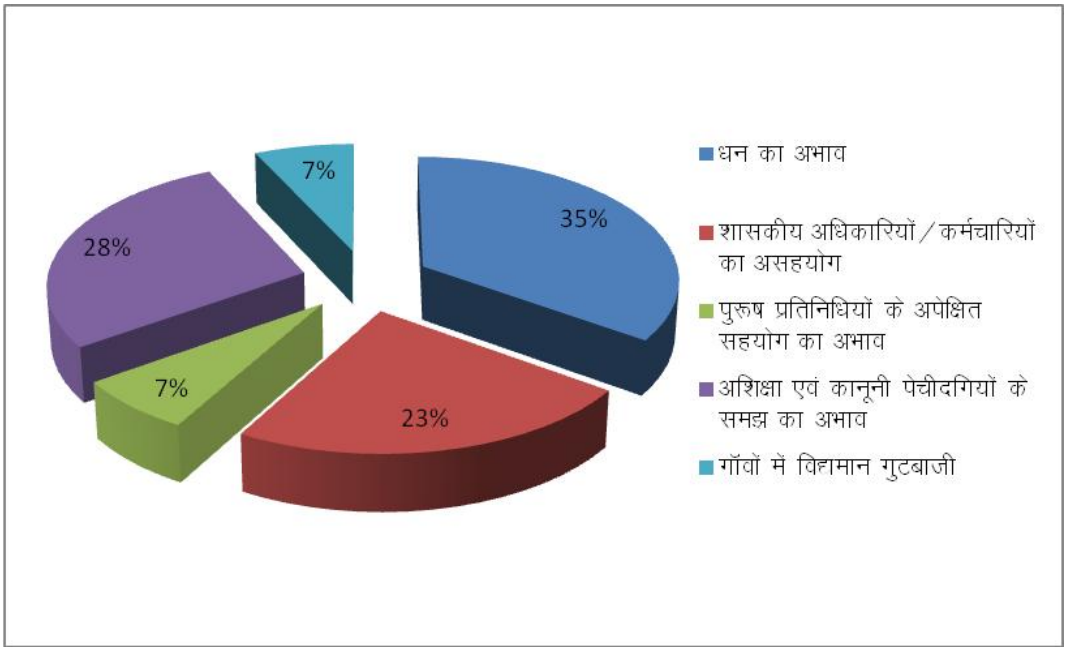


ग्राम पंचायतों की बैठकों मे नियमित भाग नहीं लेने के कारणों को बताया गया है। ऐसी 50 महिला उत्तरदाताओं में से सर्वाधिक 22 प्रतिशत मजदूरी अथवा कृषि कार्यो में व्यस्तता के कारण भाग नहीं ले पाती है। अशिक्षा एवं जानकारी के अभाव के कारण भाग न लेने वाली महिला उत्तरदाताओं की संख्या 22 प्रतिशत है। 24 प्रतिशत ही ऐसी महिला उत्तरदाताओं हैं जिनके भाग न लेने का कारण उनके स्थान पर पति का बैठकों में भाग लेना हैं। 16 प्रतिशत महिला उत्तरदाताओं के भाग न लेने का कारण उनके स्थान पर परिवार के अन्य पुरूषों का भाग लेना है। इस तरह से भाग न लेने के कारणों में मजदूरी एवं कृषि कार्यो में व्यस्तता सर्वाधिक प्रमुख कारण है।

सारणी क्रमांक – 3

ग्राम पंचायत के कार्यो को करने में जनजातीय महिलाओं को आने वाली प्रमुख समस्यायें

क्र.	पंचायत के कार्यो को करने में आने वाली प्रमुख बाधाएँ कौन कौन सी हैं?	आवृत्ति	प्रतिशत
1.	धन का अभाव	15	30%
2.	शासकीय अधिकारियों/कर्मचारियों का असहयोग	10	20%
3.	पुरूष प्रतिनिधियों के अपेक्षित सहयोग का अभाव	3	6%
4.	अशिक्षा एवं कानूनी पेचीदगियों के समझ का अभाव	12	24%
5.	गॉवों में विद्यमान गुटबाजी	3	6%
6.	कोई बाधा नहीं	7	14%
	योग	50	100%

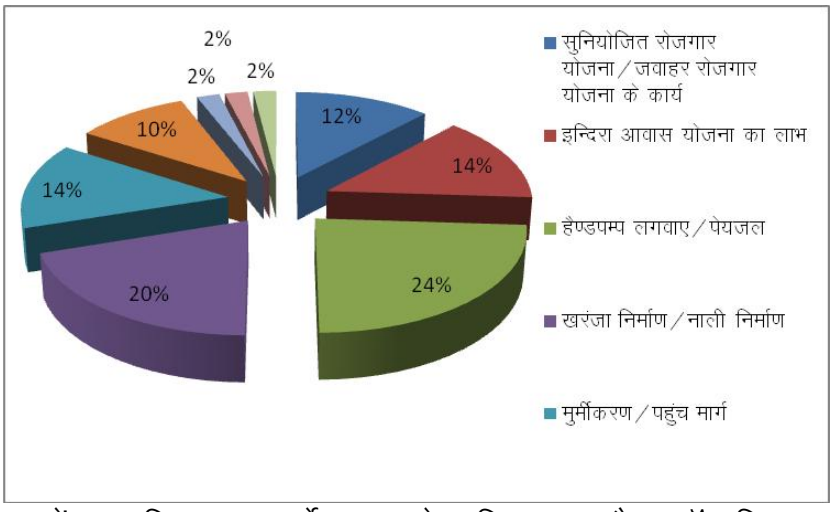


तालिका में पंचायत के कार्यो को करने में आने वाली प्रमुख बाधाओं का उल्लेख किया गया है। इसके अनुसार 30 प्रतिशत महिला उत्तरदाताओं ने धन के अभाव को प्रमुख बाधा के रूप में निरूपित किया। 14 प्रतिशत महिला उत्तरदाता ऐसी हैं जिनकों पंचायत के कार्यो को करने में कोई बाधा प्रस्तुत नहीं होती है। अशिक्षा एवं कानूनी पेचीदगियों के प्रति समझ के अभाव को 24 प्रतिशत महिला उत्तरदाताओं ने प्रमुख बाधा बताया। शासकीय अधिकारियों एवं कर्मचारियों के असहयोग को 20 प्रतिशत महिला उत्तरदाताओं ने बताया। पुरूष प्रतिनिधियों के अपेक्षित सहयोग के अभाव को 6 प्रतिशत महिला उत्तरदाताओं ने प्रमुख बाधा कहा। अतः इससे यह स्पष्ट होता है कि अनुसूचित जाति महिला नेतृत्व के बहुत बड़े प्रतिशत को कार्य के मार्ग में बाधाएँ प्रस्तुत होती है। धन का अभाव उसमें सर्वाधिक बड़ी बाधा है।

सारणी क्रमांक - 4

पंचायत द्वारा किये गये कार्य

क्रमांक	पंचायत में कौन कौन से कार्य किये गये है।	आवृत्ति	प्रतिशत
1.	सुनियोजित रोजगार / जवाहर रोजगार योजना के कार्य	6	12%
2.	इन्दिरा आवास योजना का लाभ	7	14%
3.	हैण्डपम्प लगवाए / पेयजल	12	24%
4.	खरंजा निर्माण / नाली निर्माण	10	20%
5.	मुर्मीकरण / पहुंच मार्ग	7	14%
6.	शाला भवन निर्माण / अतिरिक्त कक्ष निर्माण पंचायत भवन	5	10%
7.	अस्पताल खुलवाया	1	2%
8.	विद्यालय खुलवाया	1	2%
9.	विद्युतीकरण	1	2%
	योग	50	100%



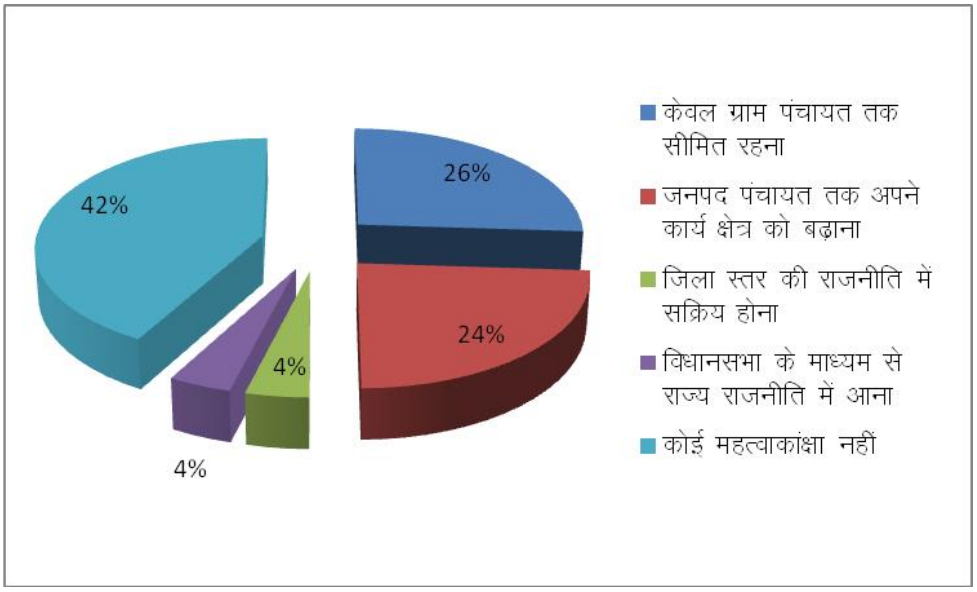
सारणी में पंचायतों द्वारा किए गए कार्यो का उल्लेख किया गया है। यहॉ महिला उत्तरदाताओं द्वारा बताए गए कार्यो को उसी रूप में प्रदर्शित किया गया है। सामान्य तौर पर पंचायतों द्वारा जवाहर रोजगार योजना एवं सुनिश्चित रोजगार योजना के अन्तर्गत कार्य करवाए गए है। महिला उत्तरदाताओं में से अधिकांश ने योजनाओं के स्थान पर किए गए वास्तविक कार्यो को ही बताया है। इसके अनुसार सर्वाधिक 20 प्रतिशत महिला उत्तरदाताओं ने खरंजा निर्माण/नाली निर्माण का कार्य बताया। 48 प्रतिशत महिला उत्तरदाताओं ने हैण्डपम्प/पेयजल की सुविधा उपलब्ध कराई। 14 प्रतिशत महिला उत्तरदाताओं ने मुर्मीकरण/पहुंच मार्ग का कार्य अपनी पंचायत मे करवाया। निर्माण कार्यो में शाला भवन/अतिरिक्त कक्ष/पंचायत भवन प्रमुख हैं जिनका 10 प्रतिशत महिला उत्तरदाताओं ने अपने यहॉ निर्माण करवाया। इन्दिरा आवास योजना का लाभ 14 प्रतिशत महिला उत्तरदाताओं ने दिलवाया। उल्लिखित कार्यो में अधिकांश कार्य जवाहर रोजगार योजना सुनिश्चित रोजगार योजना के अंतर्गत आते हैं जिसमें 2 प्रतिशत महिला उत्तरदाताओं ने कार्यो में सीधे इन योजनाओं के अंतर्गत कार्य करना बतलाया। 2 प्रतिशत महिला उत्तरदाताओं ने अस्पताल खुलवाए। 2 उत्तरदात्री ने विद्यालय खुलवाया। 2 प्रतिशत उत्तरदात्री ने गॉव में विद्युतीकरण करवाया।

कार्यो का यह विश्लेषण स्पष्ट करता है कि पंचायतों के माध्यम से अधिकांश तौर पर वे ही कार्य सम्पादित हो रहे हैं जिनके लिए अनुदान प्राप्त हो रहा है। साथ ही सड़क पेयजल जैसी आधारभूत आवश्यकताओं की पूर्ति प्राथमिक के रूप में दिखाई देती है। इस दृष्टि से नेतृत्व के लिए गॉवों के अधोःसंरचनात्मक विकास की व्यापक अवधारणा को भी ध्यान में रखे जाने की विशेष आवश्यकता है।

सारणी क्रमांक – 5

राजनीतिक क्षेत्र में महत्वाकांक्षा

क्रमांक	राजनीतिक क्षेत्र में महात्वाकांक्षा क्या है?	आवृत्ति	प्रतिशत
1.	केवल ग्राम पंचायत तक सीमित रहना	13	26%
2.	जनपद पंचायत तक अपने कार्य क्षेत्र को बढ़ाना	12	24%
3.	जिला स्तर की राजनीति में सक्रिय होना	2	4%
4.	विधानसभा के माध्यम से राज्य राजनीति में आना	2	4%
5.	कोई महत्वाकांक्षा नहीं	21	42%
	योग	50	100%



अतः यह स्पष्ट है कि ग्रामीण स्तर के ग्रामीण महिला नेतृत्व का बहुत बड़ा प्रतिशत महत्वाकांक्षाहीन है। अथवा स्वयं को ग्राम पंचायत तक सीमित रखना चाहता है। केवल एक चौथाई जनपद पंचायत तक अपने कार्य क्षेत्र को बढ़ाना चाहती है।

निष्कर्ष :-

अनुसूचित जाति महिला जनप्रतिनिधि की सहभागिता/नेतृत्व पंचायतों में कम प्रतिस्पर्धा से आया है। उनकी ग्रामीण विकास एवं सामाजिक सुधार की बात उत्साहवर्धक मानी जा सकती है। संचार माध्यमों के प्रति उनकी जागरूकता, अशिक्षा एवं कमजोर सामाजिक आर्थिक स्थिति से जुड़ विषय है। महत्वाकांक्षा का अभाव भी इस सन्दर्भ में अन्तर्सम्बधी प्रतीत होता है। यदि ग्रामीण महिला के इन नेताओं/सरपंचों के उत्तरों को समग्र रूप में देखा जाए। ग्रामीण स्तर पर महिलाओं का एक ऐसा नेतृत्व उभर रहा है। जिससे इस आशा का संचार होता है कि ग्रामीण महिला महिला नेतृत्व की पंचायतों में प्रथम औपचारिक भागीदारी आने वाले समय में ज्यादा सजग एवं जागरूक नेतृत्व देने में सक्षम होगी। मध्य प्रदेश की पंचायतों के लिये यह एक आशापूर्ण संकेत है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. नेहरू, जवाहरलाल – सामुदायिक विकास एवं पंचायत राज, सस्त साहित्य मण्डल, 1965 इलाहाबाद।
2. भार्गव, बी0एस0 – पंचायत राज सिस्टम एण्ड पॉलिटिकल पार्टीज, आशीष पब्लिशिंग हाउस 1979 नई दिल्ली।
3. भदौरिया, बी0पी0एस0 एवं दुबे, बी0के0 – पंचायत राज एण्ड रूरल डेवलपमेंट, कॉमनवेल्थ पब्लिशर्स 1989 नई दिल्ली।
4. वर्मा, आर0के0 – पॉलिटिकल लीडरशिप, अमर प्रकाशन, 1991 दिल्ली।
5. रामप्यारे – हरिजन युवकों का राजनीतिक समाजीकरण, मित्तल पब्लिकेशंस नई दिल्ली 1991
6. जैन, मंजू – कार्यशील महिलाएँ एवं सामाजिक परिवर्तन, प्रिंटवैल, 1994 जयपुर।
7. सिसोदिया, यतीनद्र सिंह – मध्य प्रदेश पंचायत राज अधिनियम 1993 : एक अध्ययन, मध्य प्रदेश

सामाजिक विज्ञान संस्थान उज्जैन, 1996
8. आष्टे, प्रभा – भारतीय समाज में नारी, क्लासिक पब्लिशिंग हाउस, जयपुर 1996
9. राजेन्द्र कुमार – ग्रामीण राजनतिक अभिजन, क्लासिकल पब्लिशिंग कम्पनी नई दिल्ली 1996
10. गौड, के0के0 – भारत में ग्रामीण नेतृत्व का उदीयमान स्वरूम, मानक पब्लिकेशंस, नई दिल्ली, 1997

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED PRINT RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 14, Issue 7-8
पृष्ठ : 179–185

बदलती पारिवारिक संरचना में वृद्धजनों की सामाजिक स्थिति : भारतीय समाज का समाजशास्त्रीय अध्ययन

डॉ. गोल्डी चुटैल
सहायक प्राध्यापक (समाजशास्त्र)
शासकीय महाविद्यालय खजराना, इंदौर (म.प्र.)

सारांश :

भारत में वृद्धजनों का अनुपात बढ़ रहा है, और यह वृद्धि उसी दौर में हो रही है जब परिवार की संरचना बदल रही है। इससे एक समाजशास्त्रीय प्रश्न उठता है : जब परिवार का आकार, निवास–स्थान और श्रम–विभाजन बदलें, तो वृद्ध सदस्य की भूमिका और प्रतिष्ठा का क्या होता है। प्रस्तुत अध्ययन इसी की जाँच करता है। पद्धति गुणात्मक और समीक्षात्मक है, इसमें सहकर्मी–समीक्षित शोध–लेखों, आधिकारिक सर्वेक्षणों, कानूनों और नृतत्वशास्त्रीय अध्ययनों का विषयगत विश्लेषण किया गया, कोई प्राथमिक आँकड़ा एकत्र नहीं किया गया। विश्लेषण से निकलता है कि वृद्धजनों की स्थिति परिवार के प्रकार से उतनी तय नहीं होती जितनी आय, स्वास्थ्य, संपत्ति–नियंत्रण, लिंग और सामाजिक नेटवर्क से। संयुक्त परिवार में रहना स्वतः गरिमा की गारंटी नहीं, और अलग रहना स्वतः परित्याग नहीं। निष्कर्ष यह कि वृद्धावस्था का अनुभव एकरूप नहीं, सामाजिक स्थिति के अनुसार गहराई से विभाजित है।

प्रमुख शब्द :

वृद्धजन, पारिवारिक संरचना, भारतीय समाज, सामाजिक स्थिति, अंतरपीढ़ी संबंध, देखभाल, सामाजिक सुरक्षा।

प्रस्तावना :

भारतीय परिवार में वृद्ध सदस्य की भूमिका परंपरागत रूप से केवल आश्रित की नहीं रही – वे संपत्ति के स्वामी, विवाह–संबंधों के निर्णायक और पारिवारिक स्मृति के वाहक भी थे। यह प्रतिष्ठा भावनात्मक कम और संरचनात्मक अधिक थी, क्योंकि वह उन संसाधनों से जुड़ी थी जिन पर उनका नियंत्रण था। जनसांख्यिकीय बदलाव इस चित्र को नए सिरे से गढ़ रहा है। जीवन प्रत्याशा बढ़ी है और प्रजनन दर घटी है, जिससे वृद्धजनों का अनुपात लगातार ऊपर जा रहा है (राष्ट्रीय सांख्यिकी कार्यालय, 2021)। यह वृद्धि उसी समय हो रही है जब संयुक्त परिवार का अनुपात घट रहा है और प्रवास बढ़ा है। इस आबादी का व्यवस्थित चित्र अब भारत के पहले दीर्घकालिक वृद्धावस्था सर्वेक्षण से उपलब्ध है (आईआईपीएस, 2020य पेरियानायगम, ब्लूम एवं शेखर, 2021)।

वृद्धावस्था केवल जैविक अवस्था नहीं – साठ वर्ष में कोई निर्भर माना जाए या सक्रिय, यह शरीर से कम और सामाजिक स्थिति से अधिक तय होता है। लैंब (2000) ने ग्रामीण बंगाल के अध्ययन में दिखाया कि वृद्धावस्था के अर्थ लिंग, संबंध और शरीर की सांस्कृतिक धारणाओं से गुँथे हैं। इस अध्ययन की आवश्यकता इसलिए है कि लोकप्रिय चर्चा प्रायः दो सरल कहानियों में सिमट जाती है –'परिवार टूट गए' या 'सब पहले जैसा ही है'। केंद्रीय तर्क यह है कि वृद्धजनों की स्थिति परिवार के प्रकार से नहीं, संसाधनों तक पहुँच और सामाजिक स्थिति से तय होती है।



चित्र 1. वाराणसी में एक वृद्ध खाद्य विक्रेता अपनी पोती के साथ। यह चित्र भारतीय समाज में वृद्धजनों और युवा पीढ़ी के बीच पारिवारिक निकटता तथा अंतरपीढ़ी संबंधों को दर्शाता है।
छायाकार : Jorge Royan, 2005। स्रोत : विकिमीडिया कॉमन्स। लाइसेंस : CC BY-SA 3.0.

प्रमुख अवधारणाएँ और अध्ययन का दायरा :

वृद्धजन से यहाँ अभिप्राय 60 वर्ष या उससे अधिक आयु के व्यक्तियों से है। यह सीमा वृद्धजनों के लिए राष्ट्रीय नीति (1999) से ली गई है, और वरिष्ठ नागरिकों से संबंधित कानून तथा आधिकारिक प्रतिवेदन इसी को आधार बनाते हैं (राष्ट्रीय सांख्यिकी कार्यालय, 2021)। पारिवारिक संरचना से आशय परिवार के आकार, निवास–व्यवस्था और उसके भीतर के अधिकार–संबंधों से है – केवल इससे नहीं कि कितने लोग एक छत के नीचे रहते हैं। सामाजिक स्थिति यहाँ बहुआयामी है : प्रतिष्ठा और भूमिका के साथ आर्थिक स्वायत्तता, निर्णय लेने की वास्तविक क्षमता और सामाजिक सहभागिता भी शामिल हैं – क्योंकि प्रतीकात्मक सम्मान और वास्तविक निर्णय–शक्ति साथ–साथ नहीं चलते। देखभाल का अर्थ भी केवल शारीरिक सहायता नहीं, बल्कि भावनात्मक, आर्थिक और सामाजिक सहयोग है। अध्ययन भारतीय समाज से संबंधित है, पर क्षेत्रीय विविधता के कारण कोई भी सामान्यीकरण सीमित रहेगा।

शोध पद्धति :

अध्ययन गुणात्मक और समीक्षात्मक प्रकृति का है तथा द्वितीयक स्रोतों पर आधारित है। इसमें सहकर्मी–समीक्षित शोध–लेखों, नृतत्वशास्त्रीय अध्ययनों, राष्ट्रीय सर्वेक्षणों, सरकारी प्रतिवेदनों और संबंधित कानूनों का विषयगत विश्लेषण किया गया है। विश्लेषण के लिए सात श्रेणियाँ तय की गईं–परिवार, देखभाल, आर्थिक निर्भरता, प्रतिष्ठा, अकेलापन, अंतरपीढ़ी संबंध और सामाजिक सुरक्षा। कोई प्राथमिक आँकड़ा प्रस्तुत नहीं किया गया। तीन सीमाएँ स्वीकार की जानी चाहिए। पहली, भारत की क्षेत्रीय विविधता इतनी अधिक है कि राष्ट्रीय निष्कर्ष किसी विशेष समुदाय पर सीधे लागू नहीं होते। दूसरी, बड़े सर्वेक्षणों के आँकड़े कुछ वर्ष पुराने हैं। तीसरी,

द्वितीयक स्रोतों पर निर्भरता के कारण यह अध्ययन वृद्धजनों के अपने शब्दों तक सीमित रूप से ही पहुँचता है।

सैद्धांतिक परिप्रेक्ष्य :

आधुनिकीकरण का दृष्टिकोण तर्क देता है कि औद्योगीकरण के साथ वृद्धजनों की प्रतिष्ठा घटती है, क्योंकि ज्ञान का स्रोत अनुभव से हटकर औपचारिक शिक्षा और तकनीक की ओर चला जाता है। भारतीय संदर्भ में यह तर्क आंशिक रूप से ही टिकता है। भट और ध्रुवराजन (2001) ने अंतरपीढ़ी संबंधों में 'बहाव' की बात की, विच्छेद की नहीं – संबंध टूटे नहीं, उनका आधार खिसका। सामाजिक विनिमय का दृष्टिकोण यहाँ अधिक उपयोगी है। इसके अनुसार संबंधों में स्थिति उन संसाधनों से तय होती है जिन पर व्यक्ति का नियंत्रण है। जिसके पास पेंशन, संपत्ति या मकान का स्वामित्व है, उसकी बात परिवार में अलग वजन रखती है – और इसी से समझ आता है कि सेवानिवृत्ति के बाद स्थिति क्यों बदलती है। भूमिका और गतिविधि के दृष्टिकोण इसे पूरा करते हैं : सेवानिवृत्ति भूमिका का अंत नहीं, रूपांतरण है। लैंब (1997) इसे आगे बढ़ाती हैं – भारतीय संदर्भ में वृद्धावस्था व्यक्तित्व के क्रमिक 'निर्माण और विघटन' की प्रक्रिया है, किसी एक क्षण का परिवर्तन नहीं। नारीवादी दृष्टिकोण एक ऐसा प्रश्न जोड़ता है जिसे अन्य ढाँचे छोड़ देते हैं : यदि स्थिति संसाधनों से तय होती है, और स्त्रियों का संपत्ति पर नियंत्रण ऐतिहासिक रूप से सीमित रहा है, तो वृद्ध स्त्री की स्थिति संरचनात्मक रूप से कमजोर होगी।

भारतीय परिवार की बदलती संरचना :

सबसे स्पष्ट परिवर्तन परिवार के आकार में कमी है। प्रजनन दर घटने से पीढ़ियों का अनुपात बदला – कम संतानें, अधिक जीवित रहने वाले माता–पिता। अर्थ यह कि देखभाल का भार कम कंधों पर आता है। दूसरा परिवर्तन प्रवास का है, पर भौगोलिक दूरी को स्वतः भावनात्मक दूरी मान लेना गलत होगा। अनेक परिवार अलग रहते हुए भी आर्थिक रूप से जुड़े रहते हैं और डिजिटल माध्यमों से दैनिक संपर्क बनाए रखते हैं। लैंब (2009) ने प्रवासी भारतीय परिवारों में दिखाया कि देखभाल की अपेक्षाएँ महाद्वीपों के आर–पार भी बनी रहती हैं, यद्यपि उनका रूप बदल जाता है। तीसरा परिवर्तन स्त्रियों की शिक्षा और वेतनभोगी रोजगार में बढ़ती भागीदारी है। परंपरागत रूप से वृद्धजनों की दैनिक देखभाल का अधिकांश भार घर की स्त्रियों पर था, जब वे बाहर काम करने लगती हैं, तो यह श्रम कहीं और से आना पड़ता है – और प्रायः वह उपलब्ध नहीं होता। चौथा कारक आवास है : शहरी मकानों का आकार और किराया ऐसे हैं कि तीन पीढ़ियों का साथ रहना कई परिवारों के लिए व्यावहारिक रूप से कठिन है। इन सबका परिणाम यह नहीं कि संयुक्त परिवार समाप्त हो गया। अधिक सटीक विवरण यह है कि एक नया रूप उभरा – भौगोलिक रूप से बिखरा पर आर्थिक और भावनात्मक रूप से जुड़ा परिवार।

परिवार में वृद्धजनों की सामाजिक स्थिति :

परंपरागत व्यवस्था में वृद्धजन की प्रतिष्ठा तीन आधारों पर टिकी थी : संसाधनों पर नियंत्रण, अनुभव का मूल्य, और सांस्कृतिक परंपराओं के हस्तांतरण में भूमिका। इनमें पहला सबसे निर्णायक था, और दूसरा आज सबसे कमजोर – तकनीकी बदलाव इतने तेज हैं कि खेती के तरीके से करियर के चुनाव तक युवा पीढ़ी बाहरी स्रोतों पर अधिक भरोसा करती है। तीसरा आधार टिका हुआ है, और उससे एक व्यावहारिक भूमिका जुड़ी है : जहाँ दोनों माता–पिता नौकरी करते हैं, वहाँ बच्चों की देखभाल प्रायः वृद्धजन ही करते हैं। यह श्रम अदृश्य रहता

है, पर उसके बिना अनेक शहरी परिवार चलते नहीं। सबसे बड़ा अंतर आर्थिक स्थिति पैदा करती है। पेंशन पाने वाला सेवानिवृत्त कर्मचारी और असंगठित क्षेत्र में जीवन बिताया वृद्ध व्यक्ति – दोनों की पारिवारिक स्थिति एक जैसी नहीं होती। इसी प्रकार जिसने मकान अपने नाम रखा और जिसने जीवित रहते संपत्ति बाँट दी, उनकी बात का वजन अलग होता है – सामाजिक विनिमय का सिद्धांत यहीं सबसे स्पष्ट दिखता है। स्वास्थ्य दूसरा निर्णायक कारक है। दीर्घकालिक बीमारी केवल शारीरिक निर्भरता नहीं लातीय वह निर्णय–प्रक्रिया से भी बाहर कर देती है – 'उन्हें परेशान मत करो' कहकर सूचना ही रोक दी जाती है। यहीं एक महत्त्वपूर्ण भेद उभरता है – प्रतीकात्मक सम्मान और वास्तविक निर्णय–शक्ति के बीच। चरण छूना और आदरपूर्ण संबोधन बने रह सकते हैं, जबकि संपत्ति, खर्च और चिकित्सा के निर्णय किसी और के हाथ चले जाएँ। सम्मान के बाहरी रूप को देखभाल की गुणवत्ता का प्रमाण मानना विश्लेषणात्मक भूल होगी। डिजिटल तकनीक दोनों दिशाओं में काम करती है : जो इसका उपयोग कर पाते हैं, उनके लिए दूर बसी संतानों से संपर्क सहज हो जाता है, जो नहीं कर पाते, उनके लिए बैंक से स्वास्थ्य सेवा तक की डिजिटल होती व्यवस्थाएँ नई निर्भरता पैदा कर देती हैं।



चित्र 2. तमिलनाडु में मतदान करने के बाद अपने पुत्र और पुत्रवधू की सहायता से बाहर आते एक वरिष्ठ नागरिक। यह चित्र पारिवारिक सहयोग के साथ वृद्धजनों की नागरिक और सामाजिक भागीदारी को दर्शाता है। लेखक : भारत निर्वाचन आयोग, 8 मई 2006। स्रोत : विकिमीडिया कॉमन्स। लाइसेंस : Government Open Data License–India.

असमानता, लिंग और अलग-अलग वृद्धावस्था अनुभव :

लिंग सबसे गहरा विभाजक है, और इसका कारण जीव–विज्ञान से अधिक संरचना है। स्त्रियाँ औसतन अधिक जीती हैं और प्रायः स्वयं से बड़ी आयु के पुरुषों से विवाहित होती हैं, इसलिए विधवा होने की संभावना उनके लिए कहीं अधिक है। उनका जीवन–भर का श्रम प्रायः अवैतनिक रहा होता है, इसलिए न पेंशन बनती है न बचतय संपत्ति पर सीमित नियंत्रण इसे और गहरा करता है। लैंब (1999) के ग्रामीण बंगाल के अध्ययन में विधवाओं पर लागू सामाजिक प्रतिबंध – भोजन, वस्त्र और सहभागिता से जुड़े – इसी संरचनात्मक कमजोरी के सांस्कृतिक रूप दिखाई देते हैं। पर वृद्ध स्त्रियों को केवल असहाय मानना उतनी ही बड़ी भूल होगी। वे घरेलू श्रम, बच्चों की देखभाल और पड़ोस के नेटवर्क को बनाए रखने में निरंतर योगदान देती हैं – और यही नेटवर्क संकट में उनका सबसे भरोसेमंद सहारा बनता है। अन्य विभाजन भी ठोस हैं। संगठित क्षेत्र से आए वृद्धजनों

के पास पेंशन हैय असंगठित क्षेत्र में, जो अधिकांश श्रमशक्ति है, आय का निश्चित स्रोत नहीं रहता। ग्रामीण क्षेत्रों में सामुदायिक संबंध मजबूत पर चिकित्सा–सुविधाएँ दूर, शहरों में सुविधाएँ पास, पर पड़ोस कमजोर (आईआईपीएस, 2020)। अकेले रहने वाले, निःसंतान तथा दीर्घकालिक बीमारी से प्रभावित वृद्धजन इन सभी विभाजनों के प्रतिच्छेदन पर होते हैं – और यही समूह उपलब्ध शोध में सबसे कम दर्ज हुआ है।

परिवार, संस्थागत देखभाल और राज्य की भूमिका :

भारत में वृद्धजनों की देखभाल परंपरागत रूप से परिवार का दायित्व मानी गई, और नीति–निर्माण भी इसी मान्यता पर टिका रहा। माता–पिता और वरिष्ठ नागरिकों का भरण–पोषण तथा कल्याण अधिनियम, 2007 इसी दृष्टि का कानूनी रूप है – यह संतानों पर भरण–पोषण का दायित्व डालता है और अधिकरणों की व्यवस्था करता है (भारत सरकार, 2007)। पर कानूनी प्रावधान और वास्तविक पहुँच के बीच अंतर बना रहता है : अधिकरण तक जाने के लिए वृद्ध व्यक्ति को अपने ही बच्चों के विरुद्ध औपचारिक कार्यवाही करनी पड़ती है, जो सामाजिक और भावनात्मक रूप से अत्यंत कठिन है। इसी बीच संस्थागत विकल्प बढ़े हैं वृद्धाश्रम, सहायक आवास, घरेलू देखभाल सेवाएँ और समुदाय–आधारित व्यवस्थाएँ (लीबिग, 2003)। वृद्धाश्रम को केवल परित्याग का प्रतीक मानना उचित नहीं, निःसंतान वृद्धजनों, अकेली विधवाओं और ऐसे परिवारों के लिए जहाँ सभी सदस्य कार्यरत हैं, यह वास्तविक आवश्यकता है। साथ ही गुणवत्ता, नियमन और वहनीयता ये तीनों में बड़ी असमानता है, और अधिकांश के लिए ये विकल्प पहुँच से बाहर। परिवार और राज्य की जिम्मेदारी को परस्पर विरोधी मानना भूल होगी। जहाँ पेंशन, सार्वजनिक स्वास्थ्य सेवा और सामुदायिक सहायता उपलब्ध हो, वहाँ पारिवारिक देखभाल कमजोर नहीं पड़ती है, दबाव घटने से संबंध प्रायः बेहतर होते हैं।



चित्र 3. नई दिल्ली के एक वृद्धाश्रम में रहने वाली महिलाओं से मुलाकात का दृश्य। यह चित्र पारिवारिक देखभाल से बाहर संस्थागत सहायता और निराश्रित वृद्ध महिलाओं की सामाजिक सुरक्षा के प्रश्न को सामने लाता है।
छायाकार : Dinesh; स्रोत : फोटो प्रभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, 15 मई 2007, विकिमीडिया कॉमन्स के माध्यम से। लाइसेंस : Government Open Data License–India.

चर्चा :

शोध–प्रश्नों को सीधे देखें तो कुछ बातें स्पष्ट होती हैं। पारिवारिक संरचना में परिवर्तन का प्रभाव सभी वृद्धजनों पर समान नहीं पड़ा। जिनके पास आय, संपत्ति और स्वास्थ्य है, उनके लिए एकल निवास स्वायत्तता बन सकता है, जिनके पास ये नहीं, उनके लिए वही स्थिति असुरक्षा। अलग रहना भावनात्मक परित्याग का

प्रमाण नहीं है धन–प्रेषण, नियमित संपर्क और संकट में उपस्थिति दूरी के बावजूद बने रह सकते हैं। उल्टा भी उतना ही सचरू साथ रहना सम्मान या गुणवत्तापूर्ण देखभाल की गारंटी नहींय एक ही घर में रहते हुए भी कोई वृद्ध व्यक्ति निर्णयों से बाहर और भावनात्मक रूप से अकेला हो सकता है। इसीलिए पारिवारिक सम्मान और वास्तविक निर्णय–शक्ति में भेद करना आवश्यक है, यह इस अध्ययन का केंद्रीय विश्लेषणात्मक बिंदु है। अंत में, पारिवारिक देखभाल और राज्य की सामाजिक सुरक्षा प्रतिद्वंद्वी नहीं। वृद्धजनों को केवल आश्रित मानने के बजाय अधिकार–संपन्न नागरिक और सक्रिय सामाजिक सहभागी के रूप में देखना विश्लेषण तथा नीति, दोनों के लिए अधिक उपयोगी है।

निष्कर्ष एवं सुझाव :

भारतीय परिवार समाप्त नहीं हुआ, उसका स्वरूप और कार्य बदल रहे हैं, और इस परिवर्तन को नैतिक पतन मानना विश्लेषण की जगह निर्णय सुनाना होगा। अध्ययन का मुख्य निष्कर्ष यह है कि वृद्धजनों की स्थिति परिवार के प्रकार से निर्धारित नहीं होती हैं आय, स्वास्थ्य, संपत्ति पर नियंत्रण, लिंग, सामाजिक नेटवर्क और संबंधों की गुणवत्ता ढाँचे से कहीं अधिक निर्णायक हैं। इससे कुछ व्यावहारिक दिशाएँ निकलती हैं। असंगठित क्षेत्र से आने वाले वृद्धजनों के लिए आर्थिक सुरक्षा का विस्तार सबसे बुनियादी आवश्यकता है। सार्वजनिक स्वास्थ्य सेवाओं में वृद्धावस्था–देखभाल मजबूत करना, डिजिटल सेवाओं के साथ ऑफलाइन विकल्प बनाए रखना, और सामुदायिक सहभागिता के अवसर बढ़ाना है तीनों आवश्यक। सबसे महत्त्वपूर्ण यह कि देखभाल में वृद्धजन की अपनी इच्छा, गरिमा और स्वायत्तता का सम्मान हो। भविष्य में क्षेत्रीय और अनुभवजन्य अध्ययनों की आवश्यकता है, विशेषकर अकेले रहने वाले और निःसंतान वृद्धजनों पर, जिनके अनुभव साहित्य में कम दर्ज हुए हैं।

संदर्भ-सूची :

1. Bhat, A. K., & Dhruvarajan, R. (2001). Ageing in India: Drifting intergenerational relations, challenges and options. Ageing & Society, 21(5), 621–640.
2. Government of India. (2007). The Maintenance and Welfare of Parents and Senior Citizens Act, 2007. Ministry of Social Justice and Empowerment.
3. International Institute for Population Sciences. (2020). Longitudinal Ageing Study in India (LASI), Wave 1, 2017–18: India report. IIPS, National Programme for Health Care of the Elderly, Harvard T. H. Chan School of Public Health & University of Southern California.
4. Lamb, S. (1997). The making and unmaking of persons: Notes on aging and gender in North India. Ethos, 25(3), 279–302.
5. Lamb, S. (1999). Aging, gender and widowhood: Perspectives from rural West Bengal. Contributions to Indian Sociology, 33(3), 541–570.
6. Lamb, S. (2000). White saris and sweet mangoes: Aging, gender, and body in North India. University of California Press.
7. Lamb, S. (2009). Aging and the Indian diaspora: Cosmopolitan families in India and abroad.

Indiana University Press.

8. Liebig, P. S. (2003). Old-age homes and services: Old and new approaches to aged care. Journal of Aging & Social Policy, 15(2), 159–178.
9. National Statistical Office. (2021). Elderly in India 2021. Social Statistics Division, Ministry of Statistics and Programme Implementation, Government of India. https://mospi.gov.in
10. Perianayagam, A., Bloom, D. E., & Sekher, T. V. (2021). Longitudinal Ageing Study in India (LASI): An investigation of health, economic, and social well-being of India's growing elderly population. eSocialSciences Working Paper No. 13126.
11. Royan, J. (2005). India - Varanasi old food seller and granddaughter [छायाचित्र]. Wikimedia Commons. CC BY-SA 3.0. https://commons.wikimedia.org/wiki/File:India_-_Varanasi_old_food_seller_and_granddaughter_-_0604.jpg
12. Election Commission of India. (2006). A senior citizen with the help of his son and daughter-in-law, coming out of a polling station after casting his vote during assembly election-2006 at Mondaikadu in Kanyakumari, Tamil Nadu on May 08, 2006 [छायाचित्र]. Wikimedia Commons. GODL-India. https://commons.wikimedia.org/wiki/File : A_senior_citizen_with_the_help_of_his_son_and_daughter-in-law,_coming_out_of_a_polling_station_after_casting_his_vote_during_assembly_election-2006_at_Mondaikadu_in_Kanyakumari,_Tamil_Nadu_on_May_08,2006.jpg
13. Dinesh. (2007). Old age home visit, New Delhi, 15 May 2007 [छायाचित्र]. Photo Division, Ministry of Information and Broadcasting, Government of India. Wikimedia Commons. GODL-India. https://commons.wikimedia.org/wiki/File : Renuka_Chowdhury_visits_the_Old_Age_Homes_to_enquire_about_welfare_of_destitute_women,_on_the_occasion_of_International_Day_of_Family,_in_New_Delhi_on_May_15,_2007.jpg

मो. 9981680856

Email : goldychutel23@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED PRINT RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 14, Issue 7-8
पृष्ठ : 186–188

डोगरी क्हानियें च चित्रित परिवार : इक विश्लेशन (सन् 1991 थमां 2000 तगर)

डॉ. प्रीति बाला
उच्च शिक्षा विभाग, जम्मू।

भूमिका –

माह्नू दे जीवन च परिवार दी भूमिका सभने थमां म्हत्त्वपूर्ण ते बुनियादी ऐ। परिवार सिर्फ इक–दुए कन्नै रौह्ने दा नांई नेईं ऐ बल्के एह् कुसै बी माह्नू दे मानसिक भावनात्मक ते समाजिक विकास दा पह्ला स्कूल ऐ। जीवन दे तुआर–चढ़ाई, तनाई जां फ्ही मुश्किल च परिवार सभने थमां बड्डा स्हारा होंदा ऐ। जिसलै बाहरी दुनिया थमां नराशा हत्थ लगदी ऐ तां परिवार गै होंदा ऐ जेह्ड़ा मुश्किल दौर चा बगैर कुसै लुब्भ–लालच दे बाहर कड्ढी ल्यौंदा ऐ। परिवार थमां मिलने आह्ला हिरख ते लगाई मनुक्खै च आत्मविश्वास बधांदा ऐ जेह्दे कन्नै उसगी जीवन च औने आह्लियें चनौतियें दा सामना करने दी हिम्मत ते हौसला मिलदा ऐ। बचपुने थमां गै स्हेई गलत दी पंछान, बड्डें दा आदर–मान करना, ईमानदारी ते नैतिक मुल्लें गी अस अपने परिवार थमां गै सिखने आं। कुसै बी माह्नू दे चरित्र दी बुनियाद उसदे संस्कारें उप्पर गै टिकी दी होंदी ऐ ते संस्कार ते चरित्र निर्माण च परिवार अह्म भूमिका नभांदा ऐ। बचपुने थमां लेइयै अपने पैरें पर खडोने तगर परिवार मनुक्खी जीवन दी हर जरूरता गी (रुट्टी, टल्ला, घर) पूरा करदा ऐ।

डोगरी क्हानियें च चित्रित परिवारें दी गल्ल करचौ तां डोगरी साहित्य दी लगभग क्हानियां परिवार उप्पर गै अधारत न। डोगरी साहित्य कन्नै जुड़े दे किश लेखक बी अपनी का'न्नी च बदलाव आन्ना करदे न पर 2000 तगर दी मती सारी क्हानियां परिवार दे आले–दुआले गै घुमदियां न। किश क्हानियें दे परिवारें च इक–दुए प्रति बड़ा हिरख–समोध दिक्खने गी लभदा ऐ उत्थें गै मती सारी क्हानियें च परिवार दा विघटन (त्रुट्टन) साफ तौरा पर नजरी औंदा ऐ। जेकर गल्ल करचौ सन् 1991 थमां 2000 तगर दी क्हानियें दी तां इंदे च लगभग 10 क्हानी संग्रैह् प्रकाशत होए। इ'नें क्हानियें दा अध्ययन करने परैंत एह् गल्ल मुखरत तौरा उप्पर बांदै होंदी ऐ जे सांझे परिवारें च नूहां दी हालत बड़ी माड़ी दिक्खने गी लभदी ऐ। परिवार च बजुर्गें दी बेकदरी ते पारिवारिक सदस्यें च असंतुश्टी दा भाव दिक्खने गी लभदा ऐ। इ'नें क्हानियें च नूहें दी स्थिति खरी नेईं लभदी ऐ। घरा च बजुर्ग अपनी हालत गी दिक्खियै वृद्ध आश्रम च रौह्ना गै खरा बुझदे न। लौह्के परिवारें गी दरपेश औने आह्लियां समस्यां बी इ'नें क्हानियें च बखूबी चित्रित कीती गेदियां न। पारिवारिक क्लेश ते मुश्कलें करी किश सदस्स मानसिक समस्या कन्नै दो–चार होआ करदे न उत्थें गै किश सदस्स अपनी जीवन लीला गै खत्म करी देना चांहदे न।

इस द्हाके दी क्हानियें दा अध्ययन विश्लेशन करने परैंत जि'नें क्हानियें थमां परिवार सरबंधी उदाहरण दिक्खने गी लभदे न ओह् न :– परछामें, पजाएं दा नोट, ईर्शा, दूई अनसूइया, बपारी, नाली दे कीड़े, पलायन, कीड़े, स्वाभिमान, अंतिम, भागें दी खेढ, साम्भो अपने काह्ने गी, ओह् इक खुंझ, पिंजरा, चक्रव्यू, स्हारे, कंगनू, औनें आह्ला कल्ल, जात्तर, गडीरना, नांई दी तखत्ती, संदोख, ख्यालें दी गली च, पच्छोता, हिरस, अनभाक्खे रस्ते, स्केलेटर, बदलाई ते आमद।

इ'नें क्हानियें दे परिवारें च कुसै–नां–कुसै समस्या कारण खौद्धल पेदी लभदी ऐ सौह्रे घर नूहें ते सस्सू च अक्सर खुड़बो–खुढ़बी बनी दी रौंह्दी ऐ। 'स्वाभिमान' क्हानी दी पात्तर हुकमी अपने घरैआह्ले दे फौजी होने कारण घरा च इक्कली रौंह्दी ऐ जिस कारण सौहरिये उसगी बड़ा दुख देआ करदे न ओह् दुखी होइयै उसदी पटलन च जाई पुजदी ऐ।

"एह् परदेसी ऐ। इ'न्न कदें–कदें घर औना होंदा ऐ। च'ऊं ध्याड़े लेई आए दे गी में होई बीती दी सुनाई–सुनाइयै दुखी करना बेह्तर नेईं समझियै सब दुख झलदी रेही पर, उ'ब्बी नेईं झलोंदा। गणेश बिजन मेरा सौह्रे घर रौह्ला अत्ति दुश्बार होई गेदा ऐ।"[1]

'ख्यालें दी गली' कहानी दी पातर पर बी उसदी सस्सू ने पूरा काबू कीते दा ऐ नूहं नौकरी ते करदी ऐ पर सारी तन्खाह् सस्स अपने कब्जे च करी लैंदी ऐ इसदे बावजूद बी उसगी खर्चे आस्तै पैसे बी बड़ी जतने कन्नै थ्होंदे न ते सस्सू थमां ताह्ने–महीने बक्खरे सुनने पौंदे न :–

"तेरे प्योई ने टकसाल नीं लाई दी इत्थें ते जे तुगी बड़ा लींदा जंदा ऐ तां बब्बै गी आख सब्बै किश भेजी देऐ तुगी।"[2]

इस्सै चाल्ली अनभाक्खे रस्ते', 'भागें दी खेढ', 'गडीरना' जनेहियें क्हानियें च बी नूंहां दी स्थिति परिवार च बड़ी माड़ी ऐ। जित्थें 'अनभाक्खे रस्ते' क्हानी दी पात्तर 'शांति' दा सस्सू दें कन्नै जेठ–जेठानी ने बी जीना रहाम करी टकाए दा ऐ उत्थें गै 'भागें दी खेढ' दी 'सुनीता' ते 'गडीरना' क्हानी दी पात्तर बी अपने सौहरियें दी सताई दियां न।

"सौहरियें दा सारा टब्बर सुनीता गी कलैह्री, कलच्छनी ते डैन गलान लगी पेआ। हर पास्सै दा तानें–मीनें दा सिलसिला शुरू होई गेआ।"[3]

परिवार जेकर कोई सदस्स दमागी तौरा पर कसरी ऐ तां उसदी जिम्मेवारी दा जिम्मा माऊ–बब्बै दे इलावा कोई बी लैने आस्तै त्यार नेईं होंदा ऐ। भरा–भरोचा परिवार होने दे बावजूद 'अंतिम' क्हानी दा पात्तर मानसिक तौरा पर विकलांग ऐ पर उसदे भ्राई बी उस थमां मुंह मोड़ी लैंदे न। परिवार च खौद्दल पेई गेदी ऐ।

"एह्दा फिरना बड़ा परेशान करदा ऐ। अपने ०याने गी मारग–कुटग पर जेकर इसी किश आक्खेआ तां एह् गालीं देग दूआ लोकें गलाना जे भाबी इसगी तंग करदी ऐ। एह्दी जिम्मेवारी लैना मुश्कल ऐ।"[4]

सांझे परिवारें च नूंहा दे कन्नै–कन्नै पुत्तरा दा बी अपना इक बक्खरा पक्ख ऐ जेह्ड़ा ब्याह् दे बाद मां ते त्रीमता बश्कार फसियै रही जंदा ऐ। नां ते ओह् मां गी समां देई पांदा ऐ ते नां गै त्रीमत उस थमां सुखी रौंह्दी ऐ। 'चक्रव्यू' क्हानी दा दीप बी इस्सै चाल्ली मां ते त्रीमतू बश्कार प्होआ करदा ऐ।

"पर तूं ते असेंगी इ'यां भुलाई ओड़ेआ, जि'यां कोई पराना कपड़ा तुआरियै कमरे दी कुसै न्हेरी नुक्करा रक्खियै भु'ल्ली जंदा ऐ।"[5]

किश सांझे परिवारें च बजुर्गें दा होना परिवार दे बाकी सदस्सें लेई इक बोझ बराबर ऐ। उंदे कारण परिवार च बधदी तनोतनी गी दिक्खियै ओह् आपूं गै वृद्ध आश्रमें जाना गै बेह्त्तर समझदे न।

"शिव पुत्तर में ते हन्डी–बीती चुके दां। में ते गेदा टुरी आं। पर मेरे करियै इस निक्के जनेह् बोट दा जीवन बरबाद होई जाग। में चाह्ना तुस मिगी आश्रम छोड़ी आओ।"[6]

"ईर्शा' क्हानी दा पात्तर दयाराम बी परिवार लेई सब किश करदा ऐ उयै उसगी बढ़ेपे च इक्कला छोड़ियै अपनी मर्जी दा ब्याह् करियै घरा चली जंदा ऐ। ओह् परिवार गी भलेआं गै बिसरी जंदा ऐ।

"आप मुहारा ब्याह करी लेआ। लाड़ी ऐसी लब्भी जे उन्नै उन्दे कन्नै लड़ निं छोह्ड दित्ता। बाहरो खसमें कन्नै गै रौह्ला। कदें दिन–त्योहारें गी बी नेईं आए, कदें खबर–सुरत पुच्छी। जे माऊ–बब्बै गी सुख नेईं ते केह् करना नेईं लुआदी गी।"[7]

अपने प्यौकियें दे पैसे–धैल्ले दा माह्ड बी घरै गी त्रोड़ा करदा ऐ। 'संदोख' क्हानी दी पात्तर रीता बी इस्सै मानसिकता आह्ली नारी ऐ। उसगी सौह्टियें दा लौह्क्का जनेहा घर अपने रुतबे मताबक स्हेई नेईं लगदा ऐ।

"रवि बहोने परैंत लाड़ी दा दाज–दान लेइयै कराये दे मकानै च बक्ख र'वै करदा हा। उसदी लाड़ी बड़े बब्बै दी धी ही। उसदा जद्दी–पुश्ती उस त्र'ऊं कमरे ते डिङ्ड–गिड्ड सारी रसोई आह्ले घरै च रौह्ले कारण नक्क बढोंदा हा। उसदा स्टैंडर्ड घटी जंदा ऐ।"[8]

निष्कर्ष –

निष्कर्ष दे तौर पर एह् आक्खेआ जाई सकदा ऐ जे आधुनिक जुग दे दौर च सांझे परिवारें च रौह्ला इक बड़ी–बड्डी चनौती ऐ। इक–दुए दे विचारें कन्नै तालमेल बठाना बड़ा मुश्कल ऐ। पैह्ले दे परिवारें च ते अज्ज दे परिवारें च बड़ा फर्क दिक्खने गी लभदा ऐ। अज्ज परिवारें च बजुर्गें दी अह्मियत भलेआं घट्ट होई गेदी ऐ। सस्स–नूहं दी बनतर बी नेईं दे बराबर ऐ। पुत्तर बी मां ते लाड़ी मझाटै पलचोईयै रेही गेदा ऐ। सस्स–नूंह दे रिश्ते च कौड़तन मती गै दिक्खने गी लभदी ऐ। अज्ज परिवार दी स्थिति गी दिक्खदे होई एह् आक्खना बधीक नेईं होग जे अज्ज आदर्श परिवारें दी अपेक्षा विघटित परिवारें दी गिनतरी मती ऐ जेह्ड़ी इक चिंता आह्ली गल्ल ऐ।

संदर्भ :

1. चम्पा शर्मा, साक सुन्ना प्रीत पित्तल, सफा – 20
2. शकुंतला शर्मा बीरपुरी, पिंजरा, सफा – 61
3. उऐ, उऐ, सफा – 110
4. उऐ, उऐ, सफा – 49
5. सुदर्शन रत्नपुरी, पंजाए दा नोट, सफा – 17
6. ओ.पी. शर्मा 'सारथी', यात्रा, सफा – 19
7. तारा दानपुरी, केईं जन्म, सफा – 27
8. चम्पा शर्मा, साक सुन्ना प्रीत पित्तल, सफा – 40–41

डॉ. प्रीति बाला e-mail : preetybala911@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED PRINT RESEARCH JOURNAL
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. 14, Issue 7-8
पृष्ठ : 189–195

औपनिवेशिक भारत में रेलवे का विकास : आर्थिक एकीकरण और साम्राज्यवादी नियंत्रण का ऐतिहासिक विश्लेषण

श्रीमती माधुरी मालवीय
सहायक प्राध्यापक (इतिहास)
शासकीय महाविद्यालय खजराना, इंदौर (म.प्र.)

सारांश :

उन्नीसवीं शताब्दी में रेलवे साम्राज्यवादी विस्तार और औद्योगिक तकनीक मैं दोनों का प्रतीक बनकर उभरी। भारत में इसका आरंभ 1853 में हुआ, और अगले सौ वर्षों में यह उपमहाद्वीप के आर्थिक और राजनीतिक जीवन का केंद्रीय अंग बन गई। प्रस्तुत अध्ययन इस प्रश्न की जाँच करता है कि रेलवे किस सीमा तक आर्थिक एकीकरण का साधन थी और किस सीमा तक औपनिवेशिक नियंत्रण का उपकरण। अध्ययन ऐतिहासिक–विश्लेषणात्मक पद्धति पर आधारित है और प्रकाशित प्रशासनिक दस्तावेजों, समकालीन आर्थिक आलोचना तथा प्रमाणित द्वितीयक शोध–साहित्य का समीक्षात्मक पाठ करता है। विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि रेलवे ने बाजारों, नगरों और लोगों के बीच संपर्क वास्तव में बढ़ाया, पर इसका वित्तपोषण, मार्ग–निर्धारण और प्राथमिकताएँ औपनिवेशिक हितों से गहराई से निर्देशित थीं। आर्थिक एकीकरण और साम्राज्यवादी नियंत्रण परस्पर विरोधी नहीं, बल्कि प्रायः एक–दूसरे को सशक्त करने वाले परिणाम थे। निष्कर्ष यह है कि रेलवे की ऐतिहासिक विरासत को उसके घोषित उद्देश्यों, वास्तविक उपयोग और अनपेक्षित परिणामों मैं तीनों के आधार पर ही समझा जा सकता है।

प्रमुख शब्द :

औपनिवेशिक भारत, रेलवे, आर्थिक एकीकरण, साम्राज्यवाद, गारंटी प्रणाली, औपनिवेशिक व्यापार, भारतीय श्रम।

प्रस्तावना :

उन्नीसवीं शताब्दी में रेलवे केवल यातायात का साधन नहीं थाय यह साम्राज्यों के विस्तार और नियंत्रण का नया व्याकरण था। ब्रिटेन की औद्योगिक क्रांति से निकली यह तकनीक शीघ्र उपनिवेशों तक पहुँची, और भारत में इसका सबसे विस्तृत नेटवर्क बना। भारत में रेलवे शुरू करने के पीछे सार्वजनिक रूप से दिए तर्क विकास और आधुनिकीकरण के थे। व्यापार को गति देना, दूरस्थ क्षेत्रों को जोड़ना, अकाल–राहत। पर प्रशासनिक पत्राचार की जाँच करने पर दूसरी परत सामने आती हैरू कच्चे माल को बंदरगाहों तक लाना, सेना का तीव्र संचालन, और शासन का सुदृढ़ीकरण। ये दोनों उद्देश्य परस्पर अपवर्जी नहीं थे। यही इस अध्ययन का

प्रस्थान–बिंदु है। 16 अप्रैल 1853 को बॉम्बे के बोरी बंदर से ठाणे तक चली पहली यात्री रेल लगभग 34 किलोमीटर की दूरी प्रतीकात्मक रूप से इस नए युग का आरंभ मानी जाती है। पर यह घटना किसी शून्य से नहीं आई, इससे पहले के दशक में ही रेलवे प्रस्ताव और गवर्नर–जनरल डलहौजी का प्रसिद्ध 'रेलवे मिनट' (1853) नीतिगत दिशा तय कर चुके थे। इतिहासकारों के बीच रेलवे के प्रभावों पर गहरा मतभेद रहा है। कुछ इसे आधुनिकीकरण का प्रमाण मानते हैं, कुछ शोषण का साधन। यह शोध–पत्र न रेलवे को केवल 'उपहार' मानता है, न केवल 'लूट का उपकरण'। केंद्रीय तर्क यह है कि रेलवे विरोधाभासी संस्था थी, जिसने आर्थिक एकीकरण को संभव बनाया और उसी प्रक्रिया में औपनिवेशिक नियंत्रण को अधिक प्रभावी भी बनाया।



चित्र 1. लगभग 1900 में बॉम्बे का विक्टोरिया टर्मिनस, जो Great Indian Peninsula Railway के महत्त्वपूर्ण केंद्रों में था। यह स्टेशन औपनिवेशिक रेलवे अवसंरचना और साम्राज्यवादी स्थापत्य के संबंध को दर्शाता है। छायाकार : अज्ञात, लगभग 1900। स्रोत : विकिमीडिया कॉमन्स। Copyright status : Public Domain.

अध्ययन का दायरा, स्रोत और शोध-पद्धति :

अध्ययन की मुख्य समय–सीमा 1853 से 1947 हैय पृष्ठभूमि के लिए इससे पहले के प्रस्तावों का संक्षिप्त उल्लेख किया गया है। शोध ऐतिहासिक, विश्लेषणात्मक और द्वितीयक स्रोतों पर आधारित है। प्रकाशित औपनिवेशिक दस्तावेजों के संदर्भ, समकालीन भारतीय आर्थिक आलोचना (विशेषकर नौरोजी और दत्त की मूल रचनाएँ), तथा प्रमाणित अकादमिक पुस्तकें और समीक्षित शोध–लेख। औपनिवेशिक दस्तावेजों को निष्पक्ष तथ्य मान लेना भूल होगी। प्रशासनिक रिपोर्टों की भाषा प्रायः उपलब्धि प्रदर्शित करने के लिए लिखी गई थी, और उनकी सीमाओं को ध्यान में रखते हुए ही उपयोग किया गया है। यह अध्ययन कोई नया मात्रात्मक आँकड़ा–समुच्चय प्रस्तुत नहीं करता।

इतिहास लेखन और वैचारिक परिप्रेक्ष्य :

रेलवे के इतिहासलेखन में कई धाराएँ रही हैं। औपनिवेशिक प्रशासकों का विवरण रेलवे को आधुनिकीकरण और सभ्यता के प्रसार का प्रमाण मानता था। यह दृष्टिकोण आज स्वीकार्य नहीं, पर उस काल की आत्म–छवि समझने के लिए महत्त्वपूर्ण है। इसके विपरीत राष्ट्रवादी आर्थिक आलोचना खड़ी हुई। नौरोजी (1901) ने अपने 'अपवाह सिद्धांत' में रेलवे–निवेश को उस प्रक्रिया का हिस्सा माना जिसके द्वारा भारत का धन ब्रिटेन की ओर

प्रवाहित होता रहा। दत्त (1902, 1904) ने इसी दिशा में राजस्व–नीति का विस्तृत इतिहास प्रस्तुत किया, जिसमें रेलवे के गारंटीकृत प्रतिफल को भारतीय करदाता पर बोझ के रूप में चिह्नित किया गया। आर्थिक इतिहास की बाद की धारा भिन्न प्रश्न पूछती है। हर्ड (1975) ने मूल्य–आँकड़ों से दिखाया कि रेलवे विस्तार के साथ क्षेत्रीय बाजार अधिक जुड़े। बाजार–एकीकरण अनुभवजन्य रूप से सिद्ध होता है। मैकऐल्पिन (1974) का कार्य इसी परंपरा में है, विशेषकर अकाल के संदर्भ में। कर (1995) ने केंद्र निर्माण–प्रक्रिया और श्रम की ओर मोड़ा रेलवे–निर्माण ब्रिटिश पूँजी–तकनीक तथा लाखों भारतीय श्रमिकों के परिश्रम का संयुक्त उत्पाद था। प्रसाद (2015) ने यात्रा के रोजमर्रा अनुभव मैं श्रेणी–व्यवस्था, भीड़, समय–सारणी को इतिहास–लेखन के केंद्र में रखा। इन धाराओं में सहमति यह है कि रेलवे का प्रभाव एकरूप नहीं था, असहमति यह है कि आर्थिक एकीकरण कितना स्वतंत्र लाभ था, और कितना औपनिवेशिक ढाँचे का उपोत्पाद।

रेलवे की शुरूआत और गारंटी प्रणाली :

भारत में रेलवे के प्रारंभिक प्रस्ताव 1840 के दशक में आए, जब निजी ब्रिटिश कंपनियों ने बॉम्बे और मद्रास प्रेसिडेंसी में मार्ग प्रस्तावित किए। इनमें Great Indian Peninsula Railway (GIPR) और East Indian Railway (EIR) सबसे महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुईं, पहली पश्चिमी भारत में, दूसरी बंगाल–उत्तर भारत में। 16 अप्रैल 1853 को GIPR द्वारा संचालित बॉम्बे–ठाणे यात्री सेवा ने इसे सार्वजनिक रूप से मूर्त रूप दिया। तुरंत बाद डलहौजी के रेलवे मिनट ने नीति स्पष्ट की है। निजी उद्यम निर्माण करेगा, सरकार पर्यवेक्षण रखेगी। निजी ब्रिटिश निवेशकों को आकर्षित करने के लिए अपनाई गई व्यवस्था 'गारंटी प्रणाली' कहलाई। इसके अंतर्गत रेलवे कंपनियों को न्यूनतम प्रतिफल सामान्यतः लगभग पाँच प्रतिशत की गारंटी दी गई, चाहे मार्ग लाभ में हो या हानि में। यह व्यवस्था निवेशकों का जोखिम लगभग समाप्त कर देती थी, जबकि वित्तीय भार भारतीय राजस्व पर पड़ता था। कर (1995) के अनुसार यही व्यवस्था बताती है कि ब्रिटेन से इतनी पूँजी भारतीय रेलवे में क्यों प्रवाहित हुई जोखिम–मुक्त प्रतिफल किसी भी अन्य निवेश से अधिक आकर्षक था। निर्माण–सामग्री, इंजन और प्रबंधकीय कर्मचारी बड़े पैमाने पर ब्रिटेन से आयातित होते थे, जिससे निर्माण का बड़ा आर्थिक लाभ भारत के बाहर चला जाता था। मार्ग–निर्धारण में व्यापारिक सुविधा के साथ सैन्य रणनीति और प्रशासनिक प्राथमिकताएँ भी काम करती थीं। समय के साथ शुद्ध निजी नियंत्रण से क्रमिक सरकारी हस्तक्षेप की ओर बदलाव हुआ, क्योंकि गारंटीकृत भुगतान का बोझ प्रशासन के लिए असहनीय होता गया।

रेलवे नेटवर्क का विस्तार और आर्थिक एकीकरण :

रेलवे नेटवर्क का विस्तार बंदरगाहों को उत्पादन–क्षेत्रों से जोड़ने के तर्क पर आधारित था। कपास, जूट, चाय, गेहूँ और कोयला उन्हीं मार्गों से बंबई, कलकत्ता और मद्रास तक पहुँचते थे। इससे परिवहन–समय में भारी कमी आई, जो बैलगाड़ी या नदी–मार्ग की तुलना में असाधारण था। इसका सबसे स्पष्ट अनुभवजन्य प्रमाण मूल्य–आँकड़ों में मिलता है। हर्ड (1975) ने जिलों के अनाज–मूल्यों का विश्लेषण करके दिखाया कि रेलवे पहुँचने के बाद क्षेत्रीय कीमतें परस्पर निकट आ गईं है। बाजार पहले से अधिक एकीकृत हुए। इसका लाभ किसानों और व्यापारियों को मिला, जिन्हें व्यापक बाजारों तक पहुँच मिली और स्थानीय मूल्य–उतार–चढ़ाव का प्रभाव कुछ कम हुआ। रेलवे–जंक्शनों के इर्द–गिर्द नए व्यावसायिक केंद्र विकसित हुए, और आंतरिक श्रमिक–गतिशीलता बढ़ी है। लोग रोजगार की तलाश में पहले दुर्गम क्षेत्रों तक पहुँच सके। यह परिवर्तन

पारंपरिक परिवहन–व्यवसायों बैलगाड़ी, नाव–परिवहन के लिए कठिन भी सिद्ध हुआ। इन लाभों का वितरण असमान था। निर्यात–उन्मुख फसलों के उत्पादन–केंद्रों को रेलवे–संपर्क प्राथमिकता से मिला, जो क्षेत्र इस व्यापारिक तर्क में फिट नहीं बैठते थे, वे प्रायः नेटवर्क के हाशिए पर रह गए।



चित्र 2. ब्रिटिश भारत में रेलवे मार्गों का 1909 का सामान्य मानचित्र। नेटवर्क का विस्तार दूरस्थ क्षेत्रों को प्रमुख नगरों और बंदरगाहों से जोड़ता दिखाई देता है, लेकिन इसकी संरचना औपनिवेशिक व्यापार और प्रशासनिक प्राथमिकताओं को भी प्रतिबिंबित करती है।

निर्माता : John Bartholomew and Company, Edinburgh Geographical Institute। मूल स्रोत : Imperial Gazetteer of India, Volume 25, 1909। स्रोत : विकिमीडिया कॉमन्स। Copyright status: Public Domain.

साम्राज्यवादी व्यापार, राजस्व और सैन्य नियंत्रण :

रेलवे नेटवर्क की संरचना का विश्लेषण करने पर स्पष्ट पैटर्न उभरता है। अधिकांश प्रमुख मार्ग बंदरगाहों की ओर केंद्रित थे। यह संयोग नहीं था। कच्चे माल को बंदरगाहों तक पहुँचाना और वहाँ से ब्रिटेन को निर्यात करना, तथा ब्रिटिश निर्मित वस्तुओं का आंतरिक वितरण रेलवे इन दोनों प्रवाहों को गति देती थी। इस अर्थ में रेलवे औपनिवेशिक व्यापार–चक्र का अभिन्न अंग थी। 1857 के विद्रोह के बाद सैन्य विचार रेलवे–नीति में और स्पष्ट हुआ। सैनिकों और सैन्य सामग्री का तीव्र परिवहन दमन में व्यावहारिक सीमा सिद्ध हुआ था, और इसके बाद रणनीतिक तथा सीमावर्ती रेलमार्गों को प्राथमिकता मिली। रेलवे नेटवर्क ने संचार और प्रशासनिक निगरानी के विस्तार को भी संभव बनाया, जिससे केंद्रीय सत्ता दूरस्थ क्षेत्रों तक पहुँच सकी। माल–भाड़े और यात्री–सेवा की प्राथमिकताओं में असंतुलन भी दिखाई देता है। निर्यात–उन्मुख माल–भाड़े को प्रायः यात्री–सुविधा से अधिक महत्त्व मिला। अलग–अलग गेज और प्रशासनिक ढाँचों ने भी नेटवर्क की एकरूपता को सीमित किया। रेलवे और अकाल का संबंध इस अध्याय की सबसे जटिल बहस है, और इसे सरल नहीं बनाया जाना चाहिए।

एक पक्ष यह है कि रेलवे ने संकटग्रस्त क्षेत्रों तक खाद्यान्न पहुँचाना संभव बनाया, और बाजार–एकीकरण से कीमतों की सूचना तेजी से फैली। मैकऐल्पिन (1974) से स्पष्ट होता है कि रेलवे पहुँचने के बाद क्षेत्रीय अनाज–बाजार अधिक जुड़े, जिससे सैद्धांतिक रूप से आपूर्ति बेहतर हो सकती थी। पर यह पूरी तस्वीर नहीं है। बाजार–एकीकरण का अर्थ यह भी था कि संकट के समय अनाज उसी दिशा में जा सकता था जहाँ

क्रय–क्षमता हो, न कि जहाँ आवश्यकता सबसे अधिक और अकालग्रस्त क्षेत्रों में क्रय–शक्ति की कमी इस समस्या का केंद्र थी। यह बहस आज भी जारी है कि क्या रेलवे कुछ अवसरों पर प्रभावित क्षेत्रों से अनाज बाहर ले जाने में सहायक बनी, जबकि राहत–नीति औपनिवेशिक प्रशासन के हाथ में रही। 'रेलवे ने अकाल समाप्त किए' और 'रेलवे ही अकाल का कारण थी'। दोनों दावे साक्ष्य से आगे जाते हैं, वास्तविकता क्षेत्र–विशिष्ट थी।

भारतीय श्रम और सामाजिक अनुभव :

रेलवे–निर्माण लाखों भारतीय श्रमिकों के परिश्रम का इतिहास भी है, जिसे आधिकारिक प्रगति–कथाओं में पर्याप्त स्थान नहीं मिला। कर (1995) के अनुसार 1850 से 1900 के बीच लगभग 25,000 मील रेलमार्ग बना, और यह कठिन भौगोलिक परिस्थितियों पहाड़ी घाट, बड़ी नदियाँ, महामारी–प्रवण क्षेत्र में लाखों श्रमिकों को संगठित करने से संभव हुआ। निर्माण–कार्य में यूरोपीय अभियंताओं और भारतीय श्रमिकों के बीच स्पष्ट पदानुक्रम था। तकनीकी पर्यवेक्षण यूरोपीय अभियंताओं के हाथ में रहता था, जबकि श्रम–सघन कार्य खुदाई, तटबंध–निर्माण, पटरी बिछाना भारतीय श्रमिकों की जिम्मेदारी थी। मजदूरी और कार्यस्थल–सुरक्षा की स्थितियाँ प्रायः कठोर थीं। समय के साथ रेलवे–कॉलोनियाँ और नए श्रमिक–समुदाय विकसित हुए, जो नगरीय भारत के सामाजिक भूगोल का हिस्सा बने। कार्यशालाओं में भारतीय तकनीकी कौशल का भी विकास हुआ, यद्यपि उच्च पदों पर यूरोपीय वर्चस्व बना रहा। यात्री अनुभव भी स्तरीकृत था। प्रसाद (2015) के अनुसार श्रेणी–आधारित डिब्बे विशेषकर तीसरी श्रेणी की भीड़भाड़ रेलवे–यात्रा को जाति, वर्ग और नस्ल के अनुसार भिन्न अनुभव में बदल देते थे। स्टेशन एक ऐसा सार्वजनिक स्थान भी बना जहाँ सामाजिक समूह एक–दूसरे के सामने आते थे। यह निकटता कभी असहजता का कारण बनी, कभी नए संपर्क का माध्यम।



चित्र 3. ब्रिटिश भारत में रेलवे निर्माण कार्य में लगे भारतीय श्रमिक। यह चित्र उस श्रम को सामने लाता है जिसे औपनिवेशिक रेलवे की प्रगति संबंधी आधिकारिक कथाओं में अक्सर पर्याप्त स्थान नहीं मिला। छायाकार : William Henry Jackson,1895। स्रोत : विकिमीडिया कॉमन्स। Copyright status: Public Domain.

रेलवे, राजनीतिक गतिशीलता और राष्ट्रवाद :

रेलवे ने अलग–अलग प्रांतों के लोगों के बीच संपर्क को उस स्तर पर बढ़ाया जो पहले कल्पना से बाहर

था। समाचारपत्र, राजनीतिक साहित्य और विचार अब रेल–मार्गों के सहारे तेजी से फैल सकते थे। विद्यार्थी, व्यापारी, श्रमिक और राजनीतिक कार्यकर्ता सभी की गतिशीलता बढ़ी, और भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस जैसे संगठनों का अखिल–भारतीय स्वरूप काफी हद तक इसी सुविधा पर निर्भर था। विडंबना यह है कि यही नेटवर्क निगरानी और नियंत्रण का साधन भी था। रेल–मार्ग जितनी तेजी से राष्ट्रवादी विचार फैलाते थे, उतनी ही तेजी से प्रशासन और पुलिस को भी पहुँचाते थे। रेलवे ने एक और अनपेक्षित परिणाम दिया। 'अखिल भारतीय' भौगोलिक कल्पना का निर्माण। जो व्यक्ति पहले अपने क्षेत्र से बाहर नहीं गया था, वह रेल–मानचित्र के माध्यम से देश को जुड़ी हुई इकाई के रूप में देखने लगा। भारतीय यात्रियों को स्टेशनों पर नस्लीय भेदभाव का प्रत्यक्ष अनुभव भी हुआ, जो स्वयं राष्ट्रवादी चेतना का स्रोत बना। इस प्रकार जो संस्था औपनिवेशिक उद्देश्यों के लिए बनी थी, उसने अनपेक्षित रूप से उसी शासन के विरुद्ध राजनीतिक गतिशीलता को सशक्त किया।

समग्र मूल्यांकन और चर्चा :

शोध–प्रश्नों को समेटते हुए कुछ निष्कर्ष स्पष्ट उभरते हैं। आर्थिक एकीकरण और साम्राज्यवादी नियंत्रण परस्पर विरोधी नहीं थे। वे एक ही नेटवर्क के माध्यम से कार्यरत थे। बंदरगाह–केंद्रित मार्ग–संरचना दोनों उद्देश्यों की पूर्ति करती थी : व्यापार को गति और शासन को नियंत्रण। लाभ–लागत का वितरण असमान रहा। किसान–व्यापारी जिन्हें विस्तृत बाजारों तक पहुँच मिली, निर्माण–श्रमिक जिन्होंने श्रम और कभी–कभी जीवन से इसका मूल्य चुकाया, और भारतीय राजस्व जिसने गारंटीकृत प्रतिफल का बोझ उठाया। इनकी स्थिति एक जैसी नहीं थी। अल्पकालीन औपनिवेशिक उद्देश्य और दीर्घकालीन संस्थागत विरासत में भेद आवश्यक है। रेलवे जिन उद्देश्यों से बनी, वे उसके स्वतंत्र भारत में उपयोगी सिद्ध होने को पूरी तरह निर्धारित नहीं करते। भारतीय समाज ने इसे अपनाया और नए उपयोग विकसित किए। यात्रा, व्यापार, राजनीतिक संगठन जो निर्माताओं की मूल योजना से आगे निकल गए। रेलवे की उपयोगिता उसके औपनिवेशिक मूल को समाप्त नहीं करती, जैसे मूल उपयोगिता को नहीं नकारता।

निष्कर्ष :

भारत में रेलवे का निर्माण औपनिवेशिक आर्थिक और रणनीतिक उद्देश्यों से गहराई से जुड़ा था। इसने प्रशासन, सैन्य आवागमन और निर्यात–व्यापार को प्रभावी बनाया। साथ ही, उसी नेटवर्क ने बाजारों और लोगों के बीच संपर्क भी बढ़ाया, और नई सामाजिक–राजनीतिक गतिशीलता को जन्म दिया। इसके लाभ और लागत समान रूप से वितरित नहीं हुए। भारतीय श्रम और राजस्व की केंद्रीय भूमिका को उतना ही स्थान मिलना चाहिए जितना तकनीकी उपलब्धि को मिलता रहा है। अंततः, रेलवे की ऐतिहासिक विरासत को उसके घोषित उद्देश्यों, वास्तविक उपयोग और अनपेक्षित परिणामों तीनों के आधार पर समझा जाना चाहिए, किसी एक को नजरअंदाज करना इस विरोधाभासी संस्था की अधूरी तस्वीर देता है।

संदर्भ-सूची :

1. Dutt, R. C. (1902). The economic history of India under early British rule. Kegan Paul, Trench, Trübner & Co.
2. Dutt, R. C. (1904). India in the Victorian Age: An economic history of the people. Kegan Paul,

Trench, Trübner & Co.
3. Hurd, J., II. (1975). Railways and the expansion of markets in India, 1861–1921. Explorations in Economic History, 12(3), 263–288.
4. Kerr, I. J. (1995). Building the railways of the Raj, 1850–1900. Oxford University Press.
5. McAlpin, M. B. (1974). Railroads, prices, and peasant rationality: India 1860–1900. The Journal of Economic History, 34(3), 662–684.
6. Naoroji, D. (1901). Poverty and un-British rule in India. Swan Sonnenschein & Co.
7. Prasad, R. (2015). Tracks of change: Railways and everyday life in colonial India. Cambridge University Press.
8. अज्ञात छायाकार। (लगभग 1900) Victoria Terminus, Bombay (c. 1900) छायाचित्र। विकिमीडिया कॉमन्स। Public Domain? https://commons.wikimedia.org/wiki/File:Victoria_Terminus,_Bombay_(c._1900).jpg
9. Bartholomew, J., & Co. (1909)? India railways 1909 [मानचित्र, Plate 22] Imperial Gazetteer of India, Volume 25] विकिमीडिया कॉमन्स। Public Domain https://commons.wikimedia.org/wiki/File:India_railways1909a.jpg
10. Jackson, W. H. (1895) Indian workers building railway [छायाचित्र]। विकिमीडिया कॉमन्स। Public Domain' https://commons.wikimedia.org/wiki/File:William_Henry_Jackson-Indian_workers_building_railway.jpg

मो. 9752793990
Email : madhurimalviya63@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED PRINT RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 14, Issue 7-8
पृष्ठ : 196–203

पटना के प्रमुख इतिहासकार : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

हिमांशु कुमार, शोधार्थी,
प्रो.(डॉ.) अविनाश कुमार झा, शोध निर्देशक,
इतिहास विभाग, पाटलिपुत्र विश्वविद्यालय, पटना।

सारांश :

पटना का इतिहास, भारतीय इतिहास जितना प्राचीन व गौरवशाली है। पटना, जिसे अतीत में पाटलिपुत्र के नाम से जाना गया। प्राचीन भारतीय सभ्यता व संस्कृति का साक्षीभूत रहा है। इसने समय के साथ बदलते सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक व राजनीति स्वरूपों को ग्रहण करते हुए इसमें अपनी सक्रिय भागीदारी सुनिश्चित की। पटना ना केवल ऐतिहासिक महत्व रखने वाला स्थान है बल्कि यहां उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम दशकों व बीसवीं शताब्दी में इतिहास व पुरातत्व के प्रति निरंतर बढ़े अनुराग ने इसे शोध व इतिहास लेखन के एक केंद्र के रूप में विकसित कर दिया। विशेष रूप से बीसवीं सदी में यहां के इतिहासकारों ने भारतीय इतिहास लेखन में नेतृत्व की भूमिका निभाई। इनके प्रभावशाली व प्रमाणिक इतिहास लेखन से भारत व बिहार के इतिहास का न केवल पुनर्लेखन हुआ बल्कि भारतीय इतिहास को देखने के नये दृष्टिकोणों का विकास हुआ।

काशी प्रसाद जायसवाल, सुविमल चन्द्र सरकार, अनंत सदाशिव अल्तेकर, योगेन्द्र मिश्र, उपेन्द्र ठाकुर, विजय कुमार ठाकुर, रामशरण शर्मा आदि पटना की इतिहास लेखन परंपरा से जुड़े प्रमुख प्राचीन भारतीय इतिहासकारों में से हैं। मध्यकालीन भारत के इतिहास लेखन में इस परंपरा के तीन इतिहासकारों का प्रमुखता से नाम लिया जाता है– सर यदुनाथ सरकार, सैयद हसन अस्करी व क्यामुद्दीन अहमद। आधुनिक इतिहास लेखन में विमान बिहारी मजुमदार व काली किंकर दत्त का नाम पटना के इतिहासकारों में सर्वप्रमुख है। इन इतिहासकारों ने अपने शोध कार्यों से बिहार व भारत के इतिहास को एक नई दिशा प्रदान किया तथा नये ऐतिहासिक विमर्शों का प्रारंभ किया। इस आलेख का उद्देश्य पटना से जुड़े इतिहासकारों के जीवन, उनके इतिहास लेखन का दृष्टिकोण व बिहार तथा भारतीय इतिहास पर उनके प्रभावों का विश्लेषण करना है।

मुख्य शब्द : पटना, बौद्धिक परंपरा, इतिहासकार, इतिहास लेखन, 'पटना स्कूल ऑफ हिस्टोरियोग्राफी', भूमिका, योगदान।

प्रस्तावना :

भारतीय इतिहास विभिन्न नगरों और क्षेत्रों की समृद्ध परंपराओं का एक संगम है और इस ताने–बाने में पटना का स्थान अत्यंत विशिष्ट है। माना जाता है कि वर्तमान पटना ही प्राचीन पाटलिपुत्र का उत्तराधिकारी है, जिसने मौर्य और गुप्त काल जैसे महत्वपूर्ण युगों में भारतीय इतिहास की दिशा तय करने में निर्णायक भूमिका

निभाई। समय के साथ पाटलिपुत्र से पटना और आधुनिक बिहार की राजनीतिक एवं सांस्कृतिक पहचान में बदलाव अवश्य आए, लेकिन इस क्षेत्र का ऐतिहासिक महत्व सदैव बना रहा। पटना की पहचान केवल उसके गौरवशाली अतीत तक सीमित नहीं है। आधुनिक काल में भी यह नगर शिक्षा, साहित्य, प्रशासन, पत्रकारिता और शोध के एक सशक्त केंद्र के रूप में उभरा। विशेष रूप से 1917 में पटना विश्वविद्यालय की स्थापना ने इस क्षेत्र में उच्च शिक्षा और अनुसंधान को एक संस्थागत आधार प्रदान किया। जिससे बिहार में इतिहास के व्यवस्थित अनुसंधान व अध्ययन का मार्ग प्रशस्त हुआ। प्रसिद्ध इतिहासकार थॉमस करलाइल ने कहा था कि "इतिहास असंख्य जीवनियों का सारतत्व है" अर्थात इतिहास अनेक जीवनियों का सार होता है परन्तु यह विडंबना है कि जो बाकी किसी का इतिहास लिख रहा है उनके अपने इतिहास को अपेक्षाकृत कम लिखा जाता रहा है। ऐसे में 'इतिहासकारों का इतिहास लेखन' का विषय महत्वपूर्ण हो जाता है।[1]

बीसवीं शताब्दी के दौरान पटना के इतिहासकारों ने इतिहास को देखने का नजरिया ही बदल दिया। उन्होंने इतिहास के अध्ययन को केवल राजाओं और युद्धों की गाथाओं तक सीमित रखने के बजाय, उसे अभिलेखों, सिक्कों, पुरातात्त्विक अवशेषों, साहित्यिक साक्ष्यों और विदेशी यात्रियों के विवरणों के माध्यम से नए आयाम दिए। इसी दृष्टिकोण ने पटना को धीरे–धीरे इतिहास और पुरातत्त्व के अध्ययन का एक प्रमुख केंद्र बना दिया।

आलेख का उद्देश्य :

इस आलेख का मुख्य उद्देश्य पटना से जुड़े प्रमुख इतिहासकारों के जीवनशैली, कार्यशैली व लेखन–शैली को जानना है। तथा उनके इतिहास लेखन की दृष्टि को बखूबी रेखांकित करना है। इसके द्वारा पटना के इतिहास लेखन परंपरा को प्रकाशित करते हुए, भारतीय इतिहास लेखन में इन इतिहासकारों की भूमिका व योगदान का विश्लेषण करना है। तथा बिहार व भारत के इतिहास पर इनका कितना व किस प्रकार से प्रभाव पड़ा, इसको विश्लेषित करना है।

शोध-पद्धति :

प्रस्तुत शोध–आलेख मुख्य रूप से प्राथमिक व द्वितीयक स्त्रोतों पर आधारित है। इसमें पटना से जुड़े इतिहासकार के पुस्तक, ग्रंथ व शोध आलेख का उपयोग किया गया है। इनके उपयोग के समय इनकी ऐतिहासिकता व विश्लेषणात्मकता व तुलनात्मक अध्ययन पर विशेष जोर दिया गया है। इतिहास लेखन मात्र तथ्यों और घटनाओं का विवरण नहीं है बल्कि यह उस परिस्थिति, परिवेश व मनोदशा का भी परिणाम होता है जिस परिस्थिति, परिवेश व मनोभाव से उसे लिखा जाता है। लेख में इतिहास लेखन के पीछे का इतिहास यानि कि इतिहासकार के इतिहास, मनोदशा व उसके परिवेश को समझने का कोशिश किया गया है। इतिहास लेखन में कार्य–कारण का संबंध महत्वपूर्ण है।

पटना की ऐतिहासिक व बौद्धिक संपदा :

पटना अर्थात पाटलिपुत्र के इतिहास के आरंभ को भारत के इतिहास का आरंभ माना जा सकता है। पाटलिपुत्र के इतिहास को साक्षी मानकर भारत प्रागैतिहासिक युग से ऐतिहासिक युग में प्रवेश करता है जिसके फलस्वरूप भारत के स्वर्णिम इतिहास का आरंभ हुआ। पाटलिपुत्र को इस स्वर्णिम इतिहास के पहले अध्याय के रूप में स्वीकार किया जा सकता है जिसके जर्रे–जर्रे में इतिहास छिपा है।[2] पटना की भौगोलिक अवस्थिति इसे

आर्थिक व राजनीतिक रूप से अधिक महत्वपूर्ण बना देता है। गंगा के तट पर बसे होने के कारण यह प्राचीन काल से ऐतिहासिक संबंध बनाये हुए है। पटना मगध तथा मौर्य साम्राज्य का केंद्र रहा। यहां हमेशा विद्वानों का जमघट रहा है। यहां के कई इतिहासकारों को अंतरराष्ट्रीय स्तर की ख्याति मिली हुई है।[3] मध्यकाल में शेरशाह और अन्य क्षेत्रीय शासकों द्वारा विद्वानों के प्रश्रय देने के कारण पटना की ऐतिहासिक व बौद्धिक परिपक्वता इस समय भी कमोबेश विद्यमान रही। किंतु ब्रिटिश शासन के दौरान पटना व बिहार में इतिहास अध्ययन के प्रति अधिक रूचि विकसित हुई। उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध व बीसवीं सदी में पटना में इतिहास लेखन की समृद्ध परंपरा विकसित होघ गई जिसने 'पटना स्कूल ऑफ हिस्टोरियोग्राफी' की स्थापना किया। जिसका उल्लेख प्रोफेसर जदूनाथ सरकार 'प्रोडक्ट ऑफ पटना स्कूल' के रूप में करते हैं।[4] पटना में संस्थागत रूप से भी इतिहास लेखन के सार्थक प्रयास हुए जिसमें बिहार रिसर्च सोसायटी तथा काशी प्रसाद जायसवाल रिसर्च इंस्टीट्यूट, दो प्रमुख संस्था हैं।

काशी प्रसाद जायसवाल : भारतीय इतिहास का पुनर्निर्माण व राष्ट्रवादी दृष्टिकोण :

पटना के के इतिहास लेखन परंपरा में काशी प्रसाद जायसवाल का नाम अति महत्वपूर्ण है इनका जन्म उत्तर प्रदेश में हुआ था परंतु उनकी कार्यस्थली बिहार रही। प्रोफेसर जायसवाल न केवल एक इतिहासकार थे बल्कि वह एक पुरातत्ववेत्ता, विधिविद्, भाषाविद और पत्रकार भी थे। जो 1914 में पटना आए तथा यहां के बौद्धिक परंपरा और ऐतिहासिक विरासत के अनिवार्य हिस्सा हो गये।[5] ब्रिटिश काल में औपनिवेशिक इतिहासकारों ने भारतीय इतिहास व प्राचीन भारतीय समाज व राजनीति को पूरी तरह से ना काट दिया तथा इसकी भर्त्सना की। इस नकारात्मकता से घिरे हुए भारतीय इतिहास का वास्तविक तथा तथ्यात्मक लेखन कर काशी प्रसाद जायसवाल ने ठोस ऐतिहासिक प्रमाणो के आधार पर औपनिवेशिक इतिहासकारों के भ्रांतियां का खंडन किया। अपने प्रसिद्ध कृति 'हिंदू पालिटी' में उन्होंने भारत की राजनीति संस्थाओं और गणतंत्र परंपराओं का गहन विश्लेषण कर यह सिद्ध किया की प्राचीन काल में भारत में गणतंत्र विद्यमान था। यहां स्वशासन की व्यवस्था पाई गई है। काशी प्रसाद जायसवाल ने प्राचीन भारत के अनेक विषयों पर अपने प्रमाणिक विमर्श प्रस्तुत किए हैं जो आगे के इतिहासकारों के लिए एक मार्गदर्शक का काम करता है। इसके अतिरिक्त उन्होंने बिहार के अनेक संग्रहालयों के निर्माण और यहां शोध गतिविधियों को गति देने के लिए जीवनभर अथक प्रयास किएं। उन्होंने बिहार में ऐतिहासिक चेतन को जागृत करने तथा शोध कार्यों को व्यवस्थित बनाने में अपनी अहम भूमिका निभाई।[6] काशी प्रसाद जायसवाल के लेखन में हिंदू विचार धर्म दर्शन शान गणराज्य सामाजिक व्यवस्था आदि का प्रमुखता से चित्रण है उन्होंने भारतीय इतिहास लेखन के क्षेत्र में एक ऐसी मौलिकता स्थापित की जो आगे चलकर मार्गदर्शन के रूप में सदैव विद्यमान रहा उनके बारे में कहा गया कि 'अकेले किसी एक व्यक्ति द्वारा इतिहास के विभिन्न क्षेत्रों में इतना कार्य नहीं किया गया जितना डॉक्टर जायसवाल ने दासता काल में किया था।'[7]

अनंत सदाशिव अल्तेकर – प्राचीन भारतीय इतिहास के लेखन व पुरातत्व के उत्खनन में अनंत सदाशिव अल्तेकर की भूमिका महत्वपूर्ण है। उन्होंने प्राचीन भारत में महिलाओं की स्थिति, तत्कालीन शिक्षा व्यवस्था, सामाजिक व सांस्कृतिक इतिहास पर बखूबी प्रकाश डाला है। क्षेत्रीय इतिहास के अतिरिक्त पुरातत्वशास्त्र व मुद्राशास्त्र में उनकी रूचि अधिक थी। पटना के कुम्हरार के उत्खनन व इसे प्रकाश में लाने का श्रेय भी प्रोफेसर

अनंत सदाशिव अल्तेकर को दिया जा सकता है।[8] वे स्वयं इतिहास लेखन का कार्य तो करते ही रहे, अपने शोध छात्रों व अन्य इतिहास प्रेमियों के लिए भी हमेशा उपलब्ध रहते थे। वे पटना विश्वविद्यालय के प्राचीन भारतीय इतिहास व पुरातत्व विभाग के प्रथम विभागाध्यक्ष हुए जिनके नेतृत्व में पटना में इतिहास व पुरातत्व के प्रति अगाध श्रद्धा और जिज्ञासा का तेजी से विकास हुआ, जिसने पटना के ऐतिहासिक लेखन परंपरा के लिए व्यापक आधार तैयार किया। प्रोफेसर अलतेकर में राष्ट्रीयता की भावना कूट–कूट कर भरी थी। उन्होंने अपने लेख व पुस्तक इंग्लैंड में नहीं छपवाने का संकल्प लिया था। उनका कहना था कि मैं अपने ग्रंथ को तो कम से कम देसी रूप दे सकता हूं। वे हमेशा सदा खादी वस्त्र पहनते थे। इस प्रकार डॉक्टर अलतेकर का स्वदेश प्रेम अनूठा था।[9]

बिंदेश्वरी प्रसाद सिन्हा : इतिहास और पुरातत्त्व का समन्वय :

बिहार के इतिहास और पुरातत्त्व के क्षेत्र में बिंदेश्वरी प्रसाद सिन्हा का स्थान विशिष्ट है। पटना विश्वविद्यालय में शिक्षक और विभागाध्यक्ष के रूप में उन्होंने प्राचीन भारतीय इतिहास के क्षेत्र में व्यापक शोध किए। उनके कार्यकाल के दौरान अंतिचक–विक्रमशिला, चंपा, ओरियुप और चिरांद जैसे स्थलों पर हुए उत्खनन कार्यों ने पटना विश्वविद्यालय के पुरातत्त्व संबंधी शोध को राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर नई पहचान दिलाई।[10] सिन्हा का मुख्य योगदान इतिहास के निर्माण में बहुआयामी स्रोतों का उपयोग करना था। बिन्देश्वरी प्रसाद सिन्हा ने इतिहास लेखन में पुरातत्व का उपयोग, अभिलेखों का प्रयोग, सिक्का तथा साहित्यिक साक्ष्यों का एक साथ में पिरोनो का वकालत करते हैं। उन्होंने 'ब्वउचतमीमदेपअम भ्पेजवतल व ठपींत' का संपादन किया है जिसमें बिहार को मात्र राजनीतिक दृष्टि से न देखकर इसे भौगोलिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, भाषिक व धार्मिक पक्षों को ध्यान रखते हुए समग्र इतिहास लिखा गया है।

क्यामुद्दीन अहमद : अभिलेखीय, क्षेत्रीय व मध्यकालीन इतिहास का लेखन :

क्यामुद्दीन अहमद ने मध्यकालीन व आधुनिक इतिहास लेखन में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। पटना कॉलेज वद्य पटना विश्वविद्यालय से इन्होंने अपनी शिक्षा पूरा किया। इन्होंने 1962 में पटना विश्वविद्यालय से 'वहाबी मूवमेंट इन बिहार' विषय पर शोध की उपाधि प्राप्त किया।[11] वे के.पी. जायसवाल शोध संस्थान, पटना में'रिसर्च फेलो'के रूप में ईमानदारी पूर्वक एक सच्चे शोधकर्ताओं की तरह इतिहास लेखन में खूब योगदान दिया। के.पी. जायसवाल शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित 'बिहार थ्रू द एजेज' के संपादन में इनकी भूमिका प्रमुख थी।[12] क्यामुद्दीन अहमद के महत्वपूर्ण कृतियां 'दि वहाबी मूवमेंट इन इंडिया', और 'कॉर्पस आफ आरंभिक एण्ड पर्सियन इनस्क्रिप्शन्स इन बिहार' है। अभिलेख के प्रति इनकी रूचि अधिक थी। विरले अभिलेख की खोज करना व उनको पढ़ना इनका पसंदीदा कार्य था। प्रोफेसर अहमद ने दरभंगा राज्य और बेतिया राज के अभिलेखागारों में उपस्थित अभिलेखों का गहन अध्ययन किया और यहां के महत्वपूर्ण अभिलेखों को उजागर किया जिससे बिहार के क्षेत्रीय इतिहास लेखन में सहायता मिली।[13] क्यामुद्दीन अहमद एक अच्छे अनुवाद भी थे, उन्होंने हबीब और निजामी की पुस्तक 'कंप्रेसिव हिस्ट्री ऑफ इंडिया भाग–5, दिल्ली सल्तनत और डॉक्टर नूरुल हसन की पुस्तक 'सम थॉट्स ऑन एग्रेरियन रिलेशंस इन मुगल इंडिया' का उर्दू अनुवाद किया था।[14]

काली किंकर दत्त– राष्ट्रीय इतिहासकार :

डॉ सुबिमल चंद्र सरकार जिन्हें पटना में शोध का बीजारोपण करने वाला माना जाता है, ने अपने निर्देशन

में अनेक शोधार्थियों को प्रशिक्षण देकर बिहार में शोध की गति को बढ़ाया। कालीकिंकर दत्त भी इन्हीं शोधार्थियों में से एक थे, जो आगे चलकर प्रसिद्ध इतिहासकार के रूप में स्थापित हुए।[15] कालीकिंकर दत्त आधुनिक भारत व विशेषकर बिहार के आधुनिक व क्षेत्रीय इतिहास लेखन के लिए प्रसिद्ध हैं। उन्होंने इतिहास लेखन में तथ्य और स्रोतों पर अधिक बल दिया है। वह इतिहास को घटनाओं तक सीमित ना करके उसके तथ्यात्मक तथा क्रमबद्ध लेखन पर जोर देते थे। उनके लेखन में सरकारी अभिलेखों, पत्रों, समकालीन विवरणों और अन्य उपलब्ध प्रमाणों की तुलनात्मक अध्ययन का उपयोग अधिक मिलता है।

पटना में इतिहास लेखन की परंपरा :

यह कहना कि प्राचीन काल में भारतीयों में इतिहास लेखन की परंपरा विद्यमान नहीं थी, सर्वथा गलत होगा। भारत में इतिहास लेखन की परंपरा सदैव विद्यमान थी तथापि यह कम तथ्यात्मक जानकारी प्रदान करती है। बावजूद इसके हर कालखंड में इतिहास लेखन होता रहा है। बिहार इससे अछूता नहीं है। बिहार में पटना इतिहास लेखन का केंद्र रहा है।

पटना में इतिहास लेखन की आधुनिक शुरुआत बिहार का सबसे पहला महाविद्यालय–पटना कॉलेज के इतिहास विभाग की स्थापना (1863) के साथ माना जा सकता है। पटना कॉलेज के कई प्राचार्य इतिहासज्ञ हुए, जिनमें सी.आर.विल्सन, वी.एच.जैक्सन, ई. ए. हॉर्न, आर.पी. खोसला, एच.आर.बथेजा, डॉ एस.सी. सरकार, डॉक्टर के. के. दत्त, डॉ. बी. ए. नारायण प्रमुख हैं।[16] बाद में 1917 में पटना विश्वविद्यालय की स्थापना ने पटना में इतिहास लेखन को गति प्रदान किया। प्राचीन भारतीय इतिहास और पुरातत्व विभाग की स्थापना ने पुरातात्विक स्रोतों और उत्खनन को अधिक बल प्रदान किया जिससे इतिहास लेखन की परंपरा और तेज हो गई। पटना विश्वविद्यालय का इतिहास विभाग विद्वान इतिहासकारों का गढ़ बन गया तथा यहां के शोधार्थी ने शोध कार्य व इतिहास लेखन की एक ऐसी परंपरा का निर्माण किया जिसने लंबे समय तक बेहद प्रभावी और विस्तृत इतिहास निर्माण में अपनी भूमिका निभाई और इसके फल स्वरुप पटना इतिहास लेखन का केंद्र बन गया तथा 'प्रोडक्ट ऑफ पटना स्कूल' और अंततः 'पटना स्कूल ऑफ हिस्टोग्राफी' की परिकल्पना सामने आया।[17]

पटना के इतिहासकारों की ऐतिहासिक प्रवृत्तियां :

पटना के इतिहासकारों को पढ़ने व उनका विश्लेषण करने के पश्चात हम इन इतिहासकारों को मौटे तौर पर चार प्रवृत्तियों में बांट सकते हैं– पहली प्रवृत्ति राष्ट्रीय इतिहास लेखन की है। जिसमें काशी प्रसाद जायसवाल ने प्राचीन भारतीय राजनीतिक संस्थाओं के अध्ययन के माध्यम से भारतीय अतीत की नई व्याख्या प्रस्तुत की। वहीं दूसरी प्रवृत्ति पुरातात्त्विक आधार पर इतिहास लेखन है जिसमें बी. पी. सिन्हा और उनके सहयोगियों ने उत्खनन तथा पुरातात्त्विक सामग्रियों के आधार पर प्राचीन बिहार के इतिहास को जानने का प्रयास किया। तीसरी प्रवृत्ति अभिलेखीय इतिहास लेखन की है जिसमें कयामुद्दीन अहमद जैसे इतिहासकारों ने अरबी–फारसी अभिलेखों और अन्य दस्तावेजों के उपयोग कर इतिहास लेखन किया। चौथी प्रवृत्ति संस्थागत शोध की है। पटना विश्वविद्यालय तथा काशी प्रसाद जायसवाल रिसर्च इंस्टीट्यूट ने इतिहास शोध को व्यक्तिगत प्रयास से आगे बढ़ाकर संस्थागत स्वरूप प्रदान किया। इन सभी प्रवृत्तियों को मिलाकर देखने पर स्पष्ट होता है कि पटना की इतिहास लेखन परंपरा एकरूप नहीं थी। इसमें राष्ट्रीय इतिहास, राजनीतिक इतिहास, पुरातत्त्व, अभिलेख, सामाजिक इतिहास और क्षेत्रीय इतिहास की अनेक धाराएँ सम्मिलित हैं।

बिहार के इतिहास में भूमिका :

पटना के इतिहासकारों ने बिहार के इतिहास को एक नया आकार प्रदान किया तथा उसे राष्ट्रीय संदर्भ में स्थापित किया। अब तक बिहार के किसी अधिक महत्व वाले ऐतिहासिक घटना को ही इतिहास के रूप में स्वीकार किया जाता रहा था परंतु पटना के इतिहासकारों के अथक प्रयासों ने बिहार के इतिहास को दृढ़ता व बहुआयामी स्वरूप दिया। अब बिहार का इतिहास मगध और मौर्य साम्राज्य के इतिहास तक सीमित नहीं रहा बल्कि चंपारण के इतिहास, दरभंगा राज्य का इतिहास जैसे कई अन्य क्षेत्रीय विषयों पर इतिहास लेखन किया गया। पटना के इतिहासकारों ने क्षेत्रीय इतिहास लेखन करके बिहार के लगभग हर क्षेत्र के इतिहास को लिखा। योगेंद्र मिश्र द्वारा लिखा गया वैशाली का इतिहास इनमें सबसे प्रसिद्ध हुआ। इन इतिहासकारों के प्रयासों से अब बिहार का इतिहास केवल राजवंशों की कहानी नहीं बनकर रह गई थी बल्कि यह बिहार के सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, स्थानीय भाषा, ग्रामीण जीवन, पुरातात्विक अवशेष और सामाजिक संस्थाओं पर आधारित इतिहास लिखने की परंपरा विकसित हुई। के.पी. जायसवाल शोध संस्थान व पटना विश्वविद्यालय द्वारा कराये गए पुरातात्विक अन्वेषण जैसे चिरांद और विक्रमशिला का अध्ययन, कुम्हरार का अध्ययन आदि ने बिहार के प्रागैतिहासिक, प्राचीन और मध्यकालीन काल के इतिहास निर्माण में अतुलनीय योगदान दिया।[18]

इतिहास लेखन की सीमाएं :

इतिहास लेखन की अपनी एक सीमा है। कोई भी इतिहासकार किसी समाज या परिवेश का हिस्सा होता है तथा उसके समाज या परिवेश उसके इतिहास लेखन पर स्वतः प्रभाव रहता है। अतः इन इतिहासकारों के मूल्यांकन में हमें अपनी सूक्ष्म और आलोचनात्मक सोच को बनाए रखना चाहिए।[19] प्रारंभिक राष्ट्रवादियों का इतिहास लेखन कमोबेश अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णित था जिसे बाद के शोधकर्ताओं व इतिहासकारों ने समकालीन विधियों का उपयोग कर उनके निष्कर्ष की पुनः जांच किये हैं। इतिहास में समय के साथ–साथ नए साक्ष्य व स्रोत सामने आते हैं जिसके परिणामस्वरूप इतिहास लेखन का निरंतर विकास होता रहता है। पटना का इतिहास लेखन इससे अलग नहीं है। किसी भी इतिहासकार के पास सीमित समय और संसाधन होते हैं उसे इसी सीमित समय और संसाधन में अपना लेखन कार्य करना होता है अतः कोई भी इतिहासकार या कोई भी इतिहास लेखन प्रवृत्ति संपूर्ण इतिहास का लेखन नहीं कर सकती। वहीं पुरातात्विक स्रोत अपने आप में संपूर्ण इतिहास का वर्णन करने में सक्षम नहीं है इतिहास लेखन में पुरातात्विक स्रोतों के साथ–साथ साहित्यिक, अभिलेखीय और पर्यावरणीय साक्ष्य का सामंजस्य बैठना आवश्यक होता है। आधुनिक इतिहास लेखन केवल राजा और सत्ता तक सीमित नहीं है। यह किसानों, श्रमिकों, महिलाओं, पिछड़े लोगों, वंचित समुदायों और हाशिये पर खड़े लोगों पर केन्द्रित है। इस प्रकार पटना के प्राचीन इतिहासकारों के लेखन को वर्तमान सामाजिक, आर्थिक और उपेक्षित वर्गों के अध्ययन के साथ जोड़कर देखना शोध के लिए अधिक कारगर साबित होगा।

पटना के इतिहास लेखन की प्रासंगिकता :

आज का युग सूचनाओं का युग है। सूचनाएं निरंतर अबाध रुप से प्रसारित हो रही है ऐसे में हमें इनका चयन सावधानीपूर्ण करना होगा। इतिहास भी इससे अछूता नहीं है। आज हमें इतिहास पठन व लेखन में सतर्कता बरतनी होगी तथा तथ्यों की सत्यता का जांच अधिक आवश्यक है। ऐसे में पटना के समृद्ध इतिहास लेखन परंपरा अधिक प्रासंगिक हो जाती है जिसमें कि इतिहास को तथ्यों और स्रोतों के आधार पर लिखा गया

है। चाहे काशी प्रसाद जायसवाल की स्रोत–आधारित राष्ट्रीय इतिहास लेखन हो या बी. पी. सिन्हा की पुरातात्त्विक शोध–पद्धति या कयामुद्दीन अहमद का अभिलेखीय स्रोतों पर आधारित इतिहास लेखन आज भी यह शोधार्थियों के लिए एक मार्गदर्शक की तरह है। काशी प्रसाद जायसवाल रिसर्च इंस्टीट्यूट वर्तमान में भी बिहार के इतिहास, पुरातत्त्व और सांस्कृतिक विरासत को संरक्षित रखने के लिए निरंतर कार्यरत है। यह इस दिशा में व्यापक सर्वेक्षण व परियोजनाएं चला रहा है। वास्तव में, पटना के इतिहासकारों का अध्ययन केवल बीते हुए कल को जानना नहीं है, बल्कि यह इस बात को समझने का जरिया भी है कि इतिहास का निर्माण किन स्रोतों, प्रश्नों और शोध–प्रक्रियाओं के माध्यम से किया जाता है।

निष्कर्ष :

पटना की पहचान केवल बिहार की राजधानी के रूप में ही नहीं, बल्कि एक महान ऐतिहासिक और बौद्धिक केंद्र के रूप में भी है। यहाँ की इतिहास लेखन परंपरा ने न केवल बिहार, बल्कि भारतीय इतिहास के अध्ययन को एक नई दिशा प्रदान की है। जहाँ काशी प्रसाद जायसवाल ने औपनिवेशिक इतिहास–दृष्टि के सामने भारतीय स्रोतों को मजबूती से रखते हुए प्राचीन राजनीतिक संस्थाओं को नई दृष्टि दी, वहीं अनंत सदाशिव अल्तेकर ने पटना विश्वविद्यालय में प्राचीन भारतीय इतिहास के संस्थागत अध्ययन की नींव रखी। बिंदेश्वरी प्रसाद सिन्हा ने इतिहास और पुरातत्त्व के समन्वय से बिहार के अतीत की व्यापक व्याख्या की, तो कयामुद्दीन अहमद ने अभिलेखीय अध्ययन के क्षेत्र में विशेष योगदान दिया।

इन विद्वानों की सबसे बड़ी उपलब्धि यह थी कि उन्होंने क्षेत्रीय इतिहास को व्यापक भारतीय इतिहास के अभिन्न अंग के रूप में स्थापित किया। उन्होंने यह सिद्ध किया कि क्षेत्रीय इतिहास, राष्ट्रीय इतिहास का कोई गौण हिस्सा नहीं है, बल्कि वह राष्ट्र के इतिहास को समझने का आधार है। आज जब इतिहास लेखन में नए स्रोत, नई तकनीक और नए सामाजिक दृष्टिकोण सामने आ रहे हैं, तब इन विद्वानों के कार्यों का पुनर्मूल्यांकन करना अनिवार्य हो जाता है। उनके शोध को आधुनिक पुरातात्त्विक साक्ष्यों, सामाजिक इतिहास और अंतर्विषयक अध्ययन के साथ जोड़कर ही हम बिहार के अतीत की एक संतुलित और व्यापक समझ विकसित कर सकते हैं। अतः, पटना की यह बौद्धिक परंपरा भारतीय इतिहास लेखन के विकास का एक अपरिहार्य और महत्वपूर्ण अध्याय है।

संदर्भ-सूची :

1. डॉ. जय श्री मिश्र, बिहार के दिवंगत इतिहासकार और उनका लेखन, सिद्धार्थ पब्लिकेशंस, नई दिल्ली, 2003, भूमिका, पृष्ठ 11
2. डॉ. राणा उदय प्रसाद सिंह, पाटलिपुत्र की विरासत के विविध आयामरूएक अवलोकन, इंटरनेशनल जर्नल ऑफ क्रिएटिव रिसर्च थॉट (IJCRT) वाल्यूम –8, इश्यू –9 सितंबर 2020, आईएसएसएन नंबर–2320–2882
3. डॉ ओमप्रकाश प्रसाद, पटना एक ऐतिहासिक अध्ययन (ई.पू. लगभग 500–1947 ई.), जनरल बुक एजेंसी, पटना, 1989, भूमिका – पृष्ठ 1
4. डॉ. जदूनाथ सरकार, हिस्टोरियोग्राफी देन एण्ड नाउ : मेडिवल बिहार, काशी प्रसाद जयसवाल रिसर्च

इंस्टीट्यूट, पटना, 1989, पृष्ठ 137–141
5. डॉ. जय श्री मिश्र, बिहार के दिवंगत इतिहासकार और उनका लेखन, सिद्धार्थ पब्लिकेशंस, नई दिल्ली, 2003, पृष्ठ 8–9
6. वहीं, पृष्ठ 10–11
7. वहीं, पृष्ठ 14
8. डॉ. जय श्रीमिश्र, भारत के प्रमुख पुरातत्ववेत्ता और इतिहासकार, जानकी प्रकाशन, पटना, 2005, पेज 9
9. वहीं, पृष्ठ 14
10. डॉ. जय श्री मिश्र, बिहार के दिवंगत इतिहासकार और उनका लेखन, सिद्धार्थ पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2003, पृष्ठ 67
11. वहीं, पृष्ठ 154
12. वहीं, पृष्ठ 155
13. वहीं
14. वहीं, पृष्ठ 156
15. डॉ जयश्री मिश्र, बिहार के प्रमुख पुरातत्ववेत्ता और इतिहासकार, जानकी प्रकाशन, पटना, 2005, पृष्ठ 123
16. डॉ जयश्री मिश्र, बिहार के दिवंगत इतिहासकार और उनका लेखन, सिद्धार्थ पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2003, पृष्ठ 1
17. डॉ. जदूनाथ सरकार, हिस्टोरियोग्राफी देन एण्ड नाउरू मेडिवल बिहार, काशी प्रसाद जयसवाल रिसर्च इंस्टीट्यूट, पटना, 1989, पृष्ठ 13
18. डॉ संजीव कुमार, बिहार में पुरातात्विक उत्खनन एवं अन्वेषण (विशेषतः 21वीं सदी से सम्बद्ध), जानकी प्रकाशन, पटना, 2024, पृष्ठ 54–56
19. ई.एच.कार, अनुवादक अशोक चक्रधर, इतिहास क्या है, दि मैकमिलन, नई दिल्ली, 1976, पृष्ठ 31–37

Email : himanshu9731@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED PRINT RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 14, Issue 7-8
पृष्ठ : 204–208

नयी कविता और उसके तत्व

डॉ. प्रणव शर्मा
हेमचंद यादव विश्वविद्यालय, दुर्ग, छत्तीसगढ़।

शोध सारांश :

समय के साथ बढ़ते हुए हिंदी कविता छायावादी प्रभाव से निकलकर, प्रगतिवादी 'सामाजिकता' फिर प्रयोगवाद की 'व्यक्तिकता' में पहुंची। लेकिन इन सभी रूपों में वह अपना प्रभाव खोती गयी। 'वाद' की प्रवृत्ति से कविता को सम्पूर्ण रूप से बाहर समाज के बीच या जनता में लाने का काम नयी कविता के माध्यम से हुआ। प्रयोगवादियों की आत्मकेन्द्रीयता को नयी कविता ने सामाजिक आधार देने का प्रयास किया। अतिशय व्यक्तिकता से सामाजिक सरोकारों की ओर बढ़ते हुए आधुनिक हिंदी कविता नयी कविता के रूप में सामने आयी। इस शोध पत्र के माध्यम से नयी कविता के उद्‌भव और उसके तत्वों पर विचार किया गया है।

बीज शब्द : क्षणवाद, मनोवृत्ति, बौद्धिकता, लघु मानव, मोहभंग।

हिंदी कविता के विकास के सोपान में दूसरा सप्तक के प्रकाशन के साथ ही नयी कविता को भी अस्तित्व मिला। जिसमें नये भाव और नये शिल्प से युक्त कविताएं लिखी जाने लगीं। सन् 1943 से लगभग सन् 1953 तक जो भी नये काव्य लिखे गए 'नयी कविता' उन्हीं का परिणाम कही गयी। अज्ञेय ने नयी कविता को एक नयी मनरूस्थिति का प्रतिबिम्ब कहा। 'नयी कविता' का वर्तमान अर्थ में प्रयोग अज्ञेय के द्वारा आकाशवाणी में प्रसारित एक फीचर में हुआ था। जो 'नये पत्ते' के रूप में सन् 1953 में प्रकाशित हुआ। नयी कविता का आरम्भ सन् 1954 में जगदीश गुप्त द्वारा सम्पादित 'नयी कविता' पत्रिका के प्रकाशन से भी माना जाता है।

स्वतंत्रता के बाद भारतीय जीवन मूल्यों में तेजी से बदलाव हुए। यह बदलाव देश के सांस्कृतिक, सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक आदि सभी स्तरों पर दिखे। यह बदलाव ही नयी कविता के स्वरूप निर्माण में सहायक हुए। नयी कविता की वैचारिक पृष्ठभूमि स्वतंत्रता के बाद बदलती हुई सामाजिक व्यवस्था और मनोवृत्ति के साथ ही बनने लगी थी। इसके नाम के पीछे अंग्रेजी के 'न्यू पोएट्री' आन्दोलन का भी प्रभाव रहा। नयी कविता उसी नयी चेतना से उत्पन्न नये विचारों और जीवन मूल्यों की बात करती है। बौद्धिकता, क्षणवाद और यथार्थवाद को इसके मुख्य वैचारिक आधारों के रूप में देखा जा सकता है।

स्वतंत्रता के बाद स्थापित सरकार की नीतियाँ आम जनता के लिए लाभकारी साबित नहीं हुई थीं। सरकार के द्वारा चलाए गए विभिन्न योजनाओं ने भी देश को ऋणों के बोझ में डूबा दिया था। सामान्य आदमी पर महंगाई का बोझ बढ़ता गया। पूंजीवाद को अधिक बल मिलने लगा। एक वर्ग देश की राजनीतिक स्थिति को स्वीकार करते हुए सुविधावादी हो गया तो दूसरी ओर एक ऐसा वर्ग था जिसने शासन के निष्ठुर और शोषण

भरे तंत्र को नकार दिया। जिनके प्रभाव में हिंदी कविता की दुनिया में नकार भाव से भरे हुए कवियों की कतार बढ़ने लगी।

नयी कविता जहां व्यक्तिक आयाम के साथ सामाजिक होते हुए अपने दायित्वों को निभाती दिखी वहीं समाज में नये मूल्यों को भी प्रतिष्ठित करने लगी थी। लेकिन नये मूल्यों को प्रतिष्ठित करते हुए उसने अपने ऐतिहासिक महत्व को नजरअंदाज करने कोशिश नहीं की। लक्ष्मीकान्त वर्मा के अनुसार – "नये कवि के नयेपन में ऐतिहासिक, वैयक्तिक, सामाजिक और आत्म–व्यंजक सत्य के वे आयाम और धरातल विकसित हुए हैं जो परम्परा से भिन्न होते हुए भी, सभी सार्थक एवं समर्थ रूप में नयी अभिव्यंजना को अवतरित करते हैं।"[1]

नयी कविता छायावाद की रोमांटिक, आध्यात्मिक और रहस्य भरी आंतरिक दुनिया से दूर निकल आए व्यक्ति की कविता कही जा सकती है। इसमें व्यक्ति के व्यक्तिगत कुंठाओं, दमित और विभत्स विचारों को दबाने की कोशिश नहीं की गई। जबकि वह उन सभी भावों और विचारों को और भी मुखर ढंग से सामने लाती है। नयी कविता में ऐसी कई प्रवृत्तियां रहीं जो उसके विकसित होने का कारण बनीं। जिसमें पीड़ा–बोध, लघु मानव की महत्ता, यथार्थवाद, क्षणवाद, आधुनिकता, अस्तित्ववाद मुख्य हैं।

नयी कविता अनुभूति–जनित कविता है। अनुभूति की अभिव्यक्ति पर ही इसका रुझान है। जीवन सुख और दुःख के दो पलड़ो के बीच ही फलता–फूलता है। दुःख जीवन का ऐसा सच है जिसका सबके जीवन में आना–जाना लगा रहता है। नये कवि को दुःख परिस्थितियों से लड़ने की ताकत देता है। उसके लिए दुःख सहयोगी जैसा साथ रहता है। और उसे सृजन करने के लिए प्रेरणा देने का कार्य करता है। ऐसा सृजन जो जीवन के अन्धकार भरे रास्तों से प्रकाश की ओर ले जाता है। तभी नया कवि कह पाया है :

"दुःख ने मुझको जब–जब तोड़ा
मैंने अपने टूटेपन को
कविता की ममता से जोड़ा,
जहां गिरा मैं
कविताओं ने मुझे उठाया
हम दोनों ने
वहां प्रातः का सूर्य उगाया।"[2]

नई कविता आम आदमी के पीड़ा–बोध की अभिव्यक्ति है। नई कविता का कवि आदमी की विवशता, अकेलापन और उसके हताश मन के गहन विचारों को शब्द देता है। स्वतंत्रता के बाद हुए मानवीय मूल्यों के अवमूल्यन तथा व्यक्तित्व के विघटन ने समाज को खोखला कर दिया। जीवन की तमाम विसंगतियों से टकराता हुआ आदमी अपने भीतर ही सिमटकर रह गया। सामाजिक सरोकारों के बीच उसे अनास्था और कटुता ने घेर लिया। जीवन का हर एक दिन उसके लिए पीड़ा देने वाला हो गया। ऐसी पीड़ा जिसमें उसे दुनिया कचरा उठाने वाली गंदगी से भरी गाड़ी प्रतित होने लगी –

"कूड़े से भरी गाड़ी
खड़ी है गली के बीच
भंगी का इंतजार

गन्दगी का संसार।"[3]

नयी कविता 'लघु मानव' की कविता कही जाती है। जिसमें स्थूल के स्थान पर सूक्ष्म और महानतम के स्थान पर लघुता को महत्व दिया गया। नये कवि ने उस लघु मानव के जीवन को विषय बनाया जिसे समाज ने उपेक्षित कर सबसे पीछे खड़ाकर रखा था। वह आदमी जो रोज सड़कों और गलियों पर बदहवास चलता देखा जाता है, जो बड़े शहरों और महानगरों की बड़ी इमारतों को अपने खून–पसीने से खड़ा करता है, जो अपने परिवार का पेट भरने के लिए अपने जीवन की थोड़ी भी चिंता नहीं करता। नयी कविता उसी लघु मानव के जीवन का परिदृश्य को दिखाती है :

"भूख ने उसकी जवानी तोड़ दी
उस अभागिन की अछूती माँग का सिन्दूर
मर गया बनकर तपेदिक का मरीज
'औश सितारों से कहीं मासूम सन्तानें
माँगने को भीख हैं मजबूर
या पटरियों के किनारे से उठा
बेचते हैं, अधजले कोयले।"[4]

नये कवि को कल से जुड़ी आकाँक्षा और कोई उम्मीद नहीं रही थी। उसके लिए वर्तमान का क्षण ही सब कुछ था। सामाजिक जीवन हो या व्यक्तिगत जीवन दोनों ही उसके लिए द्वन्द्व से भरे हुए थे। सभी प्रकार के दुःख, तनाव, संत्रास आदि ने उसे जीवन के क्षणभंगुर सत्य की ओर धकेला था। इसलिए उसके पास जो भी है वह मिला हुआ एक क्षण है। और उसी एक क्षण में वह अपने अस्तित्व की विराटता को देख लेता है–

"मैंने देखा एक बूंद सहसा
उछली सागर के झाग से
रंगी गई क्षण भर
ढलते सूरज की आग से
मुझको दिख गया
सूने विराट के सम्मुख
हर आलोक छुआ अपनापन।"[5]

नयी कविता यथार्थवाद की कविता कही जाती है। नये कवि का यथार्थ उनके जिया हुआ हुआ यथार्थ है। जीवन को यथार्थ रूप में देखने और उसी रूप में प्रस्तुत करने का काम नये कवि ने किया है। वह मानवीय संवेदना व विचारों के जाल को यथार्थ की भूमि पर समझने की कोशिश करता है। नयी कविता उस आदमी के जीवन के यथार्थ अभिव्यक्ति से जुड़ी है जो सुबह होते ही रोजगार की तलाश में निकल जाता है। रोजगार जैसी समस्या उसे जिंदगी और मौत के बीच खड़ा कर देती है। वह अपनी परिस्थिति को कोसता हुआ भूखा–प्यासा हर दिन चिन्ता में निकालता है :

"सुबह से तो शाम तक
काम की तलाश में इस गुजरे हुए दिन की

निरर्थता की आग में जलता–धुआँता हुआ
जिन्दगी की दुनिया को कोसता
मैं रास्ते पर चलता हूँ कि
भयंकर दुःस्वप्न–सा, सामने––
आँखों के सामने वह ढँका हुआ कुहरे से...
दिखता पहाड़ स्याह![6]

आजादी के बाद गाँव और छोटे शहरों में रहने वाले लोग अपने भविष्य की चिंता से अच्छे जीवन की तलाश के लिए बड़े शहरों और महानगरों की ओर प्रस्थान करने लगे थे। जीने के अपने तौर–तरीकों से अलग वे महानगरी संस्कृति और संस्कारों से परिचित हुए। कुछ लोग उन संस्कारों में ढल गए तो कुछ इन सबके बीच टकराव महसूस करने लगे। इन दोनों में नया कवि भी शामिल था। महानगर के द्वन्द्व भरे जीवन के यथार्थ को व्यंजक ढंग से कहते हुए नए कवि ने लिखा है :

:साँप! तुम सभ्य तो हुए नहीं,
नगर में बसना भी तुम्हें नहीं आया
एक बात पूछूं – (उत्तर दोगे?)
तब कैसे सीखा डँसना
विष कहाँ पाया?'[7]

आजादी के बाद सरकार के जन–विरोधी कार्यों ने सबको निराश किया। जिससे जनता में तत्कालीन राजनीति के स्वरूप से विद्रोह जैसे स्वर निकलकर आये। इस समय लिखी जाने वाली कविताओं को मोहभंग की कविता भी कहा गया। इन कविताओं में सत्ताधारियों का आम जनता के प्रति निष्ठुरता को दिखाया गया। सत्ता में ऐसे राजनेता भरे पड़े थे जो जनता के लिए कुछ नहीं करते और स्वयं सभी विलासों में लिप्त अपने पदों का लाभ उठाते रहते थे। नया कवि उनके सरकारी बंगले, दफ्तर, बड़ी गाड़ियों, तमाम सुख–सुविधाओं और उनके आस–पास रहने वाले लोगों के पर तंज कसता है :

"सजा है रेशम के पर्दों से ड्राइंग रूम
सोडे से, फिनाइल से, और गरम पानी से
धुल रहे बाथरूम टॉवेल रूँए का हाथ में
लाण्ड्री–धुला, गोरा कोठी से निकल रहा बैरा
चपरासी कसे बेल्ट, सेक्रेटरी लिए डायरी,
गेट पर कार खड़ी, लोगों को इन्तजार
कौन आ रहा? लीडर आ रहा![8]

नयी कविता का शिल्प भी अपने पहले की काव्य परम्पराओं के शिल्प से अलग लगता है। कुछ कवियों ने अपनी बात को सीधे और स्पष्ट रूप में कहा तो कुछ ने शब्दों के घुमाव, प्रतीकों और बिम्बों के अधिक प्रयोग से कहने का प्रयास किया। इस तरह शब्दों के नये विन्यास और नयी वाक्य–योजना ने नयी कविता को नया रूप दिया। नये कवियों की निरंतर नये खोज की प्रवृत्ति ने उनकी रचनाओं के शिल्प को हमेशा तरोताजा रखा

है। नयी कविता के प्रतिक, उपमान और उसकी बिंब–योजना एक अलग चमक लिए हुए है जो पहले की काव्य धाराओं में नहीं पाया गया। कुछ जगहों पर उनमें जटिलता दिखती है तो कुछ अत्यंत स्पष्ट और सरल भी हैं। जैसे –

"जिंदगी मरा हुआ चूहा नहीं है
जिसे मुख में दबाये
बिल्ली की तरह हर शाम गुजरे जाये,
और मुंडेर पर कुछ खून के दाग छोड़ जाये।'[10]

निष्कर्ष :

नया युग नये विषय–वस्तु, नयी भाषा और बिम्बों आदि की मांग करता है। जिस मांग को नयी कविता के कवियों ने पूरा करने की कोशिश की। नयी कविता से पहले प्रयोग में लाये गए काव्य–तत्व नयी धारणाओं और अनुभूतियों को ठीक वैसा ही कहने में उतने सफल नहीं पाये गए। इसलिए नया कवि बातों को नये ढंग से कहने का प्रयास करने लगा। उसकी इस प्रवृत्ति से निकली भाषिक संरचना या वैचारिक दृष्टि ने ही कविता को नया स्वरूप दिया। नयी कविता के माध्यम से आधुनिक हिंदी कविता की भाषा और भी पाठन योग्य हुई। व्यंजकता, सरलता, गूढ़ता, विषयों की विविधता और प्रभावित करने की वृत्ति इसके मुख्य गुण माने जा सकते हैं। जिससे नयी कविता का काव्य–बोध सर्वथा नया बना रहता है।

सन्दर्भ :

1. वर्मा, लक्ष्मीकांत, नए प्रतिमान–पुराने निष्कर्ष, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1966, पृष्ठ 173.
2. वही, पृष्ठ 142.
3. अज्ञेय, दूसरा सप्तक, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, वाराणसी, द्वितीय संस्करण, 1970, पृष्ठ 46.
4. अज्ञेय, दूसरा सप्तक, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, वाराणसी, द्वितीय संस्करण, 1970, पृष्ठ 200.
5. अज्ञेय, अरी ओ करुणा प्रभामय, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, वाराणसी, 1959, पृष्ठ 140.
6. मुक्तिबोध, चाँद का मुंह टेढ़ा है, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, वाराणसी, आँठवा संस्करण, 1985, पृष्ठ 94.
7. अज्ञेय, इन्द्रधनु रौंदे हुए थे, सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद, 1957, पृष्ठ 29.
8. अज्ञेय, दूसरा सप्तक, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, वाराणसी, द्वितीय संस्करण, 1970, पृष्ठ 50.
9. अग्रवाल, केदारनाथ, खुली आँखे खुली डैने, साहित्य भंडार, इलाहाबाद, 2009, पृष्ठ 107.
10. जैन, वीरेंद्र, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना ग्रंथावली, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस. 2004, पृष्ठ 314.

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED PRINT RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 14, Issue 7-8
पृष्ठ : 209-216

सांख्य तथा अद्वैत वेदान्त दर्शन में बन्धन और कैवल्य का अवलोकन

अंशु भटनागर, शोधच्छात्रा
डॉ० मधु श्रीवास्तव, शोध निर्देशिका एवं एसोसिएट प्रोफेसर, विभागाध्यक्ष
संस्कृत विभाग, एम०एम०एच० कॉलेज, गाजियाबाद (उ०प्र०)

भारतीय दर्शन की आधारशिला मोक्ष की अवधारणा है। इस बात में किसी भी तरह का कोई सन्देह नहीं किया जा सकता है। मोक्ष के सबसे अधिक महत्व के कारण ही भारतीय दर्शन को मोक्ष का शास्त्र अर्थात् मोक्षशास्त्र भी कहा जाता है। चार्वाक दर्शन को छोड़कर सभी नास्तिक और आस्तिक दार्शनिक मोक्ष को ही परम प्राप्य, परम साध्य और निःश्रेयस रूप में स्वीकार करते हैं।

मोक्ष का अर्थ और उसका स्वरूप :

मोक्ष – कर्मों के बन्धन और दुःखों से सदा के लिए छूट जाना ही मोक्ष है। इसे हमारे हिन्दू धर्म में मानव जीवन के चार पुरुषार्थों जैसे– धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष में सबसे अन्तिम और बड़ा लक्ष्य माना गया है। बन्धन जन्म और मरण का निरन्तर चलने वाला चक्र है। इस चक्र से मनुष्य कभी बाहर नहीं निकल पाता है और इसी में फँसकर सदैव दुःख प्राप्त करता रहता है। इसलिए कहा जाता है कि बन्धन का विनाश ही मोक्ष है। सांख्यदर्शन के मतानुसार दुःखों का सदैव के लिए समाप्त हो जाना ही मोक्ष है। जहाँ तक सांख्यदर्शन का प्रश्न है, तो यह दर्शन आध्यात्मिक, आधिदैविक तथा आधिभौतिक मार्ग से इन तीन प्रकार के दुःखों को स्वीकार करता है और इन्हें ही बन्धन का कारण भी मानता है। सांख्यदर्शन के अनुसार दुःखों की आत्यन्तिक निवृत्ति ही मोक्ष है। सांख्यदर्शन इसको कैवल्य की भी संज्ञा देता है। इस प्रकार से सांख्यदर्शन की अवधारणा में एकमात्र दुःख निवृत्ति का साधन मोक्ष ही है।

जहाँ तक अद्वैत वेदान्त दर्शन का प्रश्न है, तो अद्वैत वेदान्त दर्शन सांख्यदर्शन की उक्त धारणा का समर्थन नहीं करता है क्योंकि सांख्यदर्शन की दृष्टि में जहाँ दुःखों के आत्यन्तिक निवृत्ति को मोक्ष कहा गया है, तो वहीं अद्वैत वेदान्त में शंकराचार्य के अनुसार मोक्ष केवल अज्ञान की निवृत्ति मात्र है। जब तक अज्ञान है (अर्थात् अन्धकार है) तब तक प्रकाश के अभाव में मोक्ष की प्राप्ति कैसे संभव है? शंकराचार्य का यह मानना है कि आत्मा की अपने स्वरूप में अवस्थिति ही मोक्ष है। इनके कहने का अर्थ यह है कि मुक्त आत्मा अपने स्वरूप में स्थित हो जाती है। आत्मा का अपना निजी स्वरूप नित्य शुद्ध तथा चैतन्य है, किन्तु अज्ञान के कारण यह स्वरूप नहीं रह पाता और अज्ञान के कारण ही नित्य आत्मा का अविद्या या शरीर से सम्बद्ध हो जाता है। इसी कारण

पारमार्थिक अशरीरी आत्मा–सांसारिक शरीरी जैसी प्रतीत होने लगती है। अतः जब आत्मा को अपने यथार्थ स्वरूप का ज्ञान हो जाता है तब वह सांसारिक, शरीरी रूप से सदा के लिए मुक्त हो जाती है। यही आत्मा की अपने निजी स्वरूप में अवस्थिति है। इस प्रकार से जहाँ सांख्यदर्शन दुःख से निवृत्ति को कैवल्य के रूप में प्रमाणित करता है तो वहीं आचार्य शंकर अज्ञान से निवृत्ति को मोक्ष मानते हैं।

इस प्रकार विद्या से अविद्या की निवृत्ति को ही आचार्य शंकर मोक्ष के रूप में प्रमाणित करते हैं। आचार्य शंकर के दर्शनानुसार अज्ञान की निवृत्ति और आत्मा के अपने स्वयं के स्वरूप में अवस्थिति दोनों एक ही हैं। जब अज्ञान का विनाश हो जाता है तब आत्मा अपने को सभी क्रियाओं से रहित, आकाश के समान सर्वव्यापी, नित्य, कूटस्थ, पारमार्थिक, नित्यतृप्त, निरवयव, धर्माधर्म से शून्य तथा शुद्ध ज्योति स्वरूप स्वयं को प्रकाश आदि रूप में अनुभव करने लगती है, बस यही आत्मा की निजी रूप में स्थिति है। आत्मा की यह अवस्थिति अज्ञान की निवृत्ति से ही सम्भव है। जब–जब अज्ञान का पर्दा (आवरण) पड़ा रहेगा तब–तब आत्मा की स्थिति ऐसी नहीं होगी। इसी कारण से ही आदि शंकराचार्य अज्ञान या अविद्या के विनाश को ही मोक्ष कहते हैं।

मिथ्या ज्ञान के विनाश से ही आत्मज्ञान या ब्रह्मज्ञान होता है। यह आत्मज्ञान सर्वात्मभाव है। ब्रह्म ही सर्वात्मभाव रूप ज्ञान है। यही मोक्ष की अवस्था है और यही आत्मा और ब्रह्म की अभिन्नता का भी ज्ञान है। ब्रह्मज्ञानी अथवा आत्मज्ञानी यहाँ पर ब्रह्म हो जाता है। अतः ब्रह्मभाव ही मोक्ष कहा गया है। शारीरक भाष्य में यह ब्रह्मभाव ही ब्रह्मात्मैकत्वज्ञान है। अब हमारे सामने प्रश्न यह उठता है कि आखिरकार यह सर्वात्म ज्ञान अथवा ब्रह्मभाव का साधन क्या है? तो आचार्य शंकर के अनुसार केवल एकमात्र ज्ञान ही उसका साधन है। यहाँ पर कर्म साध्य नहीं वरन् ज्ञान साध्य है। कर्म का फल अनित्य होता है और मोक्ष तो नित्य अवस्था है। अतः मोक्ष केवल ज्ञान का कार्य ही हो सकता है। यह ज्ञान केवल अज्ञान का विनाश है। अतः यह कहा जा सकता है कि ज्ञान की प्राप्ति या अज्ञान के विनाश में कोई अन्तर नहीं है।

सांख्यदर्शन तथा अद्वैत वेदान्त दर्शन के मोक्ष के स्वरूप के उपरोक्त विवेचन से यह प्रमाणित होता है कि दोनों ही दर्शनों में मोक्ष के स्वरूप सम्बन्धी अवधारणा में पर्याप्त भिन्नता है। जहाँ एक ओर महर्षि कपिल केवल दुःख से निवृत्ति को ही मोक्ष मानते हैं तो वहीं दूसरी ओर आचार्य शंकर की दृष्टि में अज्ञान से निवृत्ति ही मोक्ष है। दोनों की ही विचारधाराओं में परस्पर भिन्नता है। क्योंकि सांख्यदर्शन की मूल अवधारणा द्वैतवादी चिन्तन पर आधारित है तो वहीं दूसरी ओर अद्वैत वेदान्त की अवधारणा पूर्णतया अद्वैतवादी है।

सांख्यदर्शन के अन्तर्गत प्रकृति एवं पुरुष नाम से दो तत्त्वों का उल्लेख मिलता है। पुरुष का प्रकृति से संयोग ही बन्धन बताया गया है। यही बन्धन कष्टमय है तथा प्रकृति से पुरुष का वियोग ही मोक्ष है। इस अवधारणा के विपरीत आचार्य शंकर आत्मतत्त्व में अपने स्वरूप में अवस्थिति को मोक्ष मानते हैं। यह स्थिति अज्ञान से निवृत्ति द्वारा ही सम्भव है। इस प्रकार से आचार्य शंकर की मान्यता द्वारा जहाँ अज्ञान से निवृत्ति मोक्ष है तो वहीं सांख्य की मान्यता में दुःख से निवृत्ति मोक्ष है।

सांख्यदर्शन में दुःखों के प्रकार – सांख्य सूत्रकार ने कहा है ''त्रिविधं दुःखात्यन्तनिवृत्तिः'' यह तीन प्रकार के दुःख हैं– 1. आध्यात्मिक, 2. आधिभौतिक तथा 3. आधिदैविक।

- **आध्यात्मिक दुःख :**

यह वो दुःख है जो कि अपने आन्तरिक कारणों से उत्पन्न होते हैं। यह दो प्रकार का होता है– 1.

शारीरिक, 2. मानसिक। इसमें शारीरिक दुःख के अन्तर्गत वात, पित्त, कफ आदि की विषमता से या फिर आहार, विहार आदि के वैषम्य से जो दुःख उत्पन्न होता है, उसे 'आध्यात्मिक शरीर' दुःख कहा जाता है तथा मानसिक दुःख के अन्तर्गत जो काम, क्रोध, ईर्ष्या, राग, द्वेष आदि मन के विकारों द्वारा दुःख उत्पन्न होते हैं, उन्हें 'आध्यात्मिक मानस' दुःख कहा जाता है।

- **आधिभौतिक दुःख :**

यह वो दुःख है जो कि अन्य भूतों अर्थात् अन्य प्राणियों के द्वारा हमें मिलता है। इसके अन्तर्गत साँप, बिच्छू, तत्तैया अथवा किसी अन्य जानवर के काटने से, हिंसक प्राणियों द्वारा हमला करने तथा किसी के मारने–पीटने अथवा कड़वे वचन बोलने से या फिर इसी प्रकार से किसी भी अन्य कारण से होने वाला दुःख इसी तरह की श्रेणी में आता है।

- **आधिदैविक दुःख :**

यह वो दुःख है जो कि वर्षा, आतप, हिमपात, विद्युत्पात, भूकम्प तथा वायु आदि जनित के बाहरी तथा अलौकिक कारणों से होता है। अर्थात् बारिश, सूखा, ओले पड़ना, बिजली गिरना, आँधी–तूफान तथा भूकम्प आदि प्राकृतिक कारणों से उत्पन्न होता है।

यद्यपि आघात् शब्द से सभी परिचित हैं तथापि सर्वजन आघात् के रूप में इसका अनुभव नहीं करते हैं। वह इसलिए कि त्रिविध दुःख में रहने पर भी तथा रक्षण, क्षय, अर्जन, संग और हिंसा में दुःख के होने पर भी उसमें सुख के आरोप से लोगों को विषयों के प्रति उद्वेग और द्वेष नहीं होता है तथा विषयों का परित्याग भी नहीं होता है।

दुःख निवृत्ति के उपाय :

इन उपायों के अन्तर्गत इस मृत्यु लोक में दो उपाय देखे जाते हैं– 1. यह एक साधारण लौकिक उपाय है, जिसमें धन आदि का अर्जन किया जाता है तथा 2. इसमें वैदिक उपायों के द्वारा यज्ञ–याग आदि का अनुष्ठान किया जाता है। इन देखने वाले उपायों में धनार्जन आदि से दुःख की आत्यिन्तिक निवृत्ति नहीं देखी जाती है, क्योंकि धन, धान्य, आलीशान भवन, दास–दासी तथा अन्य विभिन्न प्रकार के सामान रहते हुए भी, यदि किसी भी प्रकार के एक दुःख का अभाव कुछ समय के लिए समाप्त भी हो जाता है तो भी अन्य प्रकार के दुःखों का क्रम बना ही रहता है। फिर ये साधन स्थायी भी नहीं है और बहुत कम समय में नष्ट होने वाले हैं। अतः यह भी सत्य है कि धन आदि दृष्टिगत उपायों से आत्यिन्तिक दुःख निवषत्ति की सिद्धि नहीं होती है। इन लौकिक उपायों के अतिरिक्त दुःख निवृत्ति का वैदिक उपाय भी है। मीमांसकों के अनुसार वैदिक कर्मों से दुःख निवृत्ति का उपाय करना चाहिए। पूरे साल भर चलने वाले ज्योतिष्टोम आदि यज्ञ द्वारा त्रिविध दुःख से निवृत्ति अवश्य होगी। इसको मानने के लिए '**स्वर्गकामो यजेत्**'। (ऋग्वेद) का प्रमाण है।

अविवेक के कारण ही प्रकृति–पुरुष का संयोग होता है, तथा पुरुष बुद्धि के द्वारा स्वयं को समस्त विषयों का कर्ता मानकर दुःखी और सुखी होता है। अतः सांख्य द्वारा स्थापित व्यक्त, अव्यक्त और ज्ञान का विज्ञान ही दुःख की ऐकान्तिक तथा आत्यान्तिक निवृत्ति का सबसे उत्तम साधन है। ऐसा सांख्यकारिका में कहा गया है– ''**तद्विपरीतः श्रेयान् व्यक्ताव्यक्तज्ञ- विज्ञानात्।**'' अतः सांख्यदर्शन के अनुसार तत्त्व ज्ञान ही दुःखनिवृत्ति के रूप में पुरुषार्थ का उपाय है।

बन्धन के प्रकार :

सांख्यदर्शन के अन्तर्गत बन्धन के भी तीन प्रकार माने गए हैं– 1. प्राकृतिक, 2. वैकृतिक तथा 3. दाक्षिण बन्धन। भावागणेश जी ने पञ्चशिख द्वारा रचे गऐ निम्नलिखित श्लोक का उल्लेख किया है, जिसमें यह तीन प्रकार के बन्धन बताए गए हैं–

"प्राकृतेन न बन्धेन तथा वैकारिकेण च।
दक्षिणाभिस्तृतीयेन बद्धौ जन्तुर्विवर्तते।।"

इसी श्लोक का 'उक्तम्' कहकर गौड़पाद भाष्य– (44, 62) में कुछ पाठ भेद से उल्लेख मिलता है।

- **प्राकृतिक बन्धन :**

माठर और जयमङ्गलाकार के अनुसार जो प्रकृति के अलावा और किसी तत्त्व को नहीं मानते उनको प्राकृतिक बन्धन होता है। वाचस्पति मिश्र के अनुसार प्राकृतिक बन्धन उनको प्राप्त होता है जो प्रकृति को ही आत्मा मानते हुए बस उसी की पूजा अर्थात् उपासना करते हैं। अष्ट प्रकृतियों में अभिमान से ही प्राकृतिक बन्धन होता है।

- **वैकृतिक बन्धन :**

प्रकृति के विकारों को ही परमतत्त्व मान लेने से वैकारिक बन्धन प्राप्त होता है। माठर के अनुसार ब्रह्मा आदि में श्रेय–बुद्धि ही वैकारिक बन्धन है। जयमंगलाकार के अनुसार विकार को पुरूषार्थ मानने से वैकारिक बन्धन होता है। भावागणेश के मतानुसार प्रव्रजित पुरूषों का जो शब्दादि विषयों में मानसिक सङ्ग अर्थात् लगाव है, वही वैकृतिक बन्धन है और सांख्यचन्द्रिकाकार के मतानुसार अपनी इन्द्रियों की आत्मबुद्धि द्वारा पूजने से वैकृतिक बन्धन होता है। इन्द्रियों के उपासक दस मन्वन्तर तक दुःख से रहित होकर रहते हैं।

- **दाक्षिण बन्धन :**

दाक्षिण बन्धन के स्वरूप के सम्बन्ध में सभी टीकाकारों में मतभेद हैं। दान, दक्षिणा देने वाले से तथा इष्ट और पूर्त कर्मों के करने से दाक्षिण बन्धन प्राप्त होता है।

सांख्यदर्शन में बन्धन का कारण अज्ञान अर्थात् अविवेक है क्योंकि आत्मा और प्रकृति के भेद का ज्ञान न रहना ही बन्धन है।

यद्यपि बन्धन का साक्षात् कारण अविवेक भी नहीं है, अपितु प्रकृति–पुरुष का संयोग ही है। प्रकृति–पुरुष का संयोग स्वाभाविक नहीं है बल्कि अविवेक ही प्रकृति–पुरुष के संयोग का कारण है। इसलिए कहा जाता है कि इस बन्धन का कारण परम्परा से ही है। क्योंकि अविद्या से प्रकृति–पुरुष का संयोग होता है फिर संयोग से बन्धन होता है। इसमें बन्धन से मुक्त होना ही मोक्ष का अभिप्राय है।

मोक्ष के प्रकार :

तत्त्वसमाससूत्र में बन्धन की भाँति ही मोक्ष को भी त्रिविध माना गया है। तत्त्वसमाससूत्रों के रचयिता आचार्य भावागणेश जी ने मोक्ष के तीन रूपों में निम्नलिखित तरीके से वर्णन किया है–

- ज्ञान का उद्रेक होने पर अज्ञानवृत्तिरूप मोक्ष।
- राग का नाश होने पर इन्द्रियोपशमरूप मोक्ष।
- तृष्णा का नाश हो जाने पर धर्म–अधर्म का अनुत्पादरूप मोक्ष।

अपने मत के प्रमाण में उन्होंने पञ्चषिख के इस वचन का भी उल्लेख किया है–

"आदौ तु मोक्षो ज्ञानेन द्वितीयो रागसंक्षयात्।
कृत्स्नक्षयात् तृतीयस्तु व्याख्यातं मोक्षलक्षणम्।।"

किन्तु भावागणेश इन तीनों प्रकार के मोक्ष को गौण मानते हैं और त्रिविध दुःख की एकान्तिक व आत्यन्तिक निवृत्ति को ही मोक्ष के रूप में स्वीकार करते हैं। इन्होंने अपने मत के समर्थन के लिए न्यायसूत्र (1/1/2) का उल्लेख किया है।

अद्वैत वेदान्त के अन्तर्गत आत्मबोध होने पर अध्यासजन्य मिथ्या बन्धन से छुटकारा पाने का नाम ही मुक्ति अथवा मोक्ष है। वस्तुतः आत्मा सदैव विकाररहित होने के कारण बन्धन एवं मोक्ष के प्रश्न से अतीत है, परन्तु अविद्यावश आत्मा के जीव की श्रेणी में आने पर उसमें जगत् के सम्बन्ध में ममत्व और परत्व इत्यादि अनेकों प्रकार के बन्धन उत्पन्न हो जाते हैं, जिसके कारण से जीव आत्मबोध करने में असमर्थ होता है। आत्मबोध न होने के कारण जीव जगत् की समस्त वस्तुओं से किसी भी प्रकार का कोई सम्बन्ध न होने पर भी अविद्या के कारण अपना मिथ्या सम्बन्ध स्थापित कर लेता है। यही मिथ्या सम्बन्ध मिथ्या बन्धन की जड़ है। जब बन्धन की मूलभूत अर्थात् इस जड़रूपी अविद्या की निवर्षत्ति हो जाती है तब जीव मुक्ति अर्थात् मोक्ष को प्राप्त करता है। यहाँ पर बन्धन एवं मोक्ष की व्यवस्था पारमार्थिक न होकर मायिक ही है।

आचार्य शंकर के अनुसार आत्मबोध की स्थिति मोक्ष कहलाती है। दूसरे शब्दों में यह भी कहा जा सकता है कि जीव का आत्मभाव को प्राप्त करना ही मोक्ष है। आदि शंकराचार्य के मतानुसार वेदान्त में मोक्ष की उपादेयता बन्धन की निवृत्ति मात्र है। वह इसलिए भी कि जब आत्मा स्वभाव से ही मुक्त है तब उसकी मुक्ति की अपेक्षा कैसे की जा सकती है? क्योंकि मायावृत बन्धन अज्ञानी जीव को मोहित किए रहता है, इसलिए ही बन्धन की निवृत्ति के लिए वेदान्त में मोक्ष की उपयोगिता को स्वीकार किया गया है।

अद्वैत वेदान्त दर्शन में मोक्ष ज्ञानस्वरूप है, वह जड़रूप या फिर शून्य रूप नहीं है। इसलिए ही वेदान्त में मोक्ष की स्वात्मानुभव तथा स्वप्रकाशानुभव जैसे शब्दों के द्वारा व्याख्या की गई है। वेदान्त दर्शन का मोक्ष किसी स्थित्यन्तर की बात नहीं करता, जिसमें साधक एक स्थिति को छोड़कर दूसरी स्थिति में आता है अपितु वह सदैव एक ही स्थिति में अपनी आत्मा अर्थात् परब्रह्म में लीन रहता है। अतः अद्वैत वेदान्त के मोक्ष को आत्मावस्थित भी कहा गया है।

अद्वैत वेदान्त में मोक्ष कार्य या उत्पाद्य नहीं है। मोक्ष को किसी कारण द्वारा उत्पन्न कार्य भी नहीं माना जा सकता क्योंकि मोक्ष न तो कर्म का फल है और न ही किसी उपासना का फल है। मोक्ष को कार्य या उत्पाद्य मानने पर वह निश्चित रूप से अनित्य होगा। मोक्ष को मानने वाले इसे नित्य ही मानते हैं।

अद्वैत वेदान्त में चेतन के विभिन्न स्वरूप :

'चैतन्य' भारतीय दर्शन का केन्द्रीय मूलभूत सिद्धान्त है। इस वेदान्त परम्परा में आचार्य शंकर के अद्वैत वेदान्त की आधारशिला यह चैतन्य या चेतन ही है, जो स्वरूप से ही नित्य है व अद्वैत है, किन्तु उपाधि के वशीभूत हो यह शुद्ध, पूर्ण चेतना विभिन्न रूपों में प्रतीत होती है। यह उपाधि कोई और नहीं बल्कि माया अथवा अविद्या ही है।

मोक्ष के साधन :

आचार्य शंकर के अनुसार ब्रह्मज्ञान के अतिरिक्त मोक्ष प्राप्ति का अन्य कोई साधन नहीं है। ज्ञान का अर्थ है कि जिससे निश्चित रूप से मोक्ष की प्राप्ति हो। इसके लिए साधन चतुष्टय बताया गया है।

साधन चतुष्टय :

ज्ञान प्राप्ति के चार साधन हैं जिन्हें साधन चतुष्टय कहा जाता है। ये विवेक, वैराग्य, षट्सम्मति और मुमुक्षुत्व मन को वेदान्तीय ज्ञान के योग्य बनाते हैं।

ज्ञान, कर्म और उपासना :

आचार्य शंकर के अनुसार मोक्ष का साधन केवल ज्ञान है जो मोक्षप्रतिबन्धभूत अविद्या को दूर करता है। कर्म और उपासना चित्त को शुद्ध और एकाग्र बनाने के साधन हैं, जिसके द्वारा शुद्ध और एकाग्रचित्त ज्ञान की ज्योति ग्रहण की जा सके। उपासना ध्यानरूपी एक मानसी क्रिया है। कर्म और उपासना अविद्या में ही सम्भव हैं। ज्ञान और कर्म, प्रकाश और अन्धकार परस्पर विरूद्ध हैं। इनका समुच्चय नहीं हो सकता। सिद्धों के लिए कोई विधि–निषेध नहीं है, अपितु उनकी स्थिति मात्र से लोक कल्याण होता है तथा उनके निष्काम कर्म लोक संग्रह के लिए होते हैं। आदि शंकराचार्य का कर्मिष्ठ जीवन स्वयं इसका प्रमाण है।

अतः स्पष्ट होता है कि शंकर की दृष्टि में मोक्ष का सिद्धान्त पूर्णत्व प्राप्ति का सिद्धान्त है, जबकि महर्षि कपिल की दृष्टि में मोक्ष केवल दुःख निवृत्ति तथा पुरुष का प्रकृति से वियोग मात्र है। अतः यह प्रमाणित होता है कि सांख्यदर्शन एवं वेदान्त दर्शन के मोक्ष सिद्धान्त की अवधारणा में पर्याप्त भिन्नता है। सैद्धान्तिक विभेद है, स्वरूपगत विभेद है। इसके साथ ही दोनों के दृष्टिकोण में भी पर्याप्त भिन्नता है। इस भिन्नता का कारण उनका तात्त्विक दृष्टिकोण है। क्योंकि जहाँ शंकर की दृष्टि में एक ही तत्त्व ब्रह्म सत्ता है तो वहीं महर्षि कपिल की दृष्टि में प्रकृति और पुरुष नामक दो तत्त्व सत्ता है।

अब जहाँ तक जगत् सृष्टि का प्रश्न है तो वहाँ सृष्टि–सम्बन्धी धारणा भी दोनों ही विचारकों की अलग है। एक ओर सांख्यदर्शन के मतानुसार प्रकृति और पुरुष के संयोग से उत्पन्न सृष्टि पूर्णतया सत्य है, प्रत्यक्ष है और कष्टमय है। तो वहीं अद्वैत वेदान्त दर्शन के मतानुसार यह जगत् सृष्टि मात्र माया का परिणाम है जो कि अज्ञान के कारण हैं, अतः मिथ्या है। शंकराचार्य के दृष्टि में एकमात्र तत्त्व ब्रह्म ही सत्य है और यह जगत् पूर्णतया मिथ्या है।

इस प्रकार से यदि सांख्यदर्शन जगत् को पूर्णतया सत्य मानते हुए जगत् के स्वरूप की व्याख्या और त्रिविध दुःख से निवृत्ति को मोक्ष मानता है, तो अद्वैत वेदान्त दर्शन जगत् को मिथ्या बताकर ब्रह्म को सत्य मानते हुए मोक्ष के स्वरूप की व्याख्या करता है।

निष्कर्ष :

सांख्य तथा अद्वैत वेदान्त दर्शन में बन्धन और कैवल्य का अवलोकन करते हुए दोनों ही दर्शनों के मोक्ष सिद्धान्त की व्याख्या से यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि दोनों ही दर्शनों ने मोक्ष को जीवन के अन्तिम ध्येय अर्थात् लक्ष्य के रूप में स्वीकार किया है। यद्यपि मोक्ष के सम्बन्ध में दोनों ही दर्शनों के विचारों में एक मत नहीं है तथापि दोनों की ही विचारधाराओं ने एक ही समान आत्मज्ञान को मोक्ष का आधार माना है। किन्तु दोनों की दृष्टि में ज्ञान के स्वरूप में पर्याप्त भिन्नता है जिसे उक्त तथ्यों के आधार पर दोनों ही दर्शनों की तुलना करते हुए इस

प्रकार से समझा जा सकता है–

- सांख्य दर्शन में त्रिविध दुःखों से निवृत्ति को मोक्ष माना गया है, तो वहीं अद्वैत वेदान्त में अज्ञान से निवृत्ति को मोक्ष माना गया है।
- आध्यात्मिक, आधिभौतिक तथा आधिदैविक दुःख अर्थात् त्रिविध दुःखों के निराकरण के लिए जहाँ सांख्य दर्शन के प्रणयन की आवश्यकता हुई, तो वहीं कर्म, ज्ञान तथा भक्ति योग अर्थात् ब्रह्म ज्ञान द्वारा मोक्ष की प्राप्ति के लिए अद्वैत वेदान्त दर्शन के प्रणयन की आवश्यकता हुई।
- एक ओर जहाँ सांख्य दर्शन में प्रकृति तथा पुरुष नामक दो तत्त्वों को स्वीकृत माना गया है, तो वहीं दूसरी ओर अद्वैत वेदान्त दर्शन में एक ही तत्त्व (आत्मा) को स्वीकृत माना गया है। इस दर्शन के अनुसार किसी अन्य तत्त्व की स्वीकृति यहाँ पर केवल अज्ञान मात्र है।
- सांख्य दर्शन में पुरुष के यथार्थ स्वरूप का ज्ञान ही मोक्ष है। इस स्वरूप में पुरुष अपने को प्रकृति से पूर्णतया भिन्न मानता है, और यही भिन्नता का ज्ञान उसके मोक्ष का आधार है तो वहीं अद्वैत वेदान्त दर्शन में इस प्रकार के भिन्नता के ज्ञान को न मानकर मोक्ष का आधार ब्रह्म ज्ञान की प्राप्ति को माना गया है।
- सांख्य दर्शन के अनुसार जब पुरुष (या आत्मा) में विवेक ज्ञान उत्पन्न होता है, तब उस ज्ञान के उत्पन्न होने मात्र से ही पुरुष का प्रकृति से सदा के लिए वियोग हो जाता है और तब प्रकृति अपनी साम्यावस्था को प्राप्त कर लेती है। यहाँ पर इसे ही मोक्ष कहा गया है। वहीं इसके विपरीत अद्वैत वेदान्त दर्शन में प्रकृति के समान माया की ब्रह्म से प्रथक् अर्थात् स्वतंत्र कोई और सत्ता नहीं है। यहाँ अद्वैत वेदान्त दर्शन में माया एकमात्र केवल ब्रह्म की शक्ति है, अतः ब्रह्म ज्ञान की अवस्था में ब्रह्मज्ञानी को माया अपने अज्ञान से ढक नहीं पाती क्योंकि तब ब्रह्मज्ञानी स्वयं ही ब्रह्ममय हो जाता है। यहाँ पर इसी को मोक्ष कहा गया है।
- अद्वैत वेदान्त दर्शन में जहाँ एक और आचार्य शंकर द्वारा स्वीकृति मुक्त पुरुष पूर्णत्व की प्राप्ति कर लेता है तो वहीं दूसरी ओर सांख्य दर्शन में महर्षि कपिल द्वारा इस प्रकार के पूर्णत्व प्राप्ति की कोई स्वीकृति नहीं है।
- अज्ञान से निवृत्ति का कोई उल्लेख किसी भी प्रकार का सांख्य दर्शन में नहीं मिलता है, जबकि अद्वैत वेदान्त दर्शन में अज्ञान से निवृत्ति तथा आनन्द की प्राप्ति का बोध (अनुभूति) मिलता है।

यद्यपि सांख्य दर्शन में अद्वैत वेदान्त दर्शन के समान ही सदेह एवं विदेह मुक्ति की अवधारणा को स्वीकार किया गया है, तथापि मुक्ति के स्वरूप में सदेह एवं विदेह दोनों ही प्रकार की विचारधाराओं में पर्याप्त भिन्नता है। इस प्रकार से यहाँ पर दोनों ही दर्शनों का तुलनात्मक रूप में वर्णन किया गया है। मेरा भी ऐसा मानना है कि जहाँ पर आनन्द रूपी ज्ञान है वहीं पर इस ज्ञान के द्वारा मोक्ष की प्राप्ति भी सम्भव है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :

1. स्वात्मन्यवस्थानं मोक्षाः। तै०उप०, शा०भा० ब्रह्ममानन्दवल्ली, 2/1
2. आत्मनि एवाविद्या निवृत्ति। मु०उप०, शा०भा०, 1/1/1
3. मिथ्याज्ञाननिवृत्तिमात्र हि मोक्षः, शारीरक भाष्य, ब्रह्मसूत्र भाष्य 1/1/4, 4/4/4
4. ब्रह्मविद् बह्मैव भवति, शा०भा०, मु०उ०, मंत्र 3/2/9
5. ब्रह्मैव हि मुक्तावस्था, शा०भा०, मु०उ०, सूत्र 1/1/4

6. मोक्षज्ञानकार्यमित्युच्यते, बृद०उप०शां०भा० 3/1/13, 4/4
7. सांख्य सूत्रकार महर्षि कपिल, 'सांख्य सूत्र' सांख्य प्रवचन सूत्र, 1/1
8. न दृष्टात्तत्सिद्धिर्निवृत्तेऽप्यनुवृत्तिदर्शनात्।। महर्षि कपिल, सांख्य सूत्र, 1/2
9. सांख्यकारिका, 2 (ईश्वरकृष्ण द्वारा रचित)
10. त्रिविध बंधन, महर्षि कपिल, तत्त्वसमास सूत्र, 19
11. प्राकृतोऽष्टप्रकृतिष्वभिमानरूपः, तत्त्वसमास सूत्र, 1
12. वैकांरिकबन्धां नाम ब्रह्मादिस्थानेषु श्रेयोबुद्धि, सांख्यकारिका, 44
13. ग्रहास्थादीनां कानोपहत्तचेतसां दक्षिणां ददतां दक्षिणाबन्धः, तत्त्वसमास सूत्र, 20
14. त्रिविद्यो मोक्षः, सांख्यसूत्र, 22
15. तत्त्वयाः, तत्त्वसमास सूत्र, 22
16. मानसोल्लास, 2/56 अडयार, मद्रास
17. ब्रह्मभावक्ष मोक्षः। ब्र०सू०शां०भा० 1/1/4
18. अविद्याया अपाय एव हि परप्राप्तिः नाथन्तिरम्। मुण्ड०उप०, शा०भा० 1/1/5
19. स्वात्मन्यवस्थानं परप्राप्तिः। तैत्ति०उप०, शा०भा० सम्बन्ध भाष्य।
20. नित्यश्च मोक्षः सर्वमोक्षवादिभिरूपगम्यते, तैत्ति०उप०, शा०भा०।

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED PRINT RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 14, Issue 7-8
पृष्ठ : 217-223

भारतीय कथा साहित्य में प्रकृति और मनुष्य का अंतर्संबंध : विभिन्न भारतीय भाषाओं की कृतियों के विशेष संदर्भ में

डॉ. शबाब के. आर.
सहायक आचार्य, हिन्दी विभाग
जमाल मोहम्मद कॉलेज, त्रिच्ची, तमिलनाडु।

सार :

प्रस्तुत शोध–पत्र भारतीय कथा साहित्य में प्रकृति और मनुष्य के अंतर्संबंध का विश्लेषण विभिन्न भारतीय भाषाओं की चुनिंदा कृतियों के संदर्भ में करता है। भारतीय साहित्य में प्रकृति पर लिखी गई अधिकतर रचनाएँ नरकेंद्रित (एंथ्रोपोसेंट्रिक) दृष्टि से रची गई हैं, जिनमें मनुष्य नायक और प्रकृति केवल एक वस्तु बनकर रह जाती है। यह अध्ययन जेम्स बूबर के 'मैं–तुम' और 'मैं–यह' संबंध–सिद्धांत के आधार पर यह पड़ताल करता है कि आदिकाव्य रामायण से लेकर बांग्ला, हिंदी, उड़िया और मलयालम जैसी भाषाओं की आधुनिक कृतियों में प्रकृति और मनुष्य के बीच के संबंधों को किस प्रकार दर्शाया गया है। इसी क्रम में जी. आर. इंदुगोपन के मलयालम उपन्यास 'विलायत बुद्धा' का विशेष रूप से विश्लेषण किया गया है, जिसमें एक पेड़ को कथानक के केंद्रीय पात्र के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है, तथा उपन्यास में निहित परजीविता के प्रतीकों की भी व्याख्या की गई है। साथ ही, विभूतिभूषण बंदोपाध्याय के 'आरण्यक', प्रेमचंद के 'गोदान', तकषि शिवशंकरप्पिल्लै के 'चेम्मीन' तथा वैकोम मुहम्मद बशीर की कहानी 'भूमियूडे अवकाशिकल' जैसी कृतियों के माध्यम से प्रकृति–केंद्रित लेखन की व्यापक परंपरा और समकालीन साहित्य में पर्यावरण के प्रति बदलते दृष्टिकोण की भी चर्चा की गई है। अध्ययन यह निष्कर्ष प्रस्तुत करता है कि साहित्य को नरकेंद्रित दृष्टि से आगे बढ़कर प्रकृति और मनुष्य के बीच समान महत्व की दृष्टि अपनानी होगी, तभी पर्यावरण–हितैषी साहित्यिक चेतना संभव है।

बीज शब्द : प्रकृति–मनुष्य अंतर्संबंध, नरकेंद्रित दृष्टि, विलायत बुद्धा, मैं–तुम सिद्धांत (जेम्स बूबर), पर्यावरण–केंद्रित साहित्य।

प्रस्तावना :

प्रकृति, पर्यावरण, प्रदूषण आदि समकालीन साहित्य के लोकप्रिय विषय हैं। मानव और अन्य जीव–जंतुओं का अस्तित्व पर्यावरण के अस्तित्व पर निर्भर है। समकालीन संदर्भ में साहित्य और अन्य साधनों के जरिए पर्यावरण–संरक्षण का महत्व समझाने का प्रयास निरंतर चल रहा है। एक ओर पृथ्वी पर प्राकृतिक त्रासदियाँ

प्रतिदिन बढ़ रही हैं, इसीलिए साहित्य में पर्यावरण–विमर्श पर निरंतर संवाद और चर्चा उतनी ही महत्वपूर्ण है, जितना प्रकृति का शोषण हो रहा है। प्रकृति में मनुष्य के हस्तक्षेप को समझने के लिए पहले प्रकृति के प्रति मानव की विभिन्न दृष्टियों को समझना अनिवार्य है।

भारतीय साहित्य में प्रकृति या पर्यावरण पर विचार करनेवाली रचनाएँ बहुत हैं, लेकिन उनमें अधिकतर कृतियाँ नरकेंद्रित (एंथ्रोपोसेंट्रिक) दृष्टि से लिखी गई हैं। साहित्य की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि उसका विश्लेषण अनेक परिप्रेक्ष्यों से संभव है। साहित्य में नायक के स्थान पर मनुष्य को प्रतिष्ठित करने के विपरीत, प्रकृति को प्रतिष्ठित करना लेखक के लिए एक नवीन साहस है। एंथ्रोपोसेंट्रिक दृष्टि के विपरीत जाकर प्रकृति को केंद्र में रखने से वैचारिक रूप में क्या फर्क होता है? इस प्रकार प्रकृति को नायक या केंद्र बनाकर भारत में कितना साहित्य लिखा गया है? प्रकृति और मनुष्य के बीच के व्यवहार को जेम्स बूबर के अंतर्संबंध–सिद्धांत के जरिये कैसे समझा जा सकता है? 'विलायत बुद्धा' और अन्य भारतीय कृतियों में मनुष्य और प्रकृति का अंतर्संबंध कैसे दर्शाया गया है? कालक्रम के अनुसार उसमें क्या फर्क आया है? इन्हीं प्रश्नों के उत्तर ढूँढना इस अध्ययन की नीयत है।

'विलायत बुद्धा' उपन्यास में मनुष्य और प्रकृति का अंतर्संबंध :

समकालीन मलयालम साहित्य एक ऐसे काल से गुजर रहा है, जिसमें वैचारिक और शिल्पगत रूप में अनेक प्रयोग चल रहे हैं। इस नवउपनिवेशवादी युग में मनुष्य इतना व्यस्त हो गया है कि उसे लंबी साहित्यिक रचनाएँ पढ़ने के लिए अवकाश ही नहीं बचा है। इसलिए आजकल समकालीन साहित्य में उपन्यास के अस्तित्व और पठनीयता पर बहुत वाद–विवाद भी चल रहा है। समकालीन मलयालम साहित्य में जी. आर. इंदुगोपन एक ऐसा सफल नाम है, जिनमें आज भी बहुत सारे लोगों को पुस्तक के सामने बिठाने की क्षमता है। अपनी चित्रात्मक, सहज एवं आंचलिक भाषा के जरिए जी. आर. इंदुगोपन आज समकालीन मलयालम के अग्रणी कथाकारों में उपस्थित हैं। उनके छोटे–छोटे उपन्यास और कहानियाँ थोड़े ही समय में बहुचर्चित हो गई हैं। नाटकीयता और अभिव्यक्ति में चित्रात्मकता के कारण उनकी अनेक रचनाओं को सिनेमा में रूपांतरित किया गया है। उनके द्वारा लिखा गया उपन्यास 'विलायत बुद्धा' एक उपन्यास के रूप में ही काफी चर्चित हुआ था, लेकिन आज इससे संबंधित एक नई खबर आई है कि यह उपन्यास भी सिनेमा बन रहा है। 2021 में श्रेष्ठ निर्देशक का राष्ट्रीय पुरस्कार जीतने वाले साची 'विलायत बुद्धा' को सिनेमा बनाने की तैयारी में थे, परंतु दुर्भाग्यवश उनका देहांत हो गया और अब सिनेमा का निर्माण किसी अन्य निर्देशक के साथ हो रहा है।

'विलायत बुद्धा' उपन्यास का कथानक एक पेड़ के अस्तित्व के इर्द–गिर्द घूमता है, जो दो विपरीत विचार रखने वाले व्यक्तियों (भास्करन् मास्टर और डबल मोहनन्) के बीच खड़ा है। एक के लिए चाहे कुछ भी हो जाए, पेड़ बचाया जाना चाहिए, और दूसरा पेड़ को काट देना चाहता है।

विश्व में चर्चित विचार–विनिमय सिद्धांतों में एक महत्वपूर्ण सिद्धांत है जेम्स बूबर का 'मैं–तुम' (I-Thou) और 'मैं–यह' (I-It) सिद्धांत। 'मैं–तुम' (I-Thou) संबंध के अनुसार मनुष्य का कोई भी संबंध, चाहे वह किसी मनुष्य से हो या जंतु या वस्तु से, उसमें प्रेषक के समान आदर का प्रकटन देखने को मिलता है। लेकिन 'मैं–यह' (I-It) संबंध में हमेशा प्रेषक का वर्चस्व देखने को मिलता है। हमारे साहित्य में बहुत सारी रचनाएँ ऐसी हैं, जिनमें

पर्यावरण तथा अन्य जीव–जंतुओं के बारे में लिखा गया है। लेकिन जेम्स बूबर के अनुसार, इनमें से कितनी रचनाओं में नायक या प्रमुख पात्र के रूप में प्रकृति या जीव–जंतुओं को दर्शाया गया है? यह कहना बहुत आसान है कि हमारा ज्यादातर साहित्य प्रकृति और जीव–जंतुओं पर लिखा गया है, परंतु साहित्य में कथावाचन का स्वर मनुष्य का ही है। अर्थात हमारा ज्यादातर साहित्य नरकेंद्रित (एंथ्रोपोसेंट्रिक) दृष्टि से लिखा गया है और उसमें हमेशा मनुष्य ही नायक बना रहता है। प्रकृति और सस्य–जंतुओं को 'ऑब्जेक्ट' के रूप में ही रखा गया है। इसी संदर्भ में हम 'विलायत बुद्धा' के बारे में चर्चा करेंगे। यह पहले ही बताया गया है कि 'विलायत बुद्धा' उपन्यास में मुख्य पात्र भास्करन् मास्टर और डबल मोहनन् को कितना महत्व है, उतना ही महत्व 'विलायत बुद्धा' नामक पेड़ को भी है। एक लेखक के रूप में उपन्यास के पात्र–विन्यास में इंदुगोपन ने एक श्रेष्ठ साहस किया है कि उन्होंने एक पेड़ को भी मुख्य भागीदारी दी है। हम यह नहीं कह सकते कि लेखक ने 'विलायत बुद्धा' को एक 'ऑब्जेक्ट' के रूप में देखा है, बल्कि यह कह सकते हैं कि उन्होंने विलायत बुद्धा को काफी आदर दिया है। अब यह विश्लेषण करना जरूरी है कि उपन्यास के पात्रों की दृष्टि में नरकेंद्रिता का प्रभाव कितना है।

इसमें हमें बिलकुल संदेह नहीं है कि उपन्यास का केंद्र ही पेड़ का अस्तित्व है, और उपन्यास के मुख्य पात्रों के संघर्ष का आधार भी पेड़ ही है। उपन्यास में भास्करन् मास्टर की इच्छा इतनी ही है कि वे अंत तक पेड़ की रक्षा करें और अपनी मृत्यु के बाद उसी चंदन की लकड़ी से अपनी चिता जलाई जाए। भास्करन् मास्टर के लिए 'विलायत बुद्धा' एक ऐसी वस्तु है, जिसके जरिये वे अपना सारा अभिमान वापस पा सकते हैं। वस्तुतः विलायत बुद्धा एक विशेष प्रकार का अनमोल पेड़ है, और उसकी कीमत एक साधारण चंदन के पेड़ से बहुत ज्यादा है। लेकिन भास्करन् मास्टर के लिए उसकी अनमोलता या कीमत से कोई मतलब नहीं है। सर्वप्रथम, वह उनके आत्माभिमान को वापस लाने का साधन है।

भास्करन् मास्टर और 'विलायत बुद्धा' के बीच यह प्रश्न उठता है कि क्या उनके संबंध में जेम्स बूबर के 'मैं–तुम' (I-Thou) प्रकार का संबंध देखने को मिलता है? नहीं, यह कहना उचित होगा कि भास्करन् मास्टर 'विलायत बुद्धा' को एक पेड़ के रूप में ही देखते हैं, उससे ज्यादा आदर उनमें देखने को नहीं मिलता। वे उस पेड़ की सुरक्षा के लिए अपना जीवन तक कुर्बान करने के लिए तैयार हैं, फिर भी भास्करन् मास्टर के लिए 'विलायत बुद्धा' एक वस्तु ही है।

अब हम डबल मोहनन् और 'विलायत बुद्धा' के बीच के संबंध को देखेंगे। मूलतः डबल मोहनन् एक तस्कर है और 'विलायत बुद्धा' को काटना उनका प्राथमिक उद्देश्य है। लेकिन डबल मोहनन् और विलायत बुद्धा के बीच के संबंध को समझना काफी जटिल है। यहाँ बताया जा चुका है कि पेड़ काटना उनका उद्देश्य है, फिर भी पेड़ के प्रति उनका आदर और प्रेम बहुत विचित्र है। उपन्यास के कुछ संदर्भों में हम यह भी देख सकते हैं कि मोहनन् ने पेड़ को भगवान बुद्ध के रूप में भी प्रतिष्ठित किया है। कुतूहल की बात यह है कि मोहनन् पेड़ की वर्तमान स्थिति से बिलकुल संतुष्ट नहीं है और वह सोचते हैं कि पेड़ को असली मान्यता उसे काटकर बेचने से ही मिलती है। पेड़ एक ऐसी वस्तु है, जिसके साथ मनुष्य बातचीत नहीं कर पाता। लेकिन पाठक देख सकते हैं कि मोहनन् भक्ति और आदर के साथ 'विलायत बुद्धा' से बातचीत भी करते हैं। उपन्यास पढ़कर पाठक में यह विचार आना स्वाभाविक है कि मोहनन् उस पेड़ को केवल एक 'वस्तु' के रूप में नहीं देखते। यह

वास्तविकता है कि उस पेड़ को काटकर बेचने से उन्हें खूब धन मिलेगा, लेकिन मोहनन् और विलायत बुद्धा के बीच का अंतर्संबंध इतना ही सीमित नहीं है। 'मैं–तुम' संबंध की संभावना भी उसमें देखने को मिलती है। एक निश्चित समय तक पेड़ को सुरक्षित रखना भास्करन् मास्टर की नीयत है, और उनसे पेड़ चुरा लेना मोहनन् का उद्देश्य है। उपन्यास पाठक के लिए इसलिए और भी रोचक हो जाता है, क्योंकि जैसे–जैसे उपन्यास आगे बढ़ता है, डबल मोहनन् के मन में कुछ परिवर्तन दिखने लगता है। उसका आत्मसंघर्ष इतना बढ़ जाता है कि एक क्षण में वह सोचता है कि 'विलायत बुद्धा' को नहीं काटना है। पाठक के लिए मोहनन् का यह मानसिक परिवर्तन बिलकुल अप्रत्याशित था। उपन्यास के अंत में परिस्थितियों के दबाव के कारण उसे पेड़ काटना ही पड़ता है। फिर भी मोहनन् के आत्मसंघर्ष के कारण हमें इस बात का ध्यान रखना आवश्यक है कि एक पेड़ का अस्तित्व एक मनुष्य में मानसिक रूप से परिवर्तन लाने में सक्षम हुआ है। डबल मोहनन् के मानसिक परिवर्तन में 'सब्जेक्ट' वह नहीं है। यहाँ 'सब्जेक्ट' 'विलायत बुद्धा' है और मोहनन् 'ऑब्जेक्ट' मात्र है।

उपन्यास का एक अन्य पात्र चैतन्यम् है, जिसकी प्रेरणा से अंत में मोहनन् को पेड़ काटना पड़ता है। चैतन्यम् की दृष्टि में भी 'विलायत बुद्धा' केवल एक 'वस्तु' मात्र है। फिर भी, पेड़ के प्रति जो मनोभाव मोहनन् में उत्पन्न होता है, वह दृष्टि भास्करन् मास्टर की दृष्टि से श्रेष्ठ है।

उपन्यास में परजीविता का प्रतीक :

मानव जीवन और प्रकृति में परजीविता को देखने के लिए चैतन्यम् का चरित्र–सृजन पर्याप्त रूप से सफल है। उपन्यास के अंत में डबल मोहनन् अपने आत्मसंघर्ष को पार करके पेड़ काटता है, जिसके पीछे उसकी प्रेमिका 'चैतन्यम्' की प्रेरणा है। अंत में पेड़ काटकर अपना अभिमान बचाना डबल मोहनन् की नहीं, बल्कि प्रासंगिक रूप में चैतन्यम् की आवश्यकता बन गया। अपनी आवश्यकता की पूर्ति के लिए उसने मोहनन् का इस्तेमाल किया है। सामान्य तौर पर अपनी स्वार्थपूर्ण इच्छा को पूरा करने के लिए वह मोहनन् का आश्रय लेती है। वस्तुतः वह एक प्रकार से परजीविता का प्रतीक है। उपन्यास का गहन अध्ययन करने से हमें पता चलता है कि डबल मोहनन्, भास्करन् मास्टर आदि भी परजीविता के ही प्रतीक हैं, क्योंकि अपनी स्वार्थपूर्ण इच्छाओं की पूर्ति के लिए वे 'विलायत बुद्धा' का इस्तेमाल कर रहे हैं। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि प्रकृति के साथ मनुष्य परजीवी का ही जीवन जी रहा है। विश्व में प्रकृति और मनुष्य के बीच 'परजीविता' के अलावा और भी कई संबंधों की संभावना है, परंतु मनुष्य अधिकतर परजीविता को ही जीना चाहता है।

एक सामान्य उपन्यास से 'विलायत बुद्धा' की विशिष्टता यह है कि मनुष्य को नायक और प्रकृति को 'वस्तु' मानकर पढ़ने वाली परंपरागत दृष्टि के विपरीत, 'विलायत बुद्धा' में एक ऐसी दृष्टि संभव है, जिसमें प्रकृति को नायक और मनुष्य को 'ऑब्जेक्ट' मानने का साहस है। एक साधारण पाठक के लिए इस उपन्यास में भास्करन् मास्टर, डबल मोहनन् इत्यादि पात्र मुख्य हैं और प्रकृति गौण है। परंतु जिस पाठक में ऐसी पठनीयता की चाहत है, जो प्रकृति को मुख्य पात्र के रूप में मानती है, उसके लिए यह 'विलायत बुद्धा' में संभव है।

इसके साथ पाठक या आलोचक के मन में एक महत्वपूर्ण प्रश्न उभरना स्वाभाविक है कि मनुष्य के बदले प्रकृति को 'सब्जेक्ट' के रूप में माननेवाला साहित्य यहाँ क्यों आवश्यक है? इस प्रश्न का सहज–सा उत्तर यह है कि यह पृथ्वी सारे जीव–जंतुओं और अजैविक वस्तुओं का मेल है। पृथ्वी पर सारी जैविक–अजैविक वस्तुएँ

एक परिवार की तरह आगे बढ़ रही हैं। प्रकृति के साथ व्यवहार में मानव का जितना महत्व है, उतना ही महत्व अन्य जीव–जंतुओं और वस्तुओं का भी है। यह विचार मनुष्य में स्थापित करने के लिए साहित्य का दायित्व यह है कि वह मनुष्य और सहजीवियों को समान महत्व से देखनेवाली दृष्टि प्रदान करे। जब साहित्य स्वयं नरकेंद्रित होता है, तब प्रकृति के साथ मानव का व्यवहार पर्यावरण–हितैषी नहीं होता है। मनुष्य की ओर से प्रकृति में अनियंत्रित हस्तक्षेप बढ़ जाता है। इसलिए मानव–जाति जितना प्रकृति के संतुलन के विरुद्ध व्यवहार करती है, उतनी ही आवश्यकता प्रकृति को 'सब्जेक्ट' माननेवाले साहित्य की होती है। उपर्युक्त संदर्भ में 'विलायत बुद्धा' एक महत्वपूर्ण कृति है, जिसमें प्रकृति को जीवन का केंद्र समझाने की ताकत सुरक्षित है।

भारतीय साहित्य में नायक के रूप में प्रकृति :

प्रकृति या पर्यावरण को नायक के रूप में समझते हुए, अन्य भारतीय भाषाओं में एक नवीन पठनीयता कैसे खोजी जा सकती है? महत्वपूर्ण बात यह है कि प्रकृति को सबसे महत्वपूर्ण माननेवाले कई कवि और कथाकार बहुत पहले से ही हमारी भारतीय संस्कृति में रहे हैं। भारतीय संस्कृति के श्रेष्ठ एवं उपलब्ध महाकाव्य रामायण से ही इसका हस्ताक्षर देखने को मिलता है। आदिकवि वाल्मीकि–रचित रामायण में 'किष्किंधा' एक ऐसा अध्याय है, जो जंगल की पृष्ठभूमि पर लिखा गया है। किष्किंधाकांड के आधार पर भारत में कई भाषाओं में कई कवियों द्वारा अलग–अलग पुनर्लेखन और व्याख्याएँ भी उपलब्ध हैं। केरल में सबसे प्रचलित रामायण तुंजत्त रामानुजन एषुत्तछन द्वारा लिखित 'अध्यात्म रामायण' है। अध्यात्म रामायण और एषुत्तछन की अन्य कृतियों की विशिष्टता यह है कि उनमें कथावाचन एक पक्षी द्वारा किया गया है। पक्षी के संवाद के रूप में कविता प्रस्तुत करने की इस शैली को 'किलिप्पाट्टु' कहते हैं।

इससे समझा जा सकता है कि हमारा आदिकाव्य प्रकृति से कितना निकट है। और आधुनिक युग में प्रकृति और साहित्य का अंतर्संबंध कैसा है? अनेक साहित्यिक धाराओं से समृद्ध आधुनिक भारतीय साहित्य पर एक सामान्यीकरण करना कठिन है, फिर भी हम इतना ही कह सकते हैं कि आधुनिक युग में भी पर्यावरण–केंद्रित साहित्यिक रचनाओं से हमारा साहित्य संपन्न रहा है। बांग्ला, हिंदी, उड़िया, मलयालम आदि कई भाषाओं में क्लासिक कृतियाँ प्रकृति पर या प्रकृति से संबंधित हैं। भारतीय साहित्य के सर्वश्रेष्ठ एवं कालजयी उपन्यासों में एक सर्वप्रमुख उपन्यास है, बांग्ला भाषा में विभूतिभूषण बंदोपाध्याय द्वारा लिखित 'आरण्यक'। एक जंगल का सर्वसौंदर्य देखने के लिए 'आरण्यक' उपन्यास पर्याप्त है। हिंदी साहित्य में प्रेमचंद द्वारा लिखित 'गोदान' और अन्य रचनाएँ, तथा उड़िया में फकीर मोहन सेनापति द्वारा लिखित कई उपन्यास, प्रकृति और मनुष्य के अंतर्संबंध तथा किसान जीवन के श्रेष्ठ हस्ताक्षर हैं। मलयालम साहित्य में इस परंपरा के उत्तराधिकारी ज्ञानपीठ से पुरस्कृत तकषि शिवशंकरप्पिल्लै हैं। उनके द्वारा लिखा गया श्रेष्ठ उपन्यास 'चेम्मीन' (हिंदी अनुवाद : 'मछुआरे') का मुख्य पात्र समुद्र है। 'चेम्मीन' उपन्यास में 'समुद्र' को माता के प्रतिरूप के रूप में दर्शाया गया है। उनके द्वारा लिखी गई कहानी 'वेल्लापक्कतिल' का कथानक एक पालतू कुत्ते की दृष्टि से निर्मित है।

मलयालम साहित्य में प्रकृति–मनुष्य अंतर्संबंध के मैनिफेस्टो के रूप में वैकोम मुहम्मद बशीर द्वारा लिखी गई कहानी 'भूमियूडे अवकाशिकल' (भूमि के उत्तराधिकारी) को देखा जा सकता है। कहानी में बशीर ने यह घोषित किया है कि हमारे घर और परिस्थिति में हमारा जितना अधिकार है, उतना ही अधिकार हमारे आसपास

के सांप, छिपकलियों, झींगुरों आदि सभी जीव–जंतुओं का भी होता है। मलयालम में वल्लत्तोल नारायण मेनोन द्वारा लिखी गई कविता को याद करना यहाँ उचित होगा :

"दुनिया मेरा परिवार है, जिसमें ये पौधे, घास और कीड़े परिवार के सदस्य हैं।"

'विश्वबंधुत्व' के बारे में हम बहुत चर्चा करते हैं, लेकिन दुर्भाग्य यह है कि हमारी 'विश्वबंधुत्व' की संकल्पना मनुष्य तक ही सीमित रहती है।

समकालीन साहित्य के संदर्भ में प्रकृति और मनुष्य का अंतर्संबंध :

हम पहले ही समझ चुके हैं कि आधुनिक भारतीय साहित्य में प्रकृति या पर्यावरण–केंद्रित रचनाएँ कम नहीं हैं। बल्कि आजकल एक गंभीर प्रश्न यह उठ रहा है कि आज साहित्य में कितनी ऐसी रचनाएँ लिखी जा रही हैं, जिनमें प्रकृति को नायक या 'सब्जेक्ट' के रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है। संकट यह है कि आजकल साहित्य में प्रकृति या पर्यावरण का स्थान केवल उपभोग की वस्तु के रूप में रह गया है।

हमारे पुराने साहित्य और समकालीन साहित्य में इस प्रकार का अंतर कैसे आ गया है? इस प्रश्न का समाधान मनुष्य की जीवनशैली से जोड़कर समझना पड़ेगा। हम पहले ही कह चुके हैं कि तकषि, फकीर मोहन सेनापति, प्रेमचंद आदि की रचनाओं में हम प्रकृति और मनुष्य के बीच के अंतर्संबंध का सुंदर चित्र देख चुके हैं। इसके साथ एक महत्वपूर्ण चीज यह भी है कि ये सारे उपन्यास मनुष्य के श्रम और अतिजीविता के आधार पर लिखे गए थे। उस समय सामान्य जनता को धरती पर कृषि या किसी अन्य श्रम से जीवन जीना अनिवार्य था। इसलिए मनुष्य में प्रकृति के प्रति एक ऐसे आदर की अनुभूति थी, क्योंकि उन्हें लगता था कि उनका भोजन प्रकृति ही दे रही है। इसीलिए प्रकृति को 'अम्मा' या 'माताजी' मानने में मनुष्य को कोई संकोच नहीं था। परंतु आज स्थिति यह हो गई है कि वैश्वीकरण और उपभोक्ता संस्कृति के कारण लोगों को यह पता ही नहीं चलता कि जो अन्न वे खा रहे हैं, वह प्रकृति की देन है। दुर्भाग्यवश मनुष्य केवल इतना ही सोचता है कि वह पैसा देकर भोजन का उपभोग कर रहा है, लेकिन यह भोजन कहाँ से आया है, यह जानना जरूरी नहीं समझता। पर्यावरण के साथ व्यवहार करने में मनुष्य के बीच में ही फर्क देखने को मिलता है। मुख्यधारा का मनुष्य जितना पर्यावरण पर अनियंत्रित रूप में हस्तक्षेप कर रहा है, उसके विपरीत है आदिवासी समुदाय का प्रकृति के साथ व्यवहार। पढ़े–लिखे मनुष्य अपनी सुख–सुविधाओं के लिए स्वार्थवश प्रकृति का आक्रामक रूप से उपभोग कर रहे हैं। लेकिन आदिवासी संघर्ष का आधार ही जल, जंगल और जमीन है। जी. आर. इंदुगोपन द्वारा लिखी गई 'करिम्पुली' (काला बाघ) नामक कहानी में मुख्य पात्र एक आदिवासी है। वह अपने अधिकारों के मामले में दुर्बल भी है, लेकिन प्रकृति और सहजीवियों पर होनेवाले आक्रमण के खिलाफ आवाज उठाने में नहीं डरता।

हम हमेशा कहते हैं कि साहित्य जीवन का दर्पण है। आजकल प्रकृति के साथ मनुष्य का व्यवहार आक्रामक है, इसी का चित्रण साहित्य में देखने को मिलता है। लेकिन साहित्यकारों और बुद्धिजीवियों को इस महत्वपूर्ण बात को भूलना नहीं चाहिए कि आक्रामक रूप से व्यवहार करने वाली मानव–जाति को सुधारना साहित्य का दायित्व है। परंतु संकट की बात यह है कि हमारा साहित्य–जगत भी एक हद तक समकालीन बाजारवाद और पर्यावरण–विध्वंसवाद का गुलाम बन गया है। आजकल 'विकास' के लिए सत्ता के पास 'विध्वंस' के बिना कोई मार्ग ही नहीं बचा है। सतत विकास जैसा मुद्दा आजकल जितना महत्वपूर्ण है, उतनी ही उपेक्षा

से जनता और सत्ता उसे नकार देते हैं।

संदर्भ सूची :

1. इल्लत्त, प्रभाकरन हेब्बार। 2022। हिन्दी का पर्यावरणीय साहित्य। वाणी प्रकाशन।
2. सिंहल, ओमप्रकाश। 1991। हिन्दी गद्य साहित्य में प्रकृति चित्रण। परिमल प्रकाशन।
3. बंदोपाध्याय, विभूतिभूषण (अनुवाद : हसकुमार तिवारी)। 1957। आरण्यक। साहित्य अकादमी।
4. सेनापति, फकीर मोहन (अनुवाद : युगजीत नवालपुरी)। 2017। छह बीघा जमीन। साहित्य अकादमी।
5. इंदुगोपन्, जी. आर.। 2020। विलायत बुद्धा। डी.सी. बुक्स, कोट्टयम।
6. बशीर, वैकम मुहम्मद। 2017। नीलवेलिच्चवुम् मट्टू प्रधान कथकलुम् (मलयालम)। डी.सी. बुक्स, कोट्टयम।

jmc.shabab@gmail.com
7025666189

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED PRINT RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 14, Issue 7-8
पृष्ठ : 224–228

उस्ताद रईस ख़ाँ की सितार वादन परंपरा, शैली एवं कलात्मक योगदान : एक गुणात्मक अध्ययन

Prabhjot Kaur, Research Scholar
Dr. Ravjot Kaur, Associate Professor
Lovely Professional University.

सारांश :

भारतीय शास्त्रीय संगीत के विकास में सितार वादन की परंपरा का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। इस परंपरा को समृद्ध करने वाले कलाकारों में उस्ताद रईस खघँ का नाम विशिष्ट रूप से उल्लेखनीय है। उनकी कला में पारंपरिक संगीत–संस्कार, गायकी अंग, मींड प्रधान स्वर–विन्यास, लयात्मक दक्षता तथा भावपूर्ण अभिव्यक्ति का विशिष्ट समन्वय दिखाई देता है। प्रस्तुत शोध–पत्र में उस्ताद रईस ख़ाँ के जीवन–संदर्भ, संगीत शिक्षा, वादन शैली, कलात्मक दृष्टिकोण तथा व्यावसायिक एवं सांस्कृतिक योगदान का गुणात्मक अध्ययन किया गया है। अध्ययन का उद्देश्य किसी अन्य कलाकार के साथ तुलना करना नहीं, बल्कि रईस खघँ की कला को उसके अपने ऐतिहासिक, सांगीतिक और सांस्कृतिक संदर्भ में समझना है।

मुख्य शब्द :

उस्ताद रईस ख़ाँ, सितार, गायकी अंग, मींड, इमदादखानी परंपरा, वादन शैली, हिंदुस्तानी शास्त्रीय संगीत, गुणात्मक अध्ययन।

1. प्रस्तावना :

हिंदुस्तानी शास्त्रीय संगीत में वाद्य–संगीत की परंपरा कलाकार की साधना, गुरु–शिष्य परंपरा और व्यक्तिगत रचनात्मकता के निरंतर अंतःसंबंध से विकसित हुई है। सितार ने इस परंपरा में विशेष प्रतिष्ठा प्राप्त की है। सितार की प्रकृति ऐसी है कि कलाकार मींड, गमक, मिजराब तथा विभिन्न अलंकारों के माध्यम से स्वर को गतिशील और अभिव्यक्तिपूर्ण रूप प्रदान कर सकता है। उस्ताद रईस ख़ाँ इसी व्यापक परंपरा के एक महत्वपूर्ण कलाकार थे। उनके वादन में गायकी के स्वरूप को सितार की तकनीकी संभावनाओं के साथ जोड़ने का प्रयास स्पष्ट दिखाई देता है। उनके संबंध में प्रकाशित सामग्री उन्हें ऐसे कलाकार के रूप में प्रस्तुत करती है जिन्होंने सितार को केवल मंचीय शास्त्रीय वाद्य के रूप में नहीं, बल्कि भावाभिव्यक्ति के प्रभावी माध्यम के रूप में भी स्थापित किया।

2. शोध के उद्देश्य :

1. उस्ताद रईस ख़ाँ के संगीत जीवन एवं प्रशिक्षण परंपरा का अध्ययन करना।
2. उनकी सितार वादन शैली की प्रमुख विशेषताओं को रेखांकित करना।
3. उनके वादन में गायकी अंग, मींड, लय और भावाभिव्यक्ति के स्वरूप को समझना।
4. शास्त्रीय तथा लोकप्रिय संगीत के क्षेत्र में उनके योगदान का अध्ययन करना।
5. भारतीय उपमहाद्वीप की सितार परंपरा में उनके कलात्मक महत्व का गुणात्मक विश्लेषण करना।

3. शोध पद्धति :

यह अध्ययन गुणात्मक एवं वर्णनात्मक–विश्लेषणात्मक शोध पद्धति पर आधारित है। अध्ययन के लिए उपलब्ध जीवनीपरक सामग्री, प्रकाशित लेख, समाचार–पत्रों में उपलब्ध कलाकार–परिचय, साक्षात्कार तथा उपलब्ध प्रदर्शन–सामग्री को संदर्भित किया गया है। शोध में तुलनात्मक पद्धति को केंद्र में नहीं रखा गया है। इसके स्थान पर रईस ख़ाँ की कला को उनके अपने संगीत–संदर्भ में समझने का प्रयास किया गया है।

4. जीवन एवं संगीत-संस्कार :

उस्ताद रईस ख़ाँ का जन्म 25 नवंबर 1939 को इंदौर में हुआ। वे एक ऐसे परिवार में जन्मे जहाँ संगीत की परंपरा पीढ़ियों से विद्यमान थी। उनके प्रारंभिक जीवन पर पारिवारिक संगीत वातावरण का गहरा प्रभाव पड़ा। प्रकाशित स्रोतों के अनुसार उनके पिता मुहम्मद ख़ाँ संगीतज्ञ थे और रईस खघँ ने उनसे प्रारंभिक प्रशिक्षण प्राप्त किया।

उन्होंने अत्यंत कम आयु में सितार का अभ्यास आरंभ किया। प्रारंभिक प्रशिक्षण और पारिवारिक वातावरण ने आगे चलकर उनके वादन की आधारभूमि तैयार की। उनके संगीत–संदर्भ में मेवाती परंपरा तथा परिवार की अन्य संगीत परंपराओं के उल्लेख मिलते हैं, इसलिए घराने संबंधी दावों को प्राथमिक स्रोतों से पुष्ट करना आवश्यक है।

5. उस्ताद रईस ख़ाँ की वादन शैली :

रईस ख़ाँ के वादन की एक प्रमुख विशेषता सितार पर गायकी के स्वरूप को अभिव्यक्त करने की क्षमता थी। वे केवल वाद्यगत तकनीक के प्रदर्शन तक सीमित नहीं रहते थे, बल्कि राग के स्वर–विन्यास में गायन की भावात्मकता को स्थान देते थे। प्रकाशित सामग्री में उनके गायकी अंग तथा मींड के प्रभावी प्रयोग का उल्लेख मिलता है।

उनके वादन में मींड को तकनीकी संक्रमण से आगे बढ़ाकर भावात्मक अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया गया। राग के विस्तार के बाद गत और तान के माध्यम से प्रस्तुति में क्रमशः गति का विकास किया जाता था। तीव्रता के बावजूद स्वर की स्पष्टता बनाए रखना उनकी तकनीकी दक्षता का महत्वपूर्ण पक्ष था।

6. वाद्य एवं गायन का अंतर्संबंध :

रईस ख़ाँ गायन में भी दक्ष थे। उपलब्ध सामग्री में उल्लेख है कि वे कभी–कभी किसी रचना को गाकर उसके भाव को स्पष्ट करते और फिर उसी संगीत–विचार को सितार पर विकसित करते थे। इस दृष्टि से गायन और सितार उनके लिए दो पृथक माध्यमों के बजाय एक ही संगीतात्मक विचार की दो अभिव्यक्तियाँ प्रतीत होते हैं।

7. मंचीय एवं व्यावसायिक योगदान :

रईस ख़ाँ का संगीत जीवन केवल पारंपरिक संगीत सम्मेलनों तक सीमित नहीं रहा। उन्होंने भारत और विदेशों में अनेक मंचों पर प्रस्तुति दी। 2012 में वे भारतीय संसद में प्रस्तुति देने वाले प्रमुख पाकिस्तानी कलाकारों में शामिल हुए।

उन्होंने उस्ताद बिस्मिल्लाह ख़ाँ के साथ भी मंच साझा किया और 2001 में दिल्ली के इंडिया गेट लॉन्स में उनकी जुगलबंदी का उल्लेख प्रकाशित स्रोत में मिलता है। इस प्रकार की प्रस्तुतियाँ उनके संगीत के सहयोगात्मक और व्यापक मंचीय स्वरूप को दर्शाती हैं।

8. रिकॉर्डिंग एवं लोकप्रिय संगीत में योगदान :

रईस ख़ाँ की कलात्मक यात्रा का महत्वपूर्ण पक्ष फिल्म और लोकप्रिय संगीत से उनका संबंध था। मदन मोहन के साथ उनका सहयोग विशेष रूप से उल्लेखनीय रहा। 'नैनों में बदरा छाए' (मेरा साया), 'बैयाँ न धरो' (दस्तक) तथा 'आज सोचा तो आँसू भर आए' (हँसते जख्म) जैसे गीतों में उनके सितार के योगदान का उल्लेख किया गया है। 'पाकीजा' के पृष्ठभूमि संगीत में भी उनके सितार की भूमिका बताई गई है।

इस प्रकार उनका फिल्म–संगीत योगदान शास्त्रीय वादन की संवेदना को लोकप्रिय माध्यम में पहुँचाने का महत्वपूर्ण उदाहरण है।

9. सहयोगात्मक संगीत एवं संगत :

रईस ख़ाँ ने विभिन्न कलाकारों के साथ मंचीय सहयोग किया। उस्ताद बिस्मिल्लाह ख़ाँ के साथ उनकी प्रस्तुतियाँ इसका महत्वपूर्ण उदाहरण हैं। उपलब्ध सामग्री में युवा जाकिर हुसैन के साथ उनकी एक निजी बैठक की रिकॉर्डिंग का भी उल्लेख मिलता है, जिसमें सितार और तबले के बीच संवादात्मक संबंध दिखाई देता है। हिंदुस्तानी शास्त्रीय संगीत में मुख्य कलाकार और संगतकार के बीच संवाद प्रस्तुति के तात्कालिक सृजन को प्रभावित करता है। रईस ख़ाँ की प्रस्तुतियों को इस दृष्टि से देखने पर स्वर और लय के पारस्परिक संवाद की महत्ता सामने आती है।

10. कलात्मक व्यक्तित्व :

रईस ख़ाँ का व्यक्तित्व उनकी वादन शैली की तरह ही बहुआयामी था। वे सितार वादक होने के साथ–साथ गायन और रचनात्मक संगीत गतिविधियों से भी जुड़े रहे। उनकी प्रस्तुति में शास्त्रीय गंभीरता के साथ श्रोता तक भाव पहुँचाने की क्षमता दिखाई देती है। उनकी कलात्मक दृष्टि में परंपरा के प्रति सम्मान और रचनात्मक स्वतंत्रता दोनों का समावेश था।

11. पुरस्कार एवं सम्मान :

रईस ख़ाँ को 2005 में पाकिस्तान सरकार द्वारा Pride of Performance से सम्मानित किया गया। 2017 में उन्हें मरणोपरांत Sitara-i-Imtiaz प्रदान किया गया। ये सम्मान उनके दीर्घकालीन संगीत योगदान की सार्वजनिक मान्यता के रूप में देखे जा सकते हैं।

12. गुणात्मक विश्लेषण :

उपलब्ध सामग्री के विश्लेषण से रईस ख़ाँ की कला में परंपरा, व्यक्तिगत अभिव्यक्ति, गायन–वादन समन्वय, शास्त्रीयता और संप्रेषणीयता जैसे प्रमुख विषय उभरते हैं।

उनकी कला पारंपरिक संगीत–संस्कारों पर आधारित थी, किंतु उनकी प्रस्तुति व्यक्तिगत रचनात्मकता से भी प्रभावित थी। गायन की संवेदना को सितार पर रूपांतरित करने की प्रवृत्ति उनके संगीत व्यक्तित्व का महत्वपूर्ण आधार रही। साथ ही, फिल्म संगीत तथा अंतरराष्ट्रीय मंचों से उनका जुड़ाव उनके संगीत के व्यापक सामाजिक–सांस्कृतिक प्रभाव को दर्शाता है।

13. निष्कर्ष :

उस्ताद रईस ख़ाँ का संगीत जीवन भारतीय उपमहाद्वीप की समृद्ध सितार परंपरा के एक महत्वपूर्ण अध्याय के रूप में देखा जा सकता है। उनके वादन में पारंपरिक संगीत–संस्कार, गायकी अंग, मींड की अभिव्यक्तिपूर्ण क्षमता, लयात्मक दक्षता तथा मंचीय संप्रेषण का विशिष्ट समन्वय दिखाई देता है।

उनकी महत्वपूर्ण विशेषताओं में से एक यह थी कि उन्होंने सितार को केवल वाद्य–तकनीक के प्रदर्शन का माध्यम न मानकर उसे भाव और संगीतात्मक विचार की अभिव्यक्ति के रूप में प्रस्तुत किया। गायन की संवेदना को सितार पर रूपांतरित करने की उनकी प्रवृत्ति ने उनके वादन को विशिष्ट पहचान प्रदान की।

उनका योगदान शास्त्रीय मंच तक सीमित नहीं रहा। फिल्म संगीत, अंतरराष्ट्रीय प्रस्तुतियों तथा विभिन्न कलाकारों के साथ सहयोग ने उनके संगीत को व्यापक श्रोता समुदाय तक पहुँचाया। अतः गुणात्मक दृष्टि से रईस ख़ाँ की कला को परंपरा, स्वर–संवेदना, गायकी अंग, तकनीकी दक्षता, रचनात्मकता और व्यापक संगीत–संप्रेषण के समन्वित रूप में समझा जा सकता है।

संदर्भ-सूची :

1. Khurana, Suanshu. (2017, May 9). "Ustad Rais Khan (1939–2017): The Man Who Made the Sitar Sing." The Indian Express.
   इस लेख में रईस ख़ाँ की सितार शैली, विशेष रूप से उनकी मींड, मदन मोहन के फिल्म–संगीत में भूमिका तथा उनके मंचीय जीवन पर महत्वपूर्ण सामग्री उपलब्ध है।
2. Salman, Peerzada. (2017, May 7). "Legendary Sitarist Ustad Raees Khan Passes Away." Dawn.
   रईस ख़ाँ के जीवन, निधन और संगीत संबंधी योगदान के लिए उपयोगी समकालीन समाचार–स्रोत।
3. Shahid, S. M. (2017, May 12). "In Memoriam: The Maestro's Last Note." Dawn.
   इस लेख में रईस ख़ाँ की मंचीय उपस्थिति, व्यक्तित्व और संगीतात्मक प्रभाव से संबंधित संस्मरणात्मक सामग्री मिलती है।
4. S. (2012, January 20). "Strike a Chord with 'Chocolate' Ustad." Mid-day.
   रईस ख़ाँ के साथ किया गया विस्तृत साक्षात्कार। उनके संगीत–दर्शन, व्यक्तिगत जीवन, संगीत के प्रति दृष्टिकोण तथा कलाकार के रूप में उनके अनुभवों के अध्ययन के लिए महत्वपूर्ण प्राथमिक स्रोत।
5. "Ustad Rais Khan: The String Maestro." (2012, December 2). Dawn.
   लेख में रईस ख़ाँ की संगीत परंपरा, इमदादखानी घराने से उनके संबंध तथा विभिन्न गायन–परंपराओं से उनके संपर्क की चर्चा मिलती है।
6. "Ustad Rais Khan — A Great Exponent of Sitar Playing." (2017, May 10). Daily Times.

रईस ख़ाँ के जन्म, प्रारंभिक प्रशिक्षण, मंचीय जीवन, विदेश यात्राओं तथा संगीत संबंधी उपलब्धियों के लिए उपयोगी स्रोत।

7. "We Mourn the Passing Away of Sitar Maestro Ustad Rais Khan." (2017, May 7). Bengal Foundation.
रईस ख़ाँ की पारिवारिक संगीत परंपरा, प्रारंभिक संगीत शिक्षा और उनके उत्तराधिकार से संबंधित सामग्री के लिए उपयोगी स्रोत।

8. "President Hosts Investiture Ceremony to Recognise Individuals' Services to Pakistan." (2017). Associated Press of Pakistan (APP).
रईस खाँ को प्रदान किए गए Sitara-i-Imtiaz संबंधी आधिकारिक जानकारी के लिए उपयोगी स्रोत।

9. Adnan, Ally. (2014, May 2). "Indus Raag." The Friday Times.
रईस ख़ाँ के संगीत और पाकिस्तान में उनके सांगीतिक योगदान के संदर्भ के लिए उपयोगी स्रोत।

10. Kumar, Kuldeep. (2012, January 13). "A Tale of Two Recitals." The Hindu.
रईस खाँ की मंचीय प्रस्तुति और संगीत कार्यक्रमों के संदर्भ में उपयोगी प्रकाशित स्रोत।

prabhjotkaursitar@gmail.com | ravjot.32474@lpu.co.in

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED PRINT RESEARCH JOURNAL
ISSN : 2321-8037
SANGAM
Vol. 14, Issue 7-8
पृष्ठ : 229–232

वंशावली के वाहक आदिवासियों के 'रावल महाराज, भुवो और खत्री'

डॉ. सुरेन्द्रकुमार बी. बारीआ
असिस्टेंट प्रोफेसर, इतिहास विभाग
गवर्नमेंट आर्ट्स कॉलेज, शहेरा, पंचमहल गुजरात।

सारांश :

यह शोधपत्र गुजरात के भील आदिवासियों के वाचिक परंपरागत वंशावली के वाहको 'रावल महाराज, भुवो और खत्री' पर है। भीलो की वंशावली के वाहको ने वाचिक परम्परामे भीलो की वंशावली सजोकर रखी है वह गीत, मंत्र (बोल), गायणु (मंडोल) आदि में हमें मिलता है। पहला रावल महाराज जो मृत्यु के बाद बार में (कायटू) कि विधि दौरान वंशावली का गान करते है, दूसरा भुवा (बडवो) जो कोई बीमार है, उसे ठीक करने के लिये रातभर 'गायणु' का गान करते है। इस में भी वो पूरी वंशावली को दोहराता है, और तीसरा खत्री (पूर्वज) जब दीपावली के बाद चौदस के दिन मरे हुए पुरखे (पूर्वजो) के शीरे (पालिया) का पूजन करते है, उसी दौरान किसी एक कुटुम्बी के शरीर में बारी बारी सभी मरे हुए पूर्वज खत्री बनकर आते है, वह भी भीलो की वंशावली कहता है।

आजादी के बाद का तो सरकारी रेकॉर्ड से भी माहिती मिलती है किन्तु प्राचीन काल से आजादी तक कि वंशावली का आधार मात्र रावल और खत्री ही है किन्तु वो भी क्रमिक रूप में नहीं है जो है वो भी चोथी–पाँचवी पीढ़ी तक की ही मिलती है। प्रस्तुत शोधपत्र के माध्यम से गुजरात के भीलों कि परम्परागत वंशावली को उजागर करने का नम्र प्रयास किया है।

शब्द कुंजी : मौखिक वंशावली, खत्री, रावल, लोककथा, कायटू, काली चौदस, पारंपरिक ज्ञान।

भूमिका :

भारतीय सामाजिक व्यवस्था के अन्तर्गत जिन्हें जनजाति के नाम से संबोधित किया जाता है, उनके सम्बन्ध में यह विशेष स्मरणीय है कि वे भारतीय प्रागैतिहासिक काल के निवासी है। प्राचीन काल से ही भारत अनेक जनजातीय समूहों का संगम स्थल रहा है। ये जनजातियां प्रायः शहरी सभ्यता से बहुत दूर घने जंगलों, पर्वतो, घाटियों एवं पठारी क्षेत्रों में निवास करती हैं। रीजले राबर्ट, मार्टिन आदि विद्वानों ने इन्हें आदिवासी का नाम प्रदान किया है।

भारत में लगभग ६०० आदिवासी समूह विभिन्न प्रान्तों में निवास करते हैं। इनकी जनसख्या किसी प्रान्त

में बहुत अधिक तो कहीं पर बहुत कम है। कुछ प्रान्तों में तो आदिवासी दृष्टिगोचर ही नहीं होते हैं। गुजरात का पूर्व पट्टा आदिवासी बाहुल्य वाला है। सन २०११ कि जनगणना में १५% जन संख्या आदिवासियों कि है इसमे भील आदिवासी सबसे ज्यादा है। आदिवासी भील बहूल यह क्षेत्र आधुनिक चमक–दमक से कटा हुआ अवश्य है तथापि प्राचीन सांस्कृतिक परम्परा अक्षुण्ण बनाए रखने में यह अग्रणी है। राजस्थान का डूंगरपुर, गुजरात का दाहोद और मध्यप्रदेश का जबुआ जिल्ला के भील आदिवासियों ने अपनी सांस्कृतिक परम्परा गीत कथा, कहावत एवं नृत्य की धरोहर को आज भी संजोए रखा है।

अर्सकिन के अनुसार "भील भारतवर्ष के सबसे पुराने निवासियों में से है। जिन्होंने ईसा से कई सौ वर्ष पूर्व उत्तर व उत्तर–पश्चिम की ओर से इस देश में प्रवेश किया था। उनके विचार में हिन्दुओं के आक्रमणों ने ही इन्हें वनों का निवासी बनाया।" इसके विपरित कर्नल टौड की मान्यता है कि "भील किसी अन्य स्थान से यहाँ नहीं आये, वे उन्हें 'वनपुत्र' मानते हुए कहते हैं कि जहाँ ये पैदा हुए, वहीं पर अभी स्थिर है। एन्थोवेन के अनुसार भीलों का मूल निवास स्थान आबू व असीरगढ के मध्य का पहाड़ी प्रदेश हैं जहाँ से वे पश्चिम व दक्षिण की ओर गुजरात में तथा दक्षिण भारत के उत्तरी क्षेत्र के मैदानों में फैल गये। बाद में वे अकाल के दबाव से सिंध की तरफ बढ़े।

प्राचीन तमिल कवियों ने पूर्व द्रविड़काल की कुछ जंगली जातियों को बिल्लवर (तीरंदाज) नाम से संबोधित किया है। तमिल क्षेत्र में रहने वाली प्राचीनतम जनजातियाँ बिल्लवर व मीनावर कहकर पुकारी जाती हैं।

वंशावली के वाहक :

भारतीय समाज व्यवस्था में वंशावली और विरुदावलिया वैदिक साहित्य में मिल जाता है, जैसे वेदों, पुराणों, महाभारत, रामायण, प्रशस्ति ग्रन्थ सहित कई ग्रंथोमे मिलती है कई ऐतिहासिक ग्रंथों में वंशावली और विरुदावलियाँ भारतीय समाज व्यवस्था की अपनी रचना है। हमें वेदों, पुराणों, महाभारत और रामायण सहित कई ग्रंथों में ऋषियों और राजवंशों की वंशावलियाँ मिल जाती हैं। कई ऐतिहासिक ग्रंथों राजतरंगिणी, चचनामा और शिलालेखों में भी प्रशस्तियाँ मिल जाती हैं। रासों और ख्यात साहित्य तथा मराठी बखर वंशावली और विरुदावलियों की आधारभित्ति पर ही खड़े हैं। हरिद्वार, पुष्कर, काशी, प्रयाग, बद्रीनाथ ही नहीं, कई अन्य तीर्थ स्थलों पर भी मठ–मंदिर से जुड़े पुरोहितों द्वारा भी वंशावली संधारित की जाती रही हैं। इन वंशावलियों और विरुदावलियों से एक सुव्यवस्थित और प्रामाणिक इतिहास तो उपलब्ध होता ही है। पुरखे देह रूप में भले ही सदैव उपस्थित न रहें, किन्तु उनकी कीर्ति उनकी छवि इन वंशावलियों में प्रतिबिम्बित होते न केवल देख सकते हैं, वरन उनसे प्रेरणा और उत्साह भी प्राप्त कर सकते हैं। इनके माध्यम से समाज अपनी आस्था और आद्य उत्पत्ति तक की एक आदि कड़ी से सहज जुड़ जाता है। वंशावलियाँ प्रत्येक समुदाय, कुल, गोत्र के पुराण मानी जाती हैं। इनमें मात्र समुदाय या वंश भर की कथा नहीं होती है। इनमें सृष्टि की उत्पत्ति कथा, प्रकृति के अंग–उपांग, वृक्ष, वनस्पति, नदी, पर्वत, जीव–जन्तु से बात प्रारंभ कर अतीत से आज तक की कथा चली आती है। वंश परम्परा में शौर्य, संघर्ष, पराक्रम जय–विजय, आव्रजन प्रव्रजन, मिलन सम्मिलन के भी विवरण उपलब्ध होते हैं। वस्तुतः इनमें समाजों का सच्चा और तथ्यात्मक इतिहास उपलब्ध होता है।

भीलो की वंशावली के वाहक :

भीलो की वंशावली के वाहको ने वाचिक परम्परा में भीलों की वंशावली सजो कर रखी है वह गीत, मंत्र

(बोल), गायणु (मंडोल) आदि में हमें मिलता है। पहला रावल महारज जो मृत्यु के बाद बारमें (कायटू) कि विधि दौरान वंशावली का गान करते हैं, दूसरा भुवा (बडवो) जो कोई बीमार है, उसे ठीक करने के लिये रातभर 'गायणु' का गान करते है। इस में भी वो पूरी वंशावली को दोहराता है, और तीसरा खत्री (पूर्वज) जब दीपावली के बाद चौदस के दिन मरे हुए पुरखे (पूर्वजों) के शीरे (पालिया) का पूजन करते है, उसी दौरान किसी एक कुटुम्बी के शरीर में बारी बारी सभी मरे हुए पूर्वज खत्री बनकर आते है, वह भी भीलो कि वंशावली कहता हैं।

'कायटू' भीलों की एक प्राचीन परंपरा है। आदिवासियों में मृत्यु के बाद श्राद्धक्रिया नहीं की जाती, लेकिन कायटू करते हैं, आज के समय में तो मृत्यु के १२वें १३वें दिन में करते है परन्तु पहले के समय में, आर्थिक स्थिति ठीक न होने के कारण जब सुविधा होती थी, दो, पाँच या सात परिवार एकत्र होते थे और दो से पाँच साल में होने वाली सभी मौतों का एक साथ 'कायटू' करते थे। कायटू के दिन बहन–बेटियाँ कायटू के लिए भोजन तैयार करती हैं। भोजन तैयार होने के बाद, भील रावल महाराज को सूतक के लिए पूजा पाठ करने के लिए बैठाया जाता है, पाठ पुरने के लिये २० किलो चावल से चोरस आकार का पाठ बनाता है इस पर तांबे का घोड़ा रखा जाता है। जो पूर्वजों की प्रार्थनाओं का आह्वान करता है। सामने मरने वाले के पुत्र के हाथ तांबे की बड़ी थाली और इसमें तांबे की गाय की छोटी मूर्ति को रखता है। इसके ऊपर मंत्र के साथ दूध की आहुति डाला जाता है।

रावल महाराज सर्वाणी मंत्र का जाप करते हैं।

आशा की बोल (मंत्र) :

'पहले हक केन लिया, पहले हक अर्जुनजी लिया, दो अर्जुनजी हक सवाल, वहां बैठे अर्जुन देव, दो अर्जुन देव का पकार, इसके बाद तीसरे पन्ने पर माँ, छोटे भाई का नाम आया नानिया भाई का नाम उजागर हुआ। यदि आप इस पृष्ठ में पानी डाल दें तो यह अच्छा काम करेगा...'।

उस समय रावल द्वारा एक गीत गाया जाता है। जिसमें सबसे पहले परिवार का सबसे बड़ा व्यक्ति अनाज दान करता है, उसके बाद चाचा, पिता, भाई, दामाद, भतीजे को घटते क्रम में अनाज और यथाशक्ति धन का दान किया जाता है।

भील रावल का पावड़ी गीत :

'अरे परानिया, आओ सूअरों को साली में डालें,
हे परानिया, मैंने उन्हें दुनिया में इस्तेमाल किया,
हे परानिया, सारा दूध स्लाइड पर डाल दें,
हे परानिया, दामादों, दूध को मत भूलना...'।

उपरोक्त गीत के गान के दौरान, मृतक के पूर्वजों की पूरी वंशावली को गाने के माध्यम से उजागर करते हैं पर वो भी क्रमिक रूप में नहीं है जो है वो भी चौथी दृ पाँचवी पीढ़ी तक की ही मिलती है।

खत्री :

खत्री (पूर्वज) जब दीपावली के बाद चौदस (काली चौदस) के दिन से पहले पुरखे (पूर्वजों) के शीरे (पालिया) के आस–पास सफाई और लेपन किया जाता है, क्योकि खत्री आ रहे हैं, काली चौदस के दिन सुबह चार बजे सबके घर में चावल पकाते है, पाँच बजे के बाद कोई भी चूल्हा नहीं जलाते है क्योकि ऐसी मान्यता

है कि पाँच बजे से खत्री आने लगते हैं तो वो जल न जाए, उसके बाद सब लोग ढोल बाजा के साथ शीरे के पास जाते है, वह कुटुम्ब का सबसे बुजुर्ग दादा पूजन करते दिया जलाते हैं एक मटके में पानी भरकर रखते हैं और बाकी लोग गीत गाते और नाचते हैं उसी दौरान किसी एक कुटुम्बी के शरीर में बारी–बारी सभी मरे हुए पूर्वज खत्री बनकर आते है, और बोलता है की मै थावरो हूँ, छत्रो हूँ, और बुजुर्ग लोगों के साथ वो बाते करके और कोई पुरानी बाते याद कराके वह खुद का परिचय करता है तभी सभी वहा बैठे बुजुर्ग लोग उनको पहचानते हैं और पानी पीकर वो चला जाता है, फिर दूसरा आता है बाते करके पानी पीकर चला जाता है इसी बारी–बारी सब खत्री आते है। इस तरह नई पीढ़ी को पूर्वजो के बारे में और वंशावली का पता चलता है।

निष्कर्ष :

इस तरह भीलो कि वंशावली वाचिक परम्परा में रावल महाराज, खत्री और भुवा के पास से मिलती है परन्तु वो क्रमिक नहीं होती है जब मै बारिया गोत्र का भील हूँ मैने बुजुर्ग दादा से अपनी वंशावली के बारे में जानने की कोशिक की तो वो मुश्किल से पाँचवी पीढ़ी तक का ही बता सके और आगे का कोई रेकॉर्ड नहीं है। आजादी के बाद का तो सरकारी रेकॉर्ड से भी जानकारी मिलती है। वाचिक परम्परा में ही आधार रखना पड़ता है।

संदर्भ :

१. वनीकर पांडुरंग, गुजरातना पंचमहल जिल्लाना भीलो, दाहोद, १९९३
२. रावल सुरतानभाई 'रावल महाराज', वासिया, मुलाकात के आधार पर २६/०९/२०२५
३. बारीआ सुरेन्द्र, 'दाहोदना भीलो माँ कायटू प्रथा', आदिलोक, मार्च–अप्रैल–२०२३
४. भाभोर चुलीलाल, भमेला मुलाकात के आधार पर।
५. बारिया कलाभई, भानपुर, मुलाकात के आधार पर।

M. 9726767453

Email Id : surukumarbaria@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED PRINT RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 14, Issue 7-8
पृष्ठ : 233–237

A Study of the Cultural and Philosophical Significance of Meghaduta

Dr. Dhani Jamod
Assistant Professor
Pandit Shambhunath Shukla University, Shahdol (M.P.) 484001

सारांश –

महाकवि कालिदास का मेघदूत संस्कृत साहित्य की अमूल्य कृतियों में से एक है। यह एक खण्डकाव्य होते हुए भी भारतीय जीवन, संस्कृति, प्रकृति और दर्शन के विविध आयामों को अपने भीतर समेटे हुए है। काव्य का मूल कथानक एक विरही यक्ष और उसकी प्रिया के मध्य दूरी तथा मेघ के माध्यम से भेजे गए संदेश पर आधारित है, किंतु इसकी व्यापकता केवल प्रेम और विरह तक सीमित नहीं है। मेघ की यात्रा के माध्यम से कवि ने भारत के प्राकृतिक एवं सांस्कृतिक भूगोल, नगर–जीवन, धार्मिक आस्थाओं, लोक–परंपराओं और सौंदर्यबोध का सजीव चित्र प्रस्तुत किया है। मेघदूत में प्रकृति जड़ पृष्ठभूमि न होकर मानवीय भावनाओं की सक्रिय सहभागी बन जाती है। आधुनिक अध्ययनों में भी इस काव्य की प्रकृति–दृष्टि को पर्यावरणीय, सौंदर्यात्मक और सांस्कृतिक विमर्श से जोड़कर देखा गया है।

दार्शनिक दृष्टि से मेघदूत विरह, स्मृति, आशा, प्रेम, प्रकृति और मानव–अस्तित्व के संबंध पर विचार करने का अवसर प्रदान करता है। यक्ष की व्यक्तिगत पीड़ा सार्वभौमिक मानवीय अनुभूति का रूप ग्रहण कर लेती है। इस प्रकार मेघदूत भारतीय सांस्कृतिक चेतना तथा जीवन–दर्शन का महत्वपूर्ण काव्यात्मक दस्तावेज सिद्ध होता है।

बीज-शब्द : कालिदास, मेघदूत, भारतीय संस्कृति, प्रकृति, विरह, प्रेम, दर्शन, सौंदर्यबोध, सांस्कृतिक चेतना।

1. प्रस्तावना –

संस्कृत साहित्य की परंपरा में महाकवि कालिदास का स्थान अत्यंत विशिष्ट है। उनकी रचनाओं में प्रकृति, मानव–जीवन और भावनात्मक अनुभवों का ऐसा समन्वय दिखाई देता है, जिसमें सौंदर्य और विचार एक–दूसरे के पूरक बन जाते हैं। मेघदूत इसी काव्य–दृष्टि का उत्कृष्ट उदाहरण है।

मेघदूत का नायक कुबेर के शाप से निर्वासित यक्ष है, जो रामगिरि में रहकर अपनी पत्नी से दूर है। वर्षा ऋतु में आकाश में उठते मेघ को देखकर वह उसे अपना संदेशवाहक बनाने की कल्पना करता है। काव्य दो प्रमुख भागों 'पूर्वमेघ और उत्तरमेघ' में विभाजित है। पूर्वमेघ में मेघ की यात्रा तथा मार्ग में आने वाले प्राकृतिक एवं सांस्कृतिक स्थलों का वर्णन है, जबकि उत्तरमेघ में अलकापुरी और यक्षिणी का चित्रण तथा संदेश की भावभूमि

प्रमुख है। मेघ की यह यात्रा भारतीय भू–दृश्य और सांस्कृतिक स्मृति को काव्यात्मक रूप प्रदान करती है। इस दृष्टि से मेघदूत केवल विरह–काव्य नहीं है, यह मनुष्य, प्रकृति और संस्कृति के परस्पर संबंध का संवेदनशील आख्यान भी है।

2. शोध के उद्देश्य –– इस शोध के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं :

- मेघदूत में अभिव्यक्त भारतीय सांस्कृतिक चेतना का अध्ययन करना।
- काव्य में प्रकृति और मानव के संबंध का विश्लेषण करना।
- मेघदूत में निहित दार्शनिक दृष्टि को स्पष्ट करना।
- विरह और प्रेम के माध्यम से व्यक्त मानवीय जीवन–मूल्यों का विवेचन करना।
- काव्य के सौंदर्यबोध तथा सांस्कृतिक महत्व को रेखांकित करना।
- वर्तमान संदर्भ में मेघदूत की प्रासंगिकता पर विचार करना।

3. शोध-परिकल्पना –

इस शोध की मूल परिकल्पना यह है कि मेघदूत को केवल शृंगार एवं विरह का काव्य मानना उसके व्यापक सांस्कृतिक और दार्शनिक स्वरूप को सीमित कर देना होगा। इसमें प्रकृति, मानव–संवेदना, धार्मिक आस्था, सांस्कृतिक स्मृति और जीवन–दर्शन का समन्वित रूप दिखाई देता है।

4. मेघदूत का सांस्कृतिक महत्व –

4.1 भारतीय सांस्कृतिक भूगोल का चित्रण – मेघदूत की सबसे महत्वपूर्ण विशेषताओं में से एक इसका विस्तृत मार्ग–वर्णन है। यक्ष मेघ को रामगिरि से अलकापुरी तक जाने का मार्ग बताता है। इस यात्रा में पर्वत, नदियाँ, वन, नगर और विभिन्न सांस्कृतिक स्थल आते हैं इस प्रकार मेघ की यात्रा केवल भौगोलिक यात्रा नहीं रह जाती, बल्कि वह भारतीय सांस्कृतिक भूगोल की काव्यात्मक यात्रा बन जाती है। आधुनिक शोध में भी मेघ की यात्रा को भारत के विविध प्राकृतिक और सांस्कृतिक परिदृश्यों के अनुभव के रूप में देखा गया है।

4.2 प्रकृति और भारतीय संस्कृति – ालिदास के यहाँ प्रकृति और संस्कृति के बीच कोई कठोर विभाजन नहीं है। पर्वत, नदी, वृक्ष, पुष्प, बादल, पक्षी और ऋतुएँ मानव जीवन के साथ भावात्मक रूप से जुड़ी हुई हैं।

मेघदूत में मेघ केवल जलवाष्प का प्राकृतिक रूप नहीं है। वह यक्ष की भावनाओं का वाहक बन जाता है। इस प्रकार प्रकृति मानवीय संवेदना की भाषा बोलने लगती है। आधुनिक पर्यावरणीय आलोचना की दृष्टि से भी यह विशेषता महत्त्वपूर्ण है। अध्ययनों में कालिदास की प्रकृति–दृष्टि को मानव और पर्यावरण के गहरे संबंध से जोड़कर देखा गया है।

4.3 धार्मिक एवं आध्यात्मिक चेतना – काव्य में अनेक ऐसे स्थल और प्रसंग आते हैं जिनसे भारतीय धार्मिक और आध्यात्मिक जीवन की झलक मिलती है। पर्वतों, नदियों तथा पवित्र स्थलों के प्रति श्रद्धा भारतीय सांस्कृतिक मानस का महत्वपूर्ण अंग रही है। 'मेघदूत' में धार्मिक एवं आध्यात्मिक चेतना के लिए ये श्लोक विशेष रूप से उपयोगी हैं :–

4.4 रामगिरि की पवित्रता –

यक्षश्चक्रे जनकतनयास्नानपुण्योदकेषु
स्निग्धच्छायातरूषु वसतिं रामगिर्याश्रमेषु।।[1]

यक्ष ने रामगिरि के आश्रमों में निवास किया। वहाँ के जलाशय माता सीता के स्नान से पवित्र माने जाते थे और घने वृक्षों की शीतल छाया थी। आध्यात्मिक भाव : इसमें राम–सीता से जुड़े पवित्र स्थल और आश्रम–परंपरा के प्रति श्रद्धा दिखाई देती है।

4.5 महाकाल की आराधना –

अप्यन्यस्मिञ्जलधर महाकालमासाद्य काले
स्थातव्यं ते नयनविषयं यावदभ्येति भानुः।
कुर्वन्सन्ध्याबलिपटहतां शूलिनः श्लाघनीयाम्
आमन्द्राणां फलमविकलं लप्स्यसे गर्जितानाम्।।[2]

हे मेघ! उज्जयिनी पहुँचकर महाकाल के मंदिर में सूर्यास्त तक ठहरना। वहाँ भगवान शिव की संध्या–आराधना के समय अपने गंभीर गर्जन को नगाड़े की तरह प्रस्तुत करना।

आध्यात्मिक भाव : यह श्लोक शिव–भक्ति, संध्या–उपासना और मंदिर–परंपरा का सुंदर चित्र प्रस्तुत करता है।

4.6 पुण्य और स्वर्ग की अवधारणा –

स्वल्पीभूते सुचरितफले स्वर्गिणां गाम् गतानां।
शेषैः पुण्यैर्हृतमिव दिवः कान्तिमत्खण्डमेकम्।।[3]

जिन स्वर्गवासियों के पुण्य का फल समाप्त होने लगता है, उन्हें पृथ्वी पर लौटना पड़ता है। उज्जयिनी ऐसी लगती है मानो बचे हुए पुण्य के कारण स्वर्ग का कोई चमकता हुआ टुकड़ा पृथ्वी पर आ गया हो। इसमें पुण्य, स्वर्ग, कर्मफल और पुनः पृथ्वी पर आगमन जैसी भारतीय आध्यात्मिक धारणाएँ व्यक्त हुई हैं।

4.7 नगर-संस्कृति और सामाजिक जीवन –

मेघदूत में प्राकृतिक दृश्यों के साथ–साथ नगरों और वहाँ के जीवन का भी चित्रण मिलता है। विशेष रूप से उज्जयिनी का वर्णन तत्कालीन नगर–संस्कृति, सौंदर्यबोध और सामाजिक जीवन की झलक प्रदान करता है। इससे स्पष्ट होता है कि कालिदास की दृष्टि केवल वन और पर्वतों तक सीमित नहीं थी। वे प्रकृति और सभ्यता दोनों को समान सौंदर्यात्मक संवेदनशीलता से देखते हैं।

4.8 भारतीय सौंदर्यबोध – मेघदूत में सौंदर्य केवल दृश्य वस्तु नहीं है। वह अनुभूति का विषय है। मेघ, वर्षा, पर्वत, नदी, वन, पुष्प और नगर– सभी यक्ष की मानसिक अवस्था से जुड़ जाते हैं। इस प्रकार बाह्य प्रकृति और आंतरिक भावना के बीच एक सौंदर्यात्मक संवाद स्थापित होता है। यही मेघदूत की काव्यात्मक विशिष्टता है।

5. मेघदूत का दार्शनिक महत्व –

5.1 विरह का दर्शन – मेघदूत का मूल भाव विरह है। किंतु कालिदास के यहाँ विरह केवल दुःख की अवस्था नहीं है। वह प्रेम की गहराई को प्रकट करने वाला अनुभव है। यक्ष अपनी प्रिया से दूर है, परंतु स्मृति के माध्यम से उसके साथ निरंतर जुड़ा रहता है। इस प्रकार शारीरिक दूरी मानसिक निकटता में परिवर्तित हो जाती है। भारतीय काव्यशास्त्र में विरह–श्रृंगार की विशेष महत्ता है और मेघदूत इस भाव को अत्यंत प्रभावशाली ढंग से अभिव्यक्त करता है। इसके लिए प्रयुक्त मन्दाक्रान्ता छंद भी विरह की भाव–लय के अनुकूल माना गया है।

5.2 प्रेम का आध्यात्मिक आयाम – यक्ष और यक्षिणी का संबंध केवल शारीरिक आकर्षण पर आधारित नहीं

है। इसमें स्मृति, प्रतीक्षा, निष्ठा और आत्मीयता का भाव प्रमुख है। प्रेम यहाँ व्यक्ति को अपने सीमित स्व से बाहर निकालकर दूसरे के अस्तित्व से जोड़ता है। इस अर्थ में प्रेम मनुष्य को आत्मकेंद्रितता से मुक्त करने वाली शक्ति बन जाता है।

5.3 आशा और धैर्य – यक्ष की स्थिति दुःखपूर्ण है, फिर भी वह निराश होकर निष्क्रिय नहीं बैठता। वह मेघ को संदेशवाहक बनाकर अपनी आशा को जीवित रखता है। यह पक्ष जीवन–दर्शन की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है। विपरीत परिस्थितियों में भी मनुष्य आशा, स्मृति और भविष्य के विश्वास के सहारे जीवन को अर्थ प्रदान कर सकता है।

5.4 मानव और प्रकृति की एकात्मता – मेघदूत का सबसे महत्वपूर्ण दार्शनिक पक्ष मानव और प्रकृति के बीच एकात्मता है। यक्ष अपनी भावनाओं को व्यक्त करने के लिए प्रकृति का सहारा लेता है और मेघ को संवेदनशील दूत के रूप में संबोधित करता है। इस प्रकार प्रकृति और मानव को दो अलग–अलग सत्ता न मानकर एक ही व्यापक जीवन–जगत के अंग के रूप में देखा गया है। आधुनिक अध्ययनों में भी मेघदूत की इसी विशेषता को मानव और प्राकृतिक जगत के बीच अंतर्संबंध के रूप में रेखांकित किया गया है।

5.5 स्मृति और अस्तित्व – यक्ष के लिए उसकी प्रिया की स्मृति उसके अस्तित्व का महत्वपूर्ण आधार बन जाती है। स्मृति केवल अतीत का पुनरावर्तन नहीं है, बल्कि वर्तमान को सहने और भविष्य की आशा बनाए रखने का माध्यम है। इस दृष्टि से मेघदूत मनुष्य के अस्तित्व में स्मृति और संबंधों की भूमिका पर सूक्ष्म प्रकाश डालता है।

6. प्रकृति-चित्रण : सांस्कृतिक और दार्शनिक सेतु – मेघदूत की प्रकृति को केवल अलंकारिक सौंदर्य के रूप में देखना पर्याप्त नहीं है। यहाँ प्रकृति भावों को व्यक्त करती है, मनुष्य की संवेदनाओं को प्रतिबिंबित करती है और सांस्कृतिक स्मृतियों को सुरक्षित रखती है।

बादल स्वयं इस प्रक्रिया का केंद्रीय प्रतीक है। वह आकाश और पृथ्वी, दूरी और निकटता, विरह और मिलन के बीच सेतु का कार्य करता है। यक्ष और यक्षिणी के बीच भौतिक दूरी को वह भावनात्मक संपर्क में बदल देता है। इस दृष्टि से मेघ एक साथ प्राकृतिक तत्व, संदेशवाहक, भावनात्मक प्रतीक और सांस्कृतिक माध्यम बन जाता है।

7. काव्य-सौंदर्य और दर्शन का समन्वय – मेघदूत की महानता इस बात में है कि इसमें दर्शन किसी उपदेश के रूप में नहीं आता। वह काव्यात्मक अनुभूति में घुला हुआ है। कालिदास प्रकृति का वर्णन करते हुए दर्शन व्यक्त करते हैं और प्रेम का वर्णन करते हुए मानव–जीवन की गहरी सच्चाइयों को उद्घाटित करते हैं। यही कारण है कि काव्य का सौंदर्य और उसका विचार–पक्ष एक–दूसरे से अलग नहीं किए जा सकते।

आधुनिक अध्ययनों में मेघदूत के संबंध में प्रकृति, भावना, मिथकीय स्मृति, भाषा और काव्य–रूप के इसी अंतर्संबंध पर विशेष ध्यान दिया गया है।

8. समकालीन संदर्भ में मेघदूत की प्रासंगिकता –

आज के तकनीकी युग में संचार के साधन अत्यंत विकसित हो चुके हैं, फिर भी मेघदूत की भावनात्मक प्रासंगिकता समाप्त नहीं हुई है। इसका कारण यह है कि काव्य का मूल विषय तकनीक नहीं, बल्कि मानवीय संवेदना है। आज पर्यावरण–संकट के समय में कालिदास की प्रकृति–दृष्टि विशेष रूप से विचारणीय है। मेघदूत

प्रकृति को केवल उपयोग की वस्तु के रूप में नहीं देखता, बल्कि उसे मानवीय जीवन और संवेदना का अभिन्न अंग बनाता है। समकालीन शोध भी कालिदास के प्रकृति–चित्रण में पर्यावरणीय चेतना और मानव–प्रकृति संबंध की ओर संकेत करता है।

इसी प्रकार आधुनिक मनुष्य के अकेलेपन, दूरी और भावनात्मक विछोह के संदर्भ में यक्ष की विरह–व्यथा आज भी पाठक को प्रभावित करती है।

9. निष्कर्ष –

मेघदूत संस्कृत साहित्य का ऐसा काव्य है जिसमें प्रेम, विरह, प्रकृति, संस्कृति और दर्शन का अद्‌भुत समन्वय दिखाई देता है। यक्ष की व्यक्तिगत विरह–व्यथा कालिदास की प्रतिभा के माध्यम से सार्वभौमिक मानवीय अनुभव बन जाती है।

सांस्कृतिक दृष्टि से यह काव्य भारतीय भूगोल, धार्मिक आस्था, नगर–संस्कृति, लोक–स्मृति और सौंदर्यबोध का सजीव चित्र प्रस्तुत करता है। दार्शनिक दृष्टि से यह प्रेम, स्मृति, आशा, विरह और मानव–प्रकृति संबंध के गहन प्रश्नों को सामने लाता है। इस काव्य में प्रकृति निष्क्रिय दृश्य नहीं है, वह मानव–भावना की सहचरी है। मेघ केवल वर्षा का संकेत नहीं, बल्कि मनुष्य के हृदय और दूर स्थित प्रिय के बीच संबंध स्थापित करने वाला प्रतीक है। यही कारण है कि मेघदूत की प्रासंगिकता अपने काल से आगे बढ़कर आधुनिक युग तक बनी हुई है।

अतः यह कहना उचित होगा कि मेघदूत केवल विरह–श्रृंगार का उत्कृष्ट उदाहरण नहीं, बल्कि भारतीय सांस्कृतिक चेतना, प्रकृति–दृष्टि और जीवन–दर्शन का महत्वपूर्ण काव्यात्मक दस्तावेज है। स्पष्ट होता है कि 'मेघदूत'में प्रकृति–सौंदर्य के साथ भारतीय धार्मिक आस्था, तीर्थ–भावभावना, शिव–भक्ति तथा पुण्य–कर्म और स्वर्ग की आध्यात्मिक अवधारणा भी अभिव्यक्त हुई है। कालिदास इन स्थलों का वर्णन केवल बाहरी सौंदर्य के लिए नहीं करते, बल्कि उनके साथ जुड़ी सांस्कृतिक स्मृतियों को भी काव्यात्मक अर्थ देते हैं। इस कारण मेघदूत भारतीय धार्मिक–सांस्कृतिक चेतना का भी प्रतिनिधित्व करता है।

संदर्भ-सूची –

1. मेघदूतम् – कालिदास।
2. मेघदूत, टीका एवं हिंदी व्याख्या सहित कालिदास।
3. संस्कृत साहित्य का इतिहास – रामचन्द्र पाण्डेय।
4. संस्कृत साहित्य का इतिहास – बलदेव उपाध्याय,
5. संस्कृत साहित्य का इतिहास – उमाशंकर – शर्मा।
6. हिंदी साहित्य कोश – धीरेन्द्र वर्मा।
7. कालिदास के काव्य में प्रकृति–चित्रण – वाचस्पति झा.।
8. कालिदास के काव्य का आलोचनात्मक अध्ययन – राघवन, वी.।
9. कालिदास का मेघदूत, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली – एस. के. डे.।

dhanijamod731@gmail.com, 9179979519

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED PRINT RESEARCH JOURNAL
SANGAM
Vol. 14, Issue 7-8
पृष्ठ : 238–242

क्वांटम मैकेनिक्स और अद्वैत वेदांत का तुलनात्मक अध्ययन

(वास्तविकता, प्रेक्षण और चेतना के प्रश्नों का विश्लेषण)

ध्रुव कुमार मिश्र, शोधार्थी
पंडित शम्भूनाथ शुक्ल विश्वविद्यालय, शहडोल–484001

1. शोध-संक्षेप (Abstract)

आधुनिक भौतिकी और भारतीय दार्शनिक परंपराओं के बीच संवाद का प्रश्न लंबे समय से रुचि का विषय रहा है। क्वांटम मैकेनिक्स सूक्ष्म भौतिक तंत्रों के वर्णन में ऐसी अवधारणाएँ प्रस्तुत करता है 'जैसे संभाव्यता, अनिश्चितता, क्वांटम अवस्था और मापन' जो दार्शनिक प्रश्न उत्पन्न करती हैं। दूसरी ओर, अद्वैत वेदांत ब्रह्म, आत्मा, जगत्, माया, अध्यास तथा ज्ञान के माध्यम से वास्तविकता की समस्या का विशिष्ट दार्शनिक विवेचन करता है। प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य इन दोनों परंपराओं को एक–दूसरे का वैज्ञानिक प्रमाण सिद्ध करना नहीं, बल्कि वास्तविकता, प्रेक्षण और ज्ञान से संबंधित प्रश्नों पर उनके बीच संभावित वैचारिक संवाद की सीमाओं का तुलनात्मक परीक्षण करना है। अध्ययन में विशेष ध्यान इस लोकप्रिय समानता पर दिया गया है कि क्वांटम मैकेनिक्स का 'observer' अद्वैत वेदांत के साक्षी–चैतन्य के समान है। विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि दोनों अवधारणाओं के संदर्भ, उद्देश्य और प्रमाण–पद्धति भिन्न हैं। इसी प्रकार सुपरपोजिशन, अनिश्चितता और एन्टैंग्लमेंट को क्रमशः अध्यास, माया एवं अद्वैत के एकत्व का वैज्ञानिक प्रमाण मानना उचित नहीं है। अध्ययन का प्रमुख योगदान एक सीमा–निर्धारित तुलनात्मक ढाँचा प्रस्तुत करना है, जिसमें समानता, भिन्नता और श्रेणी–दोष (category error) के बीच अंतर किया गया है।

मुख्य शब्द : अद्वैत वेदांत, क्वांटम मैकेनिक्स, वास्तविकता, प्रेक्षक, चेतना, साक्षी, माया, मापन।

2. प्रस्तावना :

विज्ञान और दर्शन दोनों वास्तविकता तथा ज्ञान के प्रश्न से संबंधित हैं, किंतु उनकी पद्धतियाँ भिन्न हैं। विज्ञान प्राकृतिक घटनाओं का परीक्षणीय और गणितीय वर्णन विकसित करता है, जबकि दर्शन अस्तित्व, ज्ञान, अभाव और वास्तविकता की मूल अवधारणाओं का विश्लेषण करता है। इसलिए दोनों के बीच संवाद तभी उपयोगी हो सकता है जब उनकी प्रमाण–मानदंड और अवधारणात्मक सीमाओं को सुरक्षित रखा जाए।

क्वांटम मैकेनिक्स इस संदर्भ में विशेष महत्त्व रखती है। सूक्ष्म भौतिक तंत्रों का वर्णन करते समय क्वांटम अवस्था, प्रायिकता, सुपरपोजिशन और मापन जैसी अवधारणाएँ क्लासिकल अंतर्दृष्टि से भिन्न ढाँचा प्रस्तुत करती हैं (Griffiths - Schroeter, 2018)। इससे यह प्रश्न उठता है कि वैज्ञानिक सिद्धांत द्वारा दिए गए वर्णन और

भौतिक वास्तविकता के बारे में दार्शनिक निष्कर्ष किस प्रकार संबंधित हैं।

अद्वैत वेदांत का प्रश्न अलग स्तर पर है। इसमें ब्रह्म, आत्मा, ज्ञान और जगत् के संबंध का विवेचन किया जाता है। अद्वैत की दार्शनिक संरचना को आधुनिक भौतिकी के किसी सिद्धांत में सीधे रूपांतरित करना उचित नहीं है (Deutsch, 1969; Sa?kara, 1992)।

पूर्ववर्ती अध्ययनों में क्वांटम भौतिकी और अद्वैत वेदांत के बीच प्रेक्षक (observer), मापन तथा अंतर्संबद्धता के आधार पर संवाद स्थापित करने के प्रयास हुए हैं। Duquette (2011) ने इस पूरे विमर्श को Bernard d'Espagnat के वैज्ञानिक यथार्थवाद के संदर्भ में आलोचनात्मक रूप से देखा। इससे स्पष्ट है कि केवल समानताएँ सूचीबद्ध करना पर्याप्त शोध–अंतराल नहीं है, आवश्यकता इस बात की है कि यह निर्धारित किया जाए कि समानता किस सीमा तक वैध है।

3. शोध के उद्देश्य एवं शोध प्रश्न :

इस अध्ययन के उद्देश्य हैं – (1) अद्वैत वेदांत में वास्तविकता, आत्मा, ब्रह्म और साक्षी–चैतन्य की अवधारणाओं का विवेचन, (2) क्वांटम मैकेनिक्स में मापन, सुपरपोजिशन और अनिश्चितता से संबंधित दार्शनिक प्रश्नों का संक्षिप्त अध्ययन, (3) वास्तविकता और प्रेक्षण के प्रश्न पर दोनों का तुलनात्मक परीक्षण, तथा (4) लोकप्रिय समानताओं की वैधता और सीमाओं का तुलनात्मक विश्लेषण।

मुख्य शोध प्रश्न हैं : क्या अद्वैत का साक्षी और क्वांटम मैकेनिक्स का observer समान प्रकार की अवधारणाएँ हैं? क्या माया और क्वांटम अनिश्चितता के बीच वास्तविक वैचारिक संबंध है? क्या एन्टैंग्लमेंट को अद्वैत के एकत्व से जोड़ना वैज्ञानिक रूप से उचित है? और क्या दोनों परंपराओं के बीच ऐसा संवाद संभव है जो वैज्ञानिक तथा दार्शनिक दोनों संदर्भों की सीमाओं का सम्मान करे?

4. अध्ययन की पद्धति :

यह अध्ययन दार्शनिक–तुलनात्मक पद्धति पर आधारित है। पहले दोनों परंपराओं की अवधारणाओं को उनके अपने ऐतिहासिक और सैद्धांतिक संदर्भ में समझा गया है, उसके बाद तीन स्तरों 'अर्थ, प्रमाण–पद्धति और निष्कर्ष की सीमा' पर तुलनात्मक परीक्षण किया गया है। इस अध्ययन में किसी पूर्वनिर्धारित आध्यात्मिक निष्कर्ष को क्वांटम सिद्धांत से सिद्ध करने का प्रयास नहीं किया गया है।

5. अद्वैत वेदांत में वास्तविकता और चेतना :

अद्वैत वेदांत में ब्रह्म को परम वास्तविकता के रूप में प्रतिपादित किया जाता है, और आत्मा–ब्रह्म संबंध इसके केंद्रीय प्रश्न में स्थित है। अद्वैत की व्याख्या में अभाव–जगत् को मात्र शून्य या पूर्णतः अस्तित्वहीन मानना उसके दार्शनिक आशय का अत्यधिक सरलीकरण होगा। वास्तविकता के स्तर, ज्ञान और अध्यास की समस्या के साथ लेकर ही इसकी व्याख्या पूरी होती है (Deutsch, 1969)।

साक्षी की अवधारणा अभाव और चेतना की समस्या से संबंधित है। मानसिक अवस्थाएँ, विचार और अनुभूति जिस चेतना–संदर्भ में घटित होती हैं, उस संदर्भ को अद्वैत परंपरा में साक्षी के माध्यम से समझाया जाता है (Sa?kara, 1992)। परंतु यह निष्कर्ष निकालना कि यही साक्षी क्वांटम मापन में प्रयुक्त वइेमतअमत है, स्वतंत्र तर्क की मांग करता है।

6. क्वांटम मैकेनिक्स में वास्तविकता और मापन :

क्वांटम मैकेनिक्स किसी क्वांटम तंत्र की अवस्था को गणितीय रूप से व्यक्त करती है और मापन से संभावित परिणामों की प्रायिकताएँ निर्धारित करती है। सुपरपोजिशन क्वांटम अवस्था के गणितीय संयोजन को व्यक्त करता है, इसे दैनिक अनुभव में किसी वस्तु के साधारण अर्थ में एक साथ कई निश्चित अवस्थाओं में होने के रूपक के रूप में नहीं देखा जाना चाहिए (Griffiths - Schroeter, 2018)।

हाइजनबर्ग अनिश्चितता सिद्धांत कुछ conjugate observables के बीच अनिश्चितता–संबंध को व्यक्त करता है। इसे केवल उपकरणों की कमजोर मापन–क्षमता या त्रुटि नहीं माना जाना चाहिए, यह क्वांटम स्वरूप की संरचना से संबंधित है। साथ ही, अनिश्चितता से सीधे यह निष्कर्ष निकालना कि 'वास्तविकता स्वयं आध्यात्मिक अर्थ में अनिश्चित है', वैज्ञानिक निष्कर्ष नहीं है।

क्वांटम मापन के संदर्भ में 'observer' शब्द विशेष सावधानी चाहता है। प्रायोगिक भौतिकी में मापन को किसी उपकरण और क्वांटम तंत्र की अंतःक्रिया के माध्यम से वर्णित किया जा सकता है, इसलिए मानव चेतना का होना क्वांटम मापन के लिए आवश्यक शर्त होना स्थापित वैज्ञानिक निष्कर्ष नहीं है। चेतना–आधारित पतन (collapse) की व्याख्याएँ इतिहास में प्रस्तावित रही हैं, परंतु उन्हें क्वांटम मैकेनिक्स का अनिवार्य निष्कर्ष नहीं माना जा सकता (Duquette, 2011)।

क्वांटम एन्टैंग्लमेंट संयुक्त क्वांटम अवस्थाओं में ऐसे सहसंबंध व्यक्त करता है जिन्हें क्लासिकल स्वतंत्र घटकों के साधारण वर्णन से पूरी तरह नहीं समझाया जा सकता। परंतु एन्टैंग्लमेंट को आध्यात्मिक एकत्व का वैज्ञानिक प्रमाण मानना श्रेणी–दोष (category error) होगा, क्योंकि दोनों अवधारणाएँ भिन्न सैद्धांतिक संदर्भों में विकसित हुई हैं।

7. पूर्ववर्ती अध्ययन एवं शोध-अंतराल :

क्वांटम भौतिकी और अद्वैत वेदांत के बीच तुलनात्मक साहित्य पहले से उपलब्ध है। Duquette (2011) ने प्रेक्षक और भौतिक अंतर्संबद्धता से संबंधित rapprochements की आलोचनात्मक समीक्षा की। चेतना और वेदांत पर तुलनात्मक साहित्य भी उपलब्ध है, जिसमें प्रेक्षक–प्रेक्ष्य संबंध पर चर्चा की गई है (Prabhu - Bhat, 2013)। इसलिए वर्तमान अध्ययन पहली बार संबंध स्थापित करने का दावा नहीं करता।

शोध–अंतराल इस बात में स्थित है कि लोकप्रिय तुलनाओं में प्रायः वैचारिक समानता, रूपक और वैज्ञानिक तुल्यता के बीच पर्याप्त अंतर नहीं रखा जाता। वर्तमान अध्ययन इस अंतर को स्पष्ट करने के लिए तीन प्रश्नों वाला ढाँचा प्रस्तावित करता है : (i) क्या दोनों अवधारणाओं का अर्थ समान है? (ii) क्या उनकी प्रमाण–पद्धति समान है? और (iii) यदि नहीं, तो तुलना किस सीमित अर्थ में उपयोगी रह सकती है?

8. अद्वैत वेदांत और क्वांटम मैकेनिक्स : तुलनात्मक विश्लेषण :

वास्तविकता के प्रश्न पर दोनों में एक सीमित दार्शनिक संवाद संभव है। अद्वैत अभाव–जगत् और परम वास्तविकता के संबंध को तात्विक तथा ज्ञानमीमांसीय ढाँचे में देखता है, जबकि क्वांटम मैकेनिक्स भौतिक प्रणालियों के प्रेक्षणीय परिणामों का औपचारिक विवरण देती है। अतः क्वांटम अवस्था को सीधे ब्रह्म या परम वास्तविकता मानना उचित नहीं है।

प्रेक्षक और साक्षी के बीच समानता पहली दृष्टि में आकर्षक है, क्योंकि दोनों 'जानने' से संबंधित भाषा

उत्पन्न करते हैं। फिर भी क्वांटम observer का वैज्ञानिक अर्थ मापन–संदर्भ से जुड़ा है, जबकि अद्वैत का साक्षी चेतना के दार्शनिक आधार से। इसलिए 'observer = साक्षी' की पहचान के बजाय, इसे एक सीमित तुलनात्मक रूपक (analogy) के रूप में ही देखा जा सकता है।

माया और अनिश्चितता के बीच भी यही सीमा लागू होती है। माया अद्वैत की तात्विक–ज्ञानमीमांसीय संरचना का हिस्सा है, जबकि अनिश्चितता एक औपचारिक क्वांटम संबंध है। दोनों को एक ही परिघटना कहना अनुचित होगा, केवल यह कहा जा सकता है कि दोनों हमारी सहज धारणाओं की सीमाओं पर प्रश्न उठाकर अलग–अलग रास्ते प्रस्तुत करते हैं।

इसी प्रकार सुपरपोजिशन और अध्यास केवल शब्द–साम्य के कारण समान नहीं हैं। सुपरपोजिशन क्वांटम अवस्था के रैखिक संयोजन से संबंधित है, जबकि अध्यास ज्ञानगत आरोप की दार्शनिक समस्या से। एन्टैंग्लमेंट और अद्वैत के एकत्व के बीच भी वैज्ञानिक तुल्यता स्थापित नहीं की जा सकती।

9. चर्चा :

तुलनात्मक अध्ययन का अधिक उत्पादक परिणाम समानता सिद्ध करना नहीं, बल्कि अंतर को स्पष्ट करते हुए साझा दार्शनिक प्रश्नों की पहचान करना है। क्वांटम मैकेनिक्स यह दिखाती है कि सूक्ष्म भौतिक प्रणालियों का वर्णन क्लासिकल अंतर्दृष्टि से अधिक जटिल है। अद्वैत वेदांत दूसरी दिशा में यह प्रश्न उठाता है कि ज्ञाता, अभाव और वास्तविकता का संबंध क्या है। इन दोनों प्रश्नों को एक ही प्रश्न मानना गलत होगा, परंतु इनके बीच संवाद भौतिकी–दर्शन और तुलनात्मक दर्शन दोनों के लिए उपयोगी हो सकता है।

विशेष रूप से observer की समस्या एक सीमा–निर्धारण का अच्छा उदाहरण है। यदि observer को मात्र मापन–उपकरण के अर्थ में लिया जाए तो उसे अद्वैत के साक्षी से जोड़ना अनुचित होगा। यदि किसी क्वांटम व्याख्या में observer को चेतना से संबंधित दार्शनिक अर्थ दिया जाए, तब भी उस व्याख्या को क्वांटम सिद्धांत के सभी रूपों का वैज्ञानिक निष्कर्ष नहीं कहा जा सकता। इस भेद को बनाए रखना अंतर्विषयी शोध की पद्धतिगत आवश्यकता है।

10. अध्ययन की सीमा एवं योगदान :

प्रस्तुत अध्ययन की सीमा किसी ऐसी समानता की खोज में नहीं है जो पहले कभी प्रस्तावित न हुई हो। इसका योगदान एक सीमा–निर्धारित तुलनात्मक ढाँचे में है, जिसमें चार लोकप्रिय जोड़ियों 'प्रेक्षक–साक्षी, अनिश्चितता–माया, सुपरपोजिशन–अध्यास और एन्टैंग्लमेंट–एकत्व' को उनके अर्थ, संदर्भ और प्रमाण–पद्धति के आधार पर परखा गया है।

इससे 'वैचारिक संवाद', 'रूपकात्मक समानता' और 'वैज्ञानिक प्रमाण' के बीच स्पष्ट अंतर स्थापित होता है। यही अंतर इस अध्ययन को उन दावों से अलग करता है जिनमें क्वांटम परिघटनाओं को सीधे आध्यात्मिक सिद्धांतों का empirical प्रमाण माना जाता है। भविष्य में क्वांटम मापन की विशिष्ट व्याख्याओं तथा भारतीय ज्ञानमीमांसा के अधिक तर्कों का तुलनात्मक अध्ययन इस ढाँचे को आगे बढ़ा सकता है।

11. निष्कर्ष :

अद्वैत वेदांत और क्वांटम मैकेनिक्स दो भिन्न ऐतिहासिक, बौद्धिक और पद्धतिगत परंपराओं का प्रतिनिधित्व करते हैं। अद्वैत वेदांत ब्रह्म, आत्मा, ज्ञान और परम वास्तविकता के प्रश्न का दार्शनिक विवेचन करता

है, जबकि क्वांटम मैकेनिक्स सूक्ष्म भौतिक प्रणालियों के व्यवहार का गणितीय तथा प्रायोगिक वर्णन प्रस्तुत करती है। इसलिए दोनों को एक ही प्रकार के सिद्धांत के रूप में देखना उचित नहीं है।

तुलनात्मक अध्ययन से यह अवश्य सामने आता है कि वास्तविकता, अभाव, प्रेक्षण और ज्ञान जैसे प्रश्न दोनों परंपराओं में महत्त्वपूर्ण हैं, परंतु उनके उत्तर देने की पद्धति अलग है। विशेष रूप से क्वांटम observer को अद्वैत के साक्षी–चैतन्य के समान मानना स्थापित वैज्ञानिक निष्कर्ष नहीं है। इसी प्रकार सुपरपोजिशन, अनिश्चितता अथवा एन्टैंग्लमेंट को अध्यास, माया अथवा अद्वैत के एकत्व का वैज्ञानिक प्रमाण मानना भी उचित नहीं है।

इस अध्ययन का प्रमुख निष्कर्ष यह है कि दोनों के बीच सबसे सार्थक संबंध समानता के दावे में नहीं, बल्कि तुलनात्मक संवाद में है। क्वांटम मैकेनिक्स हमारी भौतिक वास्तविकता की सहज धारणाओं पर प्रश्न उठाने का अवसर देती है, जबकि अद्वैत वेदांत ज्ञाता, अभाव और परम वास्तविकता के संबंध को अलग दार्शनिक दृष्टि से देखता है। अतः इन दोनों का अध्ययन एक–दूसरे को सिद्ध करने के बजाय वास्तविकता और ज्ञान के प्रश्नों को अधिक सूक्ष्मता से समझने में सहायक हो सकता है।

12. आभार :

लेखक उन विद्वानों और शोधकर्ताओं के प्रति आभार व्यक्त करता है जिनके प्रकाशित कार्यों से इस अध्ययन की दार्शनिक तथा वैज्ञानिक पृष्ठभूमि निर्मित हुई।

13. संदर्भ ग्रन्थ :

- Deutsch, Eliot. (1969). Advaita Vedanta: A Philosophical Reconstruction. Honolulu: University of Hawaii Press.
- Duquette, Jonathan. (2011). "Quantum Physics and Vedanta": A Perspective from Bernard d'Espagnat's Scientific Realism. Zygon, 46(3), 620–638. https://doi.org/10.1111/j.1467-9744.2011.01202.x
- Griffiths, David J., & Schroeter, Darrell F. (2018). Introduction to Quantum Mechanics (3rd ed.). Cambridge: Cambridge University Press.
- Prabhu, H. R. Aravinda, & Bhat, P. S. (2013). Mind and consciousness in yoga–Vedanta: A comparative analysis with western psychological concepts. Indian Journal of Psychiatry, 55(Suppl 2), S182–S186. https://doi.org/10.4103/0019-5545.105524
- रमण महर्षि। नान् यार (मैं कौन हूँ?) श्री रमणाश्रम, तिरुवन्नामलई।
- व्यास (कृष्ण द्वैपायन)। श्रीमद्भगवद्गीता।
- Sa?karacarya. आत्मबोध।
- Sa?karacarya. तत्त्वबोध।
- Sa?karacarya. विवेकचूड़ामणि।
- Sa?karacarya. (1992). । Thousand Teachings: The Upadesasahasri of Sa?kara (S. Mayeda, Trans. - Ed.). Albany : State University of New York Press.

शहर, प्रदेश, देश : तहसील ब्योहारी, जिला शहडोल, मध्य प्रदेश, भारत–484774
मोबाइल 9669821755 ई–मेल : m.dhruv7654321@gmail.com

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE PEER REVIEWED REFEREED PRINT RESEARCH JOURNAL
Vol. 14, Issue 7-8
पृष्ठ : 243–259

The Psychological Effects of White Beauty Standards, Internalized Racism and the Quest for Identity in Toni Morrison's The Bluest Eye

Shamama Bano, Research Scholar,
Dr. Manju Sharma, Guide,
Department of English, Bhagwant University Ajmer Rajasthan, Ajmer, Rajasthan.

Abstract :

Toni Morrison's The Bluest Eye (1970) offers a powerful critique of the racialized beauty standards that shape the psychological and social experiences of African American women and girls. This paper examines the psychological effects of white beauty standards in the novel, focusing on the experiences of Pecola Breedlove, whose longing for blue eyes symbolizes her internalization of white ideals of beauty and worth. Through Pecola's tragic journey, Morrison exposes how systemic racism, cultural discrimination, and social exclusion contribute to the formation of self-hatred, inferiority, and psychological trauma. Employing the theoretical perspectives of Black Feminism and Critical Race Theory, the study investigates the intersections of race, gender, class, and identity in shaping Pecola's fractured sense of self. The paper argues that Morrison portrays beauty not as an objective ideal but as a socially constructed instrument of racial and gender oppression that devalues Blackness and privileges whiteness. Furthermore, it explores how family neglect, community prejudice, and media representations reinforce these oppressive standards, leading to emotional alienation and mental disintegration. Morrison's narrative also challenges readers to reconsider dominant cultural definitions of beauty and to recognize their devastating consequences for marginalized communities.

Ultimately, The Bluest Eye serves as a profound critique of institutional racism and the psychological violence inflicted by Eurocentric beauty ideals. The study concludes that Morrison advocates for the affirmation of Black identity, self-worth, and cultural dignity while exposing the destructive impact of internalized racism on individual and collective consciousness. By situating the novel within contemporary discussions of race, beauty, and identity, this paper highlights its enduring

relevance in understanding the psychological consequences of exclusionary beauty standards.

Keywords : Toni Morrison; The Bluest Eye; White Beauty Standards; Psychological Trauma; Internalized Racism; Black Feminism; Racial Identity; Self-Identity; Eurocentric Beauty Ideals; African American Literature.

Introduction :

Toni Morrison (1931–2019) is widely regarded as one of the most influential voices in African American literature. Her works explore the intersections of race, gender, history, memory, and identity, offering profound insights into the lived experiences of Black communities in the United States. Published in 1970, The Bluest Eye, Morrison's debut novel, presents a compelling critique of the cultural and psychological consequences of racism and Eurocentric beauty standards. Set in Lorain, Ohio, during the Great Depression, the novel tells the tragic story of Pecola Breedlove, an eleven-year-old African American girl who longs for blue eyes, believing that possessing the physical features associated with whiteness will make her beautiful, accepted, and loved.

At the heart of The Bluest Eye lies Morrison's exploration of how dominant ideals of beauty function as instruments of racial and social oppression. In a society where whiteness is celebrated as the universal standard of beauty, Blackness is systematically devalued. This hierarchy is reinforced through family relationships, educational institutions, popular culture, religion, and the media, all of which shape the self-perception of African American children. As Pecola internalizes these ideals, she develops a deep sense of self-hatred and inferiority that ultimately leads to severe psychological trauma. Morrison demonstrates that racism operates not only through overt discrimination but also through the internalization of cultural values that undermine Black identity and self-worth.

The novel further illustrates that psychological suffering cannot be understood in isolation from broader social structures. Pecola's experiences are shaped by poverty, domestic violence, neglect, sexual abuse, and community indifference. These interconnected forms of oppression reveal how race, gender, and class combine to create conditions that marginalize Black girls. Morrison refuses to portray Pecola's tragedy as an individual failure; instead, she exposes the collective responsibility of a society that privileges Eurocentric ideals while denying the humanity and dignity of African Americans.

This study examines the psychological effects of white beauty standards in The Bluest Eye by analysing the relationship between racialized beauty ideals, internalized racism, and identity formation. Drawing on Black Feminist Theory and Critical Race Theory, the paper argues that Morrison critiques beauty as a socially constructed mechanism of power that reinforces racial inequality and gender oppression. The analysis focuses on Pecola Breedlove's psychological development while also

considering the experiences of Claudia MacTeer, Pauline Breedlove, and other female characters, whose responses to oppressive beauty norms reveal different forms of resistance, accommodation, and survival.

The study further argues that Morrison's novel remains highly relevant in the contemporary world, where media representation, colourism, and unrealistic beauty ideals continue to influence individual self-esteem and cultural identity. Although written more than five decades ago, The Bluest Eye continues to illuminate the enduring psychological consequences of racial discrimination and exclusionary standards of beauty. By exposing the destructive effects of internalized racism and affirming the value of Black identity, Morrison challenges readers to question dominant cultural narratives and to embrace more inclusive understandings of beauty, humanity, and self-worth.

Through a close textual analysis supported by contemporary critical scholarship, this paper contributes to ongoing discussions in African American literary studies, Black feminist criticism, and cultural studies by demonstrating how Morrison transforms a deeply personal narrative into a powerful critique of systemic racism and its lasting psychological impact.

Literature Review :

Since its publication in 1970, Toni Morrison's The Bluest Eye has attracted extensive scholarly attention for its powerful examination of race, gender, beauty, identity, and psychological trauma. As Morrison's debut novel, it has become a foundational text in African American literary studies and Black feminist criticism. Scholars have consistently argued that the novel exposes the devastating consequences of Eurocentric beauty ideals and systemic racism on Black women's lives. This review surveys the major critical perspectives relevant to the present study while identifying the research gap addressed by this paper.

Early criticism of The Bluest Eye focused on Morrison's representation of racial oppression and the destructive influence of white cultural values. Barbara Christian (1985) argues that Morrison challenges dominant American narratives by centring the experiences of Black women, whose identities have historically been marginalized within both literature and society. Christian emphasizes that Pecola Breedlove's desire for blue eyes is not merely a personal wish but a reflection of a society that equates beauty, purity, and value with whiteness.

Deborah E. McDowell (1988) examines the novel through the lens of Black feminist criticism, arguing that Morrison reveals how Black women experience intersecting forms of racial and gender oppression. McDowell contends that Pecola's psychological collapse results from the combined effects of racism, sexism, poverty, and family violence. Her analysis demonstrates that the novel critiques both external structures of discrimination and internalized beliefs that reproduce oppression

within Black communities.

Bell hooks (1992) provides an influential discussion of beauty, representation, and racial identity in Black feminist thought. She argues that dominant Western beauty standards privilege whiteness while rendering Black women invisible or undesirable. Although hooks discusses Morrison within a broader cultural context, her theoretical insights illuminate Pecola's longing for blue eyes as an expression of internalized racism and cultural alienation. Hooks further argues that reclaiming Black beauty is essential for resisting oppressive social ideologies.

Patricia Hill Collins (2000) expands this discussion by emphasizing the importance of Black feminist epistemology in understanding identity and oppression. Collins argues that race, gender, and class cannot be studied independently because they interact to shape the experiences of Black women. Her theory of intersecting systems of power provides a valuable framework for analysing Morrison's female characters, particularly the ways in which structural inequalities influence their self-perception and life opportunities.

The concept of internalized racism has also been central to scholarship on The Bluest Eye. Frantz Fanon's Black Skin, White Masks (1952) remains one of the most significant theoretical works for understanding the psychological consequences of colonialism and racial domination. Fanon argues that oppressed individuals often internalize the values of the dominant culture, resulting in feelings of inferiority and self-hatred. Although Fanon writes within a colonial context, his insights help explain Pecola's belief that acquiring blue eyes would transform her life by making her worthy of love and acceptance.

Critical Race Theory has further enriched interpretations of Morrison's novel. Scholars such as Kimberlé Crenshaw (1989) argue that race, gender, and other social identities intersect to produce unique forms of discrimination. Crenshaw's theory of intersectionality demonstrates that Pecola's suffering cannot be attributed solely to racism or sexism but emerges from the interaction of multiple systems of oppression. This perspective highlights Morrison's nuanced portrayal of Black girlhood within a society structured by racial and gender inequality.

Numerous scholars have also explored Morrison's representation of psychological trauma. Jill Matus (1998) argues that trauma in Morrison

Research Gap :

Although The Bluest Eye has been widely studied from the perspectives of race, gender, trauma, and identity, much of the existing scholarship examines these themes independently. Several studies focus on the psychological trauma experienced by Pecola Breedlove, while others emphasize Black feminist thought, Critical Race Theory, or the influence of Eurocentric beauty ideals. However,

relatively few studies provide an integrated analysis of how white beauty standards operate as a psychological mechanism that shapes identity through the intersection of race, gender, class, family, and community.

Moreover, earlier research has primarily highlighted the social and cultural dimensions of racism without fully exploring the internal psychological processes through which oppressive beauty ideals become internalized. The relationship between white beauty standards, self-perception, emotional trauma, and mental disintegration requires further critical attention, particularly within an interdisciplinary framework that combines Black Feminist Theory and Critical Race Theory.

This study addresses these gaps by examining how Morrison portrays white beauty standards as a form of systemic psychological violence that undermines Black female identity and self-worth. By integrating literary analysis with contemporary theories of race, gender, and identity, the research offers a comprehensive understanding of the psychological consequences of internalized racism in The Bluest Eye. It also demonstrates the continuing relevance of Morrison's novel in contemporary discussions of beauty, representation, mental health, and racial justice.

Research Objectives :

The present study aims to achieve the following objectives :

1. To examine the influence of white beauty standards on the psychological development of Pecola Breedlove in Toni Morrison's The Bluest Eye.
2. To analyse how Eurocentric ideals of beauty contribute to the internalization of racism, self-hatred, and identity crisis among African American women and girls.
3. To explore the intersection of race, gender, class, and family dynamics in shaping the psychological experiences of the novel's female characters.
4. To investigate Morrison's critique of systemic racism and cultural oppression through her portrayal of beauty, identity, and psychological trauma.
5. To interpret The Bluest Eye using Black Feminist Theory and Critical Race Theory in order to understand the relationship between beauty, power, and racial identity.
6. To evaluate the continuing relevance of Morrison's critique of Eurocentric beauty ideals in contemporary discussions of race, mental health, self-image, and social justice.

Research Questions :

This study seeks to answer the following research questions :

1. How do white beauty standards influence the psychological development and self-perception of Pecola Breedlove in Toni Morrison's The Bluest Eye?
2. In what ways does Morrison portray the internalization of racism through Eurocentric ideals

of beauty?

3. How do race, gender, class, and family relationships contribute to the psychological trauma experienced by the novel's female characters?
4. How does Morrison critique the social and cultural institutions that promote white beauty standards and marginalize Black identity?
5. How do Black Feminist Theory and Critical Race Theory help explain the relationship between beauty, identity, and psychological oppression in The Bluest Eye?
6. What is the contemporary relevance of Morrison's critique of Eurocentric beauty ideals in understanding issues of race, self-image, mental health, and identity?

Theoretical Framework :

This study employs an interdisciplinary theoretical framework that combines Black Feminist Theory, Critical Race Theory (CRT), Psychoanalytic Theory, and Intersectionality to examine the psychological effects of white beauty standards in Toni Morrison's The Bluest Eye. These complementary perspectives provide a comprehensive understanding of how race, gender, class, and psychological trauma interact to shape the identities and experiences of the novel's characters.

Black Feminist Theory :

Black Feminist Theory serves as the primary theoretical framework for this study. Developed by scholars such as bell hooks, Patricia Hill Collins, Barbara Smith, and Angela Davis, Black Feminism argues that the experiences of Black women cannot be fully understood through the lens of race or gender alone. Instead, Black women face multiple and interconnected forms of oppression that influence their social, cultural, and psychological lives.

In The Bluest Eye, Morrison demonstrates how white beauty standards become instruments of racial and gender oppression. Pecola Breedlove's desire for blue eyes reflects her internalization of the belief that whiteness represents beauty, purity, and social acceptance. Similarly, Pauline Breedlove's admiration for white ideals illustrates how systemic racism shapes Black women's perceptions of themselves and others. Black Feminist Theory enables this study to examine how Morrison critiques patriarchal and racist structures that deny Black women dignity, agency, and self-worth.

Critical Race Theory :

Critical Race Theory, developed by scholars such as Derrick Bell, Kimberlé Crenshaw, Richard Delgado, and Jean Stefanick, argues that racism is deeply embedded within social, cultural, legal, and institutional systems. Rather than viewing racism as isolated acts of prejudice, CRT explains it as a structural force that shapes opportunities, identities, and social relations.

This theoretical perspective helps explain how the dominant culture in The Bluest Eye constructs whiteness as the universal standard of beauty. Through education, religion, media, family relationships, and community attitudes, white beauty ideals become normalized, while Blackness is associated with ugliness and inferiority. Pecola's psychological suffering is therefore understood not merely as an individual tragedy but as the consequence of systemic racial oppression. CRT allows the study to analyse how Morrison exposes the institutional nature of racism and its psychological consequences.

Psychoanalytic Theory :

Psychoanalytic Theory provides insight into the psychological dimensions of identity formation, trauma, repression, and self-perception. The theories of Sigmund Freud, together with later developments in trauma studies, help explain the emotional conflicts experienced by Morrison's characters.

Pecola's obsessive desire for blue eyes symbolizes a fractured identity produced by continuous rejection, abuse, and racial discrimination. Her eventual psychological breakdown reflects the cumulative effects of emotional neglect, domestic violence, sexual abuse, and internalized racism. Psychoanalytic Theory enables this study to explore how unconscious desires, trauma, and damaged self-esteem contribute to Pecola's loss of identity and mental stability. Morrison portrays psychological trauma as a social and cultural product rather than simply an individual condition.

Intersectionality :

The concept of Intersectionality, introduced by Kimberlé Crenshaw, emphasizes that systems of oppression such as racism, sexism, class discrimination, and other forms of inequality operate simultaneously rather than independently. Individuals experience discrimination through the interaction of these overlapping identities.

Intersectionality is particularly relevant to The Bluest Eye because Pecola's experiences cannot be explained by race alone. As a poor Black girl living in a patriarchal society, she faces multiple layers of marginalization.

Textual analysis :

Beauty and White Ideals :

One of the central themes in Toni Morrison's The Bluest Eye is the destructive power of white beauty ideals and their impact on the lives of African Americans, particularly Black women and girls. Morrison demonstrates how beauty is not an objective or universal concept but a socially constructed ideal shaped by racial hierarchies. In the novel, whiteness—symbolized by blue eyes, blonde hair, fair skin, and delicate facial features—is presented as the accepted standard of beauty. This Eurocentric

ideal is reinforced by the media, education, religion, family, and the wider community, leading Black individuals to perceive themselves as inferior and unattractive.

Pecola Breedlove embodies the psychological consequences of these oppressive beauty standards. She believes that her dark skin, curly hair, and Black features make her ugly and unworthy of love. Her overwhelming desire for blue eyes reflects her conviction that physical transformation into the white ideal would bring happiness, acceptance, and security. Morrison uses Pecola's longing to expose how deeply racist beauty standards can penetrate an individual's consciousness, creating self-hatred and emotional isolation. Pecola's wish is therefore not simply for a physical change but for social recognition and human dignity.

The novel also illustrates how white beauty ideals affect other characters. Pauline Breedlove, Pecola's mother, internalizes these standards through her admiration of Hollywood films and white middle-class culture. She begins to value the white family for whom she works more than her own family, believing that whiteness represents order, beauty, and success. Her rejection of her own appearance and emotional neglect of Pecola demonstrate how systemic racism damages family relationships and contributes to intergenerational trauma.

In contrast, Claudia McTeer questions dominant beauty standards from an early age. Unlike Pecola, Claudia resists the cultural expectation that white dolls and blonde-haired girls should be admired. She does not understand why society celebrates these images and instinctively challenges the belief that whiteness is naturally beautiful. Through Claudia's perspective, Morrison presents an alternative vision that resists internalized racism and affirms Black identity. Claudia's critical awareness suggests that beauty standards are learned rather than natural and therefore can be challenged and transformed.

Morrison further reveals that beauty functions as a mechanism of social power. Characters who approximate white standards of beauty receive greater acceptance and respect, while those who do not are marginalized and dehumanized. This hierarchy influences relationships within both white and Black communities, encouraging the internalization of racist values. Morrison therefore critiques not only individual prejudice but also the cultural institutions that normalize whiteness as the measure of beauty and humanity.

From the perspectives of Black Feminist Theory and Critical Race Theory, white beauty ideals represent a form of ideological domination that sustains racial inequality. These standards deny Black women the opportunity to define beauty on their own terms and instead pressure them to conform to unattainable Eurocentric ideals. Morrison exposes the emotional and psychological violence embedded in this process, demonstrating that the pursuit of whiteness leads not to liberation but to alienation,

identity fragmentation, and profound psychological suffering.

Ultimately, The Bluest Eye argues that beauty is inseparable from questions of race, power, and identity. By exposing the destructive consequences of white beauty ideals, Morrison challenges readers to reject exclusionary standards of attractiveness and to recognize the dignity, diversity, and value of Black identity. The novel remains a powerful critique of cultural systems that privilege whiteness while marginalizing Black lives and experiences.

Internalized Racism :

Internalized racism is one of the most significant themes in Toni Morrison's The Bluest Eye. It refers to the process through which members of a marginalized racial group unconsciously accept the beliefs, stereotypes, and values imposed by a dominant society. Morrison demonstrates that racism extends beyond external discrimination; it penetrates the minds of its victims, shaping their self-perception and leading to feelings of inferiority, self-hatred, and psychological distress. Through the experiences of Pecola Breedlove and other characters, the novel illustrates how white cultural values become internalized and ultimately destroy individual identity.

Pecola Breedlove represents the most tragic example of internalized racism. Growing up in an environment where whiteness is associated with beauty, goodness, and acceptance, she comes to believe that her Blackness makes her ugly and unworthy of love. Her persistent wish for blue eyes symbolizes her desire to escape the social stigma attached to her racial identity. Rather than questioning the racist standards imposed upon her, Pecola accepts them as truth. Morrison portrays this internalization as the root of Pecola's identity crisis and eventual psychological breakdown.

The novel also reveals that internalized racism is reinforced through everyday experiences. Pecola is rejected by her classmates, ignored by shopkeepers, and treated with indifference by many members of her own community. These repeated acts of humiliation convince her that she has little value as a Black girl. Morrison suggests that racism becomes most destructive when it is normalized within ordinary social interactions, causing individuals to believe that discrimination is justified.

Pauline Breedlove further illustrates the effects of internalized racism. Influenced by Hollywood films and white middle-class ideals, she begins to admire whiteness as the standard of beauty, cleanliness, and success. She gradually distances herself from her own family and devotes her affection to the white household where she works. Pauline's acceptance of Eurocentric values prevents her from appreciating her own identity and contributes to her emotional neglect of Pecola. Morrison thereby demonstrates that internalized racism can be transmitted across generations, damaging family relationships and reinforcing cycles of oppression.

In contrast, Claudia McTeer offers a form of resistance to internalized racism. As a child, she

questions why white dolls are considered beautiful and refuses to accept the belief that whiteness is inherently superior. Although she later recognizes the powerful influence of dominant cultural values, Claudia's critical perspective reveals that racist beauty standards are socially constructed rather than natural. Through her character, Morrison suggests that awareness and resistance are possible even within an oppressive society.

From the perspective of Black Feminist Theory, internalized racism particularly affects Black women because they experience both racial and gender discrimination. Their identities are shaped by cultural ideals that privilege whiteness while devaluing Black womanhood. Critical Race Theory further explains that these beliefs are not merely personal prejudices but products of institutional structures that normalize racial inequality. Psychoanalytic Theory helps interpret Pecola's psychological collapse as the consequence of prolonged emotional abuse, rejection, and the internalization of oppressive social values. The concept of intersectionality also reveals that Pecola's suffering is intensified by the combined effects of race, gender, poverty, childhood vulnerability, and family instability.

Ultimately, Morrison portrays internalized racism as a profound form of psychological violence. By persuading individuals to reject their own racial identity, it destroys self-esteem, fractures personal identity, and undermines mental well-being.

Pecola Breedlove's Psychological Trauma :

Pecola Breedlove's psychological trauma forms the emotional and thematic core of Toni Morrison's The Bluest Eye. Morrison portrays Pecola as an innocent Black girl whose mental deterioration results from the cumulative effects of racism, poverty, family violence, sexual abuse, and social rejection. Rather than presenting her suffering as an individual weakness, Morrison demonstrates that Pecola's psychological breakdown is the consequence of a society that systematically devalues Black identity and glorifies whiteness. Through Pecola's tragic story, the novel exposes the devastating impact of racial oppression on the mental health and self-perception of African American children.

From the beginning of the novel, Pecola is made to believe that she is ugly because she does not conform to the dominant Eurocentric standards of beauty. Surrounded by images that celebrate blue eyes, blonde hair, and white skin as symbols of beauty and virtue, she internalizes these ideals and develops a deep sense of inferiority. Her longing for blue eyes symbolizes not merely a desire for physical transformation but also a desperate hope for love, acceptance, and recognition. Morrison illustrates that the denial of beauty becomes the denial of humanity, leaving Pecola emotionally isolated and psychologically vulnerable.

Pecola's trauma is intensified by the dysfunction within her own family. Her parents, Pauline

and Cholly Breedlove, are themselves victims of racial discrimination and poverty, yet they are unable to provide the emotional security that Pecola desperately needs. Pauline's emotional detachment and preference for the white family she serves as a domestic worker deprive Pecola of maternal affection, while Cholly's unresolved trauma and destructive behaviour create an environment of fear and instability. The absence of love and protection reinforces Pecola's belief that she is unworthy of care and compassion.

The sexual assault committed by Cholly Breedlove marks the turning point in Pecola's psychological decline. Morrison presents this event as the culmination of multiple forms of oppression that have already shaped Pecola's fragile sense of self. Instead of receiving support and justice, Pecola is met with silence, disbelief, and social exclusion. The community's inability to protect or comfort her deepens her emotional isolation and contributes to her complete psychological disintegration. Morrison thereby reveals how personal trauma is inseparable from broader social failures and systemic injustice.

Psychoanalytic Theory provides a valuable framework for understanding Pecola's mental collapse. Continuous exposure to rejection, humiliation, and abuse creates overwhelming emotional conflict that she cannot process or overcome. As a coping mechanism, Pecola retreats into an imagined reality in which she believes she has finally acquired the blue eyes she has always desired. This imagined transformation reflects her desperate attempt to escape unbearable emotional pain and construct a new identity free from rejection. Morrison portrays this psychological fragmentation not as madness in isolation but as the tragic consequence of persistent violence and dehumanization.

Black Feminist Theory and Critical Race Theory further illuminate Pecola's experiences by demonstrating how race and gender intersect to produce unique forms of oppression. As a poor Black girl, Pecola occupies one of the most vulnerable positions within American society. She experiences discrimination not only from the dominant white culture but also from members of her own community who have internalized racist beauty ideals. Intersectionality reveals that her suffering cannot be explained by race alone; it is intensified by poverty, childhood vulnerability, gender inequality, and family instability. These overlapping systems of oppression contribute to the destruction of her identity and mental well-being.

Family Violence and Social Discrimination :

In The Bluest Eye, Toni Morrison demonstrates that family violence and social discrimination are deeply interconnected forces that contribute to the psychological suffering of African American children, particularly Pecola Breedlove. Morrison argues that violence within the family cannot be separated from the broader social conditions of racism, poverty, and inequality. Through the Breedlove

family's experiences, the novel reveals how systemic oppression creates cycles of emotional and physical abuse that profoundly affect individual identity and mental well-being.

The Breedlove household is characterized by instability, neglect, and violence rather than love and security. Pecola grows up in an environment where conflict, humiliation, and fear are part of everyday life. Her parents, Pauline and Cholly Breedlove, are themselves victims of racial discrimination and economic hardship, yet their unresolved trauma prevents them from providing emotional care for their daughter. Morrison illustrates that the absence of affection and protection leaves Pecola emotionally isolated and increasingly vulnerable to psychological harm.

Pauline Breedlove's character reflects the devastating effects of internalized racism and social discrimination. Influenced by Hollywood films and white middle-class ideals, she measures beauty and success according to Eurocentric standards. As a result, she becomes dissatisfied with her own appearance and gradually distances herself from her family. Pauline shows greater care and devotion to the white household where she is employed than to her own home, reinforcing Pecola's belief that she is unloved and unworthy. Morrison suggests that racial oppression not only damages individual identity but also weakens familial relationships and maternal bonds.

Cholly Breedlove's violent behaviour is similarly rooted in a history of racial humiliation and personal trauma. His childhood abandonment, experiences of racism, and emotional deprivation contribute to his inability to form healthy relationships. Morrison does not excuse Cholly's actions; rather, she situates them within a broader social context that exposes how systemic racism can distort human emotions and perpetuate cycles of violence. His abuse of Pecola represents the ultimate breakdown of familial responsibility and becomes the most traumatic event in her life.

Beyond the family, Pecola experiences persistent social discrimination. She is mocked by classmates, ignored by shopkeepers, and marginalized within her own community because of her appearance and poverty. White beauty standards shape these interactions, leading others to associate Blackness with ugliness and inferiority. Even members of the Black community unconsciously reproduce these prejudices, demonstrating how internalized racism strengthens systems of oppression. Morrison portrays discrimination as an everyday reality that gradually destroys Pecola's confidence and sense of belonging.

The novel also contrasts Pecola's experiences with those of Claudia and Frieda McTeer, whose family, despite financial hardship, provides emotional support and protection. Their parents teach them self-respect and resilience, enabling them to resist the damaging effects of racist beauty ideals. This contrast emphasizes Morrison's belief that love, care, and affirmation within the family can help challenge oppressive social values, even under difficult circumstances.

From the perspective of Black Feminist Theory and Critical Race Theory, family violence and social discrimination are interconnected manifestations of structural inequality. Intersectionality further reveals that Pecola's suffering is shaped by the combined effects of race, gender, class, and childhood vulnerability. Psychoanalytic Theory explains how repeated experiences of neglect, rejection, and abuse contribute to emotional fragmentation and psychological trauma.

Black Female Identity and Resistance :

In The Bluest Eye, Toni Morrison presents Black female identity as a complex and contested space shaped by race, gender, class, and cultural expectations. While the novel exposes the devastating consequences of internalized racism and Eurocentric beauty standards, it also highlights acts of resistance that affirm Black identity and challenge oppressive ideologies. Through the contrasting experiences of Pecola Breedlove, Claudia McTeer, Frieda McTeer, and Pauline Breedlove, Morrison demonstrates that Black female identity is not fixed but continually negotiated within a society structured by racial inequality.

Pecola Breedlove represents the tragic consequences of a society that denies Black girls the opportunity to value themselves. She internalizes the belief that whiteness is synonymous with beauty, goodness, and acceptance, leading her to reject her own racial identity. Her desire for blue eyes symbolizes her longing to escape the stigma attached to Blackness. Morrison illustrates that when oppressive beauty standards become internalized, they erode self-esteem, fragment identity, and ultimately destroy psychological well-being. Pecola's inability to resist these cultural ideals results in her emotional isolation and psychological collapse, making her a powerful symbol of the destructive effects of systemic racism.

In contrast, Claudia McTeer embodies resistance and the possibility of reclaiming Black identity. From an early age, Claudia questions why white dolls, blonde hair, and blue eyes are universally admired. Instead of accepting these values unquestioningly, she challenges the social construction of beauty and refuses to equate whiteness with superiority. Her rejection of dominant cultural ideals reflects an emerging critical consciousness that enables her to resist internalized racism. Through Claudia, Morrison suggests that identity can be preserved when individuals critically examine and reject oppressive social norms.

Frieda McTeer also contributes to Morrison's portrayal of Black female resilience. Together with Claudia, she displays compassion, solidarity, and emotional strength in her concern for Pecola. Their friendship demonstrates the importance of community, empathy, and mutual support in resisting the psychological effects of racial discrimination. Morrison emphasizes that collective care and shared experiences can provide a foundation for preserving dignity and affirming Black identity even

within oppressive social environments.

Pauline Breedlove presents a more complex representation of Black female identity. Influenced by Hollywood films and white middle-class values, she measures beauty and success according to Eurocentric ideals. Her admiration for whiteness leads her to reject aspects of her own identity and to distance herself emotionally from her family. Morrison does not portray Pauline simply as a victim or a villain; rather, she reveals how systemic racism distorts self-perception and damages maternal relationships. Pauline's character illustrates the long-term effects of internalized oppression on Black women's sense of self.

Black Feminist Theory provides an essential framework for understanding these diverse experiences. Scholars such as bell hooks and Patricia Hill Collins argue that Black women's identities are shaped by the intersection of race, gender, and class, requiring forms of resistance that affirm cultural heritage and self-definition. Morrison's female characters reflect this struggle as they negotiate oppressive beauty standards while seeking dignity, agency, and belonging. Claudia's resistance, in particular, exemplifies the Black feminist commitment to challenging dominant ideologies and redefining beauty from the perspective of Black experience.

The concept of intersectionality further demonstrates that Black female identity cannot be understood solely through race or gender. Pecola's experiences are intensified by poverty, childhood vulnerability, family instability, and social exclusion.

Discussion :

This study examined the psychological effects of white beauty standards in Toni Morrison's The Bluest Eye through the theoretical perspectives of Black Feminist Theory, Critical Race Theory, Psychoanalytic Theory, and Intersectionality. The analysis demonstrates that Morrison presents beauty as a socially constructed and racially coded concept that functions as an instrument of power and oppression. Rather than portraying beauty as an individual preference, the novel reveals how Eurocentric ideals are embedded within social institutions and cultural practices, shaping the identities, aspirations, and psychological well-being of African American women and girls.

The findings indicate that Pecola Breedlove's tragic psychological deterioration is not the result of personal inadequacy but the consequence of systemic racism, patriarchal oppression, and cultural exclusion. Her desire for blue eyes symbolizes the internalization of white beauty standards, reflecting a deep longing for acceptance, love, and social recognition. Morrison illustrates that when individuals are repeatedly told that they are unattractive, inferior, or unworthy because of their racial identity, these beliefs become internalized and gradually destroy their self-esteem and sense of self. Pecola's psychological collapse therefore represents the devastating effects of institutionalized racism

rather than individual failure.

The analysis also highlights the significant role of family violence and social discrimination in intensifying psychological trauma. Pauline Breedlove's acceptance of Eurocentric beauty ideals and Cholly Breedlove's unresolved emotional suffering contribute to an environment in which Pecola receives neither affection nor protection. Morrison demonstrates that racism damages not only individual identities but also family relationships, creating cycles of emotional neglect and violence. Furthermore, the rejection Pecola experiences from classmates, neighbours, and members of her own community reveals how internalized racism operates within everyday social interactions, reinforcing feelings of alienation and inferiority.

The theoretical framework employed in this study provides a comprehensive understanding of these experiences. Black Feminist Theory explains how race and gender intersect to shape the lives of Black women, while Critical Race Theory demonstrates that racism is embedded within cultural and institutional structures. Psychoanalytic Theory reveals how prolonged rejection, abuse, and emotional deprivation contribute to identity fragmentation and psychological breakdown. Intersectionality further shows that Pecola's suffering results from the combined effects of race, gender, poverty, childhood vulnerability, and family instability. Together, these theories reveal that the novel's central conflicts emerge from interconnected systems of oppression rather than isolated personal circumstances.

The discussion also underscores Morrison's presentation of resistance through the character of Claudia McTeer. Unlike Pecola, Claudia questions dominant beauty ideals and refuses to accept whiteness as the universal measure of beauty. Her resistance demonstrates that oppressive ideologies are socially learned and therefore can be challenged. Through Claudia's critical perspective, Morrison offers an alternative vision of Black identity founded on self-respect, cultural affirmation, and resistance to racial domination. Although Pecola's story ends in tragedy, Claudia's voice preserves the possibility of hope, awareness, and social transformation.

The findings of this study also resonate with contemporary debates concerning beauty, race, and mental health. Despite significant social progress, Eurocentric beauty ideals continue to influence media representation, fashion, advertising, and digital culture. Issues such as colourism, skin-lightening practices, hair discrimination, and unrealistic beauty expectations continue to affect the self-esteem and psychological well-being of many individuals.

Conclusion :

Toni Morrison's The Bluest Eye remains one of the most significant literary explorations of race, beauty, identity, and psychological trauma in African American literature. This study has examined

the psychological effects of white beauty standards through the interconnected perspectives of Black Feminist Theory, Critical Race Theory, Psychoanalytic Theory, and Intersectionality. The analysis demonstrates that Morrison critiques Eurocentric beauty ideals as powerful instruments of racial and gender oppression that shape individual identity and reinforce systemic inequality.

The findings reveal that Pecola Breedlove's tragic psychological disintegration is the result of multiple, intersecting forms of oppression rather than personal weakness. White beauty standards, internalized racism, family violence, poverty, sexual abuse, and social discrimination collectively contribute to her fractured sense of self. Morrison illustrates that the constant devaluation of Black identity produces profound emotional and psychological consequences, particularly for Black girls who are denied acceptance, love, and dignity. Pecola's longing for blue eyes symbolizes a desperate search for belonging in a society that equates beauty and worth with whiteness.

The study also demonstrates that Morrison's critique extends beyond the experiences of Pecola alone. Through characters such as Pauline Breedlove, Claudia McTeer, and Frieda McTeer, the novel presents diverse responses to racial oppression. While Pauline represents the damaging effects of internalized Eurocentric ideals, Claudia embodies resistance by questioning socially constructed definitions of beauty and affirming the value of Black identity. These contrasting experiences reinforce Morrison's argument that oppressive ideologies can be challenged through critical awareness, self-acceptance, and community support.

The application of Black Feminist Theory, Critical Race Theory, Psychoanalytic Theory, and Intersectionality provides a comprehensive understanding of how race, gender, class, and psychological trauma intersect within the novel. This interdisciplinary framework demonstrates that The Bluest Eye is not simply a story of individual suffering but a powerful critique of the structural forces that normalize racism and perpetuate inequality. Morrison reveals that psychological violence often operates through cultural values and social institutions, making resistance to oppressive beauty standards an essential step toward reclaiming identity and dignity.

Furthermore, the study confirms the continuing relevance of The Bluest Eye in the twenty-first century. Contemporary issues such as colourism, media-driven beauty ideals, racial stereotypes, and mental health continue to reflect many of the concerns Morrison addressed in her novel. Her critique of Eurocentric standards encourages readers to question dominant cultural narratives and to embrace more inclusive definitions of beauty that celebrate diversity rather than exclusion.

In conclusion, The Bluest Eye is both a profound literary achievement and a compelling social critique. Morrison exposes the psychological consequences of white beauty standards while advocating for the affirmation of Black identity, cultural pride, and human dignity. By examining the novel through

multiple theoretical perspectives, this study contributes to a deeper understanding of the relationship between beauty, race, and psychological trauma in African American literature. It also underscores the enduring significance of Morrison's work in contemporary literary scholarship and encourages further research on race, gender, identity, and mental health within diverse cultural contexts.

Works Cited :

- Christian, Barbara. Black Feminist Criticism: Perspectives on Black Women Writers. Pergamon Press, 1985.
- Collins, Patricia Hill. Black Feminist Thought: Knowledge, Consciousness, and the Politics of Empowerment. 2nd ed., Routledge, 2000.
- Crenshaw, Kimberli. "Demarginalizing the Intersection of Race and Sex: A Black Feminist Critique of Antidiscrimination Doctrine, Feminist Theory and Antiracist Politics." University of Chicago Legal Forum, vol. 1989, no. 1, 1989, pp. 139–167.
- Davis, Angela Y. Women, Race, & Class. Vintage Books, 1983.
- Fanon, Frantz. Black Skin, White Masks. Translated by Richard Philcox, Grove Press, 2008.
- Hooks, bell. Black Looks: Race and Representation. South End Press, 1992.
- Matus, Jill. Toni Morrison. Manchester University Press, 1998.
- McDowell, Deborah E. "The Self and the Other: Reading Toni Morrison's Sula and The Bluest Eye." Critical Essays on Toni Morrison, edited by Nellie Y. McKay, G. K. Hall, 1988, pp. 79–95.
- Morrison, Toni. The Bluest Eye. Vintage International, 2007.
- Peach, Linden. Toni Morrison. 2nd ed., Palgrave Macmillan, 2000.
- Rigney, Barbara Hill. The Voices of Toni Morrison. Ohio State University Press, 1991.
- Taylor-Guthrie, Danille, editor. Conversations with Toni Morrison. University Press of Mississippi, 1994.
- Willis, Susan. Specifying: Black Women Writing the American Experience. University of Wisconsin Press, 1987.

संगम Impact Factor : 7.834
Website : www.ginajournal.com
ISSN : 2321-8037
SANGAM
गीना देवी शोध संस्थान द्वारा प्रकाशित बहुभाषिक–बहुविषयक शोध को समर्पित अंतर्राष्ट्रीय मासिक
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY MONTHLY MULTI LANGUAGE
PEER REVIEWED REFEREED PRINT RESEARCH JOURNAL
Vol. 14, Issue 7-8
पृष्ठ : 243–259

अशोक के धम्म का स्वरूप

Vijay Singh
M.A., UGC-NET
Department of History, University of Rajasthan, Jaipur.

सारांश :

मौर्य सम्राट अशोक भारतीय इतिहास के उन शासकों में प्रमुख स्थान रखते हैं जिन्होंने शासन, नैतिकता और लोककल्याण को एक–दूसरे से जोड़ने का प्रयास किया। कलिंग युद्ध के पश्चात् अशोक के व्यक्तित्व एवं शासन–दृष्टिकोण में महत्वपूर्ण परिवर्तन आया। उसने हिंसात्मक विजय के स्थान पर "धम्म–विजय" को प्राथमिकता दी तथा प्रजा के नैतिक और सामाजिक कल्याण के लिए अनेक उपाय किए। अशोक का धम्म किसी संकीर्ण धार्मिक सिद्धांत अथवा मात्र बौद्ध धर्म का पर्याय नहीं था, बल्कि यह एक व्यापक नैतिक–सामाजिक आचार–संहिता थी। इसमें माता–पिता एवं गुरुजनों का सम्मान, जीवों के प्रति दया, सत्य, संयम, सहिष्णुता, धार्मिक सद्भाव, सेवाभाव और प्रजा–कल्याण जैसे मूल्यों पर बल दिया गया। अशोक के शिलालेख और स्तंभलेख उसके धम्म के स्वरूप को समझने के प्रमुख स्रोत हैं। प्रस्तुत शोध–पत्र में अशोक के धम्म की पृष्ठभूमि, प्रमुख विशेषताओं, उद्देश्यों, प्रशासनिक स्वरूप तथा तत्कालीन भारतीय समाज पर उसके प्रभाव का विश्लेषण किया गया है।

प्रमुख शब्द – अशोक, धम्म, मौर्य साम्राज्य, कलिंग युद्ध, धम्म–विजय, धार्मिक सहिष्णुता, लोककल्याण, शिलालेख।

प्रस्तावना –

भारतीय इतिहास में मौर्यकाल राजनीतिक एकीकरण, प्रशासनिक विकास तथा सांस्कृतिक उन्नति के लिए विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। मौर्य सम्राट अशोक का शासनकाल इस युग का सबसे उल्लेखनीय चरण माना जाता है। अशोक ने एक विशाल साम्राज्य पर शासन किया और अपने शासन को केवल राजनीतिक शक्ति के आधार पर संचालित करने के स्थान पर नैतिक मूल्यों से जोड़ने का प्रयास किया। अशोक के शासन की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता उसका धम्म था। कलिंग युद्ध के बाद अशोक ने हिंसा और सैन्य विजय की नीति से दूरी बनाते हुए नैतिक विजय को अपनाया। उसके अभिलेखों में धम्म को मानव के व्यक्तिगत और सामाजिक आचरण से संबंधित मूल्यों के रूप में प्रस्तुत किया गया है। अशोक का धम्म समझने के लिए यह ध्यान रखना आवश्यक है कि उसका उद्देश्य किसी एक धर्म का प्रचार करना नहीं था। उसने विभिन्न धार्मिक समुदायों के बीच सम्मान, सहिष्णुता और सद्भाव स्थापित करने पर बल दिया। इस दृष्टि से अशोक का धम्म प्राचीन भारत में नैतिक शासन और सामाजिक समन्वय का महत्वपूर्ण उदाहरण प्रस्तुत करता है।

शोध के उद्देश्य –

इस शोध–पत्र के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं :

1. अशोक के धम्म की अवधारणा को स्पष्ट करना।
2. अशोक के धम्म के निर्माण की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का अध्ययन करना।
3. धम्म के प्रमुख सिद्धांतों एवं विशेषताओं का विश्लेषण करना।
4. अशोक के धम्म और बौद्ध धर्म के संबंध को स्पष्ट करना।
5. धम्म के प्रशासनिक एवं सामाजिक पक्षों का अध्ययन करना।
6. अशोक की धम्म–विजय की नीति का मूल्यांकन करना।
7. भारतीय इतिहास में अशोक के धम्म की प्रासंगिकता का विश्लेषण करना।

शोध-पद्धति –

इस शोध–पत्र में मुख्यतः ऐतिहासिक एवं विश्लेषणात्मक शोध–पद्धति का प्रयोग किया गया है। अध्ययन के लिए प्राथमिक एवं द्वितीयक दोनों प्रकार के स्रोतों का उपयोग किया गया है। अशोक के शिलालेख, स्तंभलेख तथा अन्य अभिलेख प्राथमिक स्रोत हैं। इसके अतिरिक्त प्राचीन भारतीय इतिहास से संबंधित पुस्तकों, शोधग्रंथों और इतिहासकारों के विश्लेषण का उपयोग द्वितीयक स्रोत के रूप में किया गया है।

अशोक के धम्म की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि :

अशोक मौर्य सम्राट बिंदुसार का पुत्र था और लगभग तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व में मौर्य साम्राज्य का शासक बना। उसके शासनकाल में मौर्य साम्राज्य का विस्तार अत्यधिक व्यापक था। उसके शासन की प्रारंभिक नीति में साम्राज्य–विस्तार और राजनीतिक शक्ति का महत्वपूर्ण स्थान था। कलिंग युद्ध अशोक के जीवन का निर्णायक मोड़ सिद्ध हुआ। युद्ध में व्यापक जनहानि और विनाश को देखकर अशोक को गहरा पश्चाताप हुआ। उसके तेरहवें प्रमुख शिलालेख में कलिंग विजय के बाद हुए मानवीय कष्टों का उल्लेख मिलता है। इसके पश्चात उसने सैन्य विजय की तुलना में धम्म–विजय को अधिक महत्वपूर्ण माना। यह परिवर्तन केवल व्यक्तिगत धार्मिक परिवर्तन नहीं था, बल्कि उसने अशोक की शासन–दृष्टि को भी प्रभावित किया। इसके बाद उसके अभिलेखों में नैतिक जीवन, प्रजा–कल्याण, धार्मिक सहिष्णुता और अहिंसा जैसे विषय प्रमुखता से दिखाई देते हैं।

अशोक के धम्म का अर्थ :

'धम्म' शब्द संस्कृत के 'धर्म' का प्राकृत रूप है। किंतु अशोक के संदर्भ में इसका अर्थ किसी विशिष्ट धार्मिक संप्रदाय के सिद्धांतों तक सीमित नहीं था। अशोक का धम्म मुख्यतः नैतिक आचरण और सामाजिक उत्तरदायित्व पर आधारित था। इसमें व्यक्ति को अपने माता–पिता, गुरुजनों, मित्रों, संबंधियों तथा समाज के अन्य लोगों के प्रति उचित व्यवहार करने की शिक्षा दी गई। अशोक के धम्म में माता–पिता का सम्मान, गुरुजनों का आदर, वृद्धों के प्रति सम्मान, सेवकों एवं अधीनस्थों के प्रति उचित व्यवहार, प्राणियों के प्रति दया, सत्य एवं संयम, धार्मिक सहिष्णुता, आत्मसंयम, दान एवं लोकसेवा जैसे मूल्यों पर बल दिया गया। इस प्रकार अशोक का धम्म मूलतः व्यावहारिक नैतिकता का सिद्धांत था।

धम्म और बौद्ध धर्म का संबंध :

अशोक स्वयं बौद्ध धर्म से प्रभावित था और उसने बौद्ध धर्म के प्रचार–प्रसार को संरक्षण दिया। उसने बौद्ध

संघ को दान दिया तथा बौद्ध धर्म के प्रसार में सहायता की। इसके बावजूद अशोक का धम्म बौद्ध धर्म का समानार्थी नहीं था। बौद्ध धर्म में चार आर्य सत्य, अष्टांगिक मार्ग, निर्वाण, प्रतीत्यसमुत्पाद आदि विशिष्ट दार्शनिक एवं धार्मिक सिद्धांत हैं। इसके विपरीत अशोक के अभिलेखों में जिस धम्म का उल्लेख मिलता है, उसमें सामान्य नैतिक मूल्यों को अधिक महत्व दिया गया है। इसलिए अनेक इतिहासकार अशोक के धम्म को एक सार्वभौमिक नैतिक आचार–संहिता के रूप में देखते हैं, जिसे विभिन्न धार्मिक समुदायों के लोग स्वीकार कर सकते थे।

धम्म के प्रचार के उपाय :

अशोक ने अपने धम्म को जनता तक पहुँचाने के लिए अनेक उपाय किए।

शिलालेख एवं स्तंभलेख – अशोक ने अपने विचारों को शिलाओं और स्तंभों पर खुदवाया। ये अभिलेख उसके धम्म की जानकारी के सबसे महत्वपूर्ण ऐतिहासिक स्रोत हैं।

धम्म महामात्र – अशोक ने धम्म महामात्रों की नियुक्ति की। इन अधिकारियों का कार्य धम्म से संबंधित गतिविधियों को प्रोत्साहित करना तथा विभिन्न सामाजिक समूहों के कल्याण पर ध्यान देना था।

धम्म यात्राएँ – अशोक ने शिकार और मनोरंजन पर आधारित राजकीय यात्राओं की अपेक्षा धम्म यात्राओं को महत्व दिया। इन यात्राओं के दौरान वह लोगों से संपर्क करता और नैतिक एवं लोककल्याणकारी कार्यों को प्रोत्साहित करता था।

धम्म-विजय – अशोक ने सैन्य विजय के स्थान पर धम्म–विजय को प्राथमिकता दी। इसका अर्थ था– नैतिक प्रभाव, सद्भाव और मानवीय मूल्यों के माध्यम से लोगों का विश्वास प्राप्त करना।

अशोक के धम्म का राजनीतिक पक्ष :

अशोक का साम्राज्य विशाल और बहुजातीय था। इसमें विभिन्न भाषाओं, संस्कृतियों और धार्मिक परंपराओं के लोग रहते थे। ऐसी स्थिति में केवल सैन्य शक्ति के आधार पर साम्राज्य को स्थिर रखना कठिन था। धम्म ने सामाजिक समन्वय और राजनीतिक स्थिरता के लिए एक साझा नैतिक आधार प्रदान करने का प्रयास किया। धम्म के माध्यम से अशोक ने प्रजा और शासक के बीच संबंध मजबूत करने, विभिन्न धार्मिक समूहों में सहिष्णुता बढ़ाने, सामाजिक संघर्ष कम करने, प्रशासन को अधिक मानवीय बनाने, साम्राज्य में नैतिक अनुशासन स्थापित करने का प्रयास किया।

अशोक के धम्म का सामाजिक पक्ष :

अशोक का धम्म सामाजिक जीवन को व्यवस्थित करने का भी माध्यम था। इसमें परिवार, समाज और विभिन्न वर्गों के बीच उचित व्यवहार पर जोर दिया गया। उसने सेवकों और अधीनस्थों के साथ मानवीय व्यवहार, वृद्धों का सम्मान तथा धार्मिक समुदायों के प्रति सहिष्णुता को महत्व दिया। इस दृष्टि से अशोक का धम्म तत्कालीन समाज में नैतिक अनुशासन और सामाजिक एकता स्थापित करने का प्रयास था।

अशोक के धम्म की सीमाएँ :

अशोक का धम्म अत्यंत व्यापक था, फिर भी उसकी कुछ सीमाएँ थीं पहली, धम्म की अवधारणा काफी सामान्य और नैतिक थी। इसलिए इसके वास्तविक प्रभाव को मापना कठिन है। दूसरी, अशोक के बाद मौर्य साम्राज्य धीरे–धीरे कमजोर हुआ। इससे यह प्रश्न उठता है कि धम्म की नीति साम्राज्य की दीर्घकालिक राजनीतिक एकता को किस सीमा तक बनाए रख सकी। तीसरी, अशोक की व्यक्तिगत नीतियों और उसके

उत्तराधिकारियों की नीतियों में अंतर था। इसलिए उसके धम्म को मौर्य साम्राज्य के पतन का एकमात्र कारण मानना उचित नहीं है। मौर्य साम्राज्य के पतन के पीछे राजनीतिक, प्रशासनिक, आर्थिक और उत्तराधिकार संबंधी अनेक कारण थे।

अशोक के धम्म का मूल्यांकन :

अशोक का धम्म प्राचीन भारतीय राजनीतिक चिंतन में एक महत्वपूर्ण प्रयोग था। उसने शासन को नैतिकता और लोककल्याण से जोड़ने का प्रयास किया। उसकी सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि उसने किसी एक धार्मिक संप्रदाय को पूरे साम्राज्य पर थोपने के बजाय सामान्य नैतिक मूल्यों को महत्व दिया। धम्म में सहिष्णुता, अहिंसा, करुणा, सामाजिक उत्तरदायित्व और लोककल्याण जैसे तत्व आधुनिक लोकतांत्रिक एवं मानवतावादी मूल्यों से भी साम्य रखते हैं। हालाँकि आधुनिक अवधारणाओं को सीधे अशोक पर लागू करना ऐतिहासिक दृष्टि से उचित नहीं होगा। फिर भी उसके धम्म में मानवतावादी शासन की ऐसी प्रवृत्तियाँ दिखाई देती हैं जो भारतीय इतिहास में विशिष्ट स्थान रखती हैं।

निष्कर्ष एवं सुझाव –

अशोक का धम्म भारतीय इतिहास में नैतिक शासन की एक महत्वपूर्ण अवधारणा थी। यह न तो केवल व्यक्तिगत धार्मिक आस्था थी और न ही मात्र बौद्ध धर्म का राजनीतिक रूप। इसके केंद्र में मानवीय आचरण, सामाजिक सद्भाव, धार्मिक सहिष्णुता, जीव–दया और प्रजा–कल्याण जैसे व्यापक मूल्य थे। कलिंग युद्ध के बाद अशोक ने विजय की अवधारणा को पुनर्परिभाषित किया और सैन्य शक्ति की अपेक्षा धम्म–विजय को अधिक महत्व दिया। उसके शिलालेखों से स्पष्ट होता है कि वह प्रजा को नैतिक जीवन जीने के लिए प्रेरित करना तथा शासन को लोककल्याणकारी बनाना चाहता था। इस प्रकार अशोक का धम्म प्राचीन भारत में नैतिकता, शासन और लोककल्याण के समन्वय का एक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक प्रयोग था। इसकी सबसे बड़ी उपलब्धि धार्मिक सहिष्णुता और सामाजिक नैतिकता को राजकीय नीति का हिस्सा बनाना थी। भारतीय इतिहास में अशोक इसलिए केवल एक महान विजेता के रूप में नहीं, बल्कि एक ऐसे शासक के रूप में स्मरण किया जाता है जिसने विजय से अधिक मानवता और नैतिकता को महत्व देने का प्रयास किया।

संदर्भ ग्रंथ / References :

1. रोमिला थापर — *Ashoka and the Decline of the Mauryas*.
2. ए. एल. बाशम — *The Wonder That Was India*.
3. आर. एस. शर्मा – भारत का प्राचीन अतीत।
4. उपिंदर सिंह — *A History of Ancient and Early Medieval India*.
5. डी. डी. कोसांबी — *An Introduction to the Study of Indian History*.
6. एन. सी. ई. आर. टी. — *Themes in Indian History, Part I*.
7. अशोक के प्रमुख शिलालेख एवं स्तंभलेख।
8. मौर्यकालीन इतिहास से संबंधित विभिन्न पुरातात्त्विक एवं अभिलेखीय स्रोत।

Impact Factor : 7.834

ISSN : 2321-8037

Gina Shodh SANGAM

Peer Reviewed & Refereed Research Journal

International Journal of Literature, Arts, Culture, Humanities and Social Sciences

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 2018)

Publisher : Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

तालिका– 2

शैक्षणिक / शोध अंक की गणना हेतु विश्वविद्यालय और महाविद्यालय के शिक्षकों के लिए कार्यप्रणाली

(आकलन शिक्षकों द्वारा प्रस्तुत साक्ष्यों पर आधारित होना चाहिए, जैसेः प्रकाशनों की प्रति, परियोजना स्वीकृति पत्र, विश्वविद्यालय द्वारा जारी उपयोग तथा पूर्णता प्रमाण पत्र, पेटेंट दर्ज कराने संबंधी अभिस्वीकृति और स्वीकृति पत्र, विद्यार्थियों को पीएचडी उपाधि प्रदान किए जाने संबंधी पत्र इत्यादि।)

क्रम सं.	शैक्षणिक / शोध क्रियाकलाप	विज्ञान / अभियांत्रिकी / कृषि / चिकित्सा / पशु–चिकित्सा विज्ञान संकाय	भाषा / मानविकी / कला / सामाजिक विज्ञान / पुस्तकालय / शिक्षा / शारीरिक शिक्षा / वाणिज्य / प्रबंधन तथा अन्य संबंधित विधाएं
1	समकक्ष व्यक्ति समीक्षित अथवा विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा सूचीबद्ध पत्रों में शोध पत्र	08 प्रति पत्र	10 प्रति पत्र
2	प्रकाशन (शोध पत्रों के अतिरिक्त)		
	(क) लिखी गई पुस्तकें, जिन्हें निम्नवत के द्वारा प्रकाशित किया गया :		
	अंतर्राष्ट्रीय प्रकाशक	12	12
	राष्ट्रीय प्रकाशक	10	10
	संपादित पुस्तक में अध्याय	05	05
	अंतर्राष्ट्रीय प्रकाशक द्वारा पुस्तक का संपादक	10	10
	राष्ट्रीय प्रकाशक द्वारा पुस्तक का संपादक	08	08
	(ख) योग्य संकाय द्वारा भारतीय और विदेशी भाषाओं में अनुवाद कार्य		
	अध्याय अथवा शोध पत्र	03	03
	पुस्तक	08	08
3	आईसीटी के माध्यम से शिक्षण ज्ञान– अर्जन, शिक्षण शास्त्र और विषयवस्तु का सृजन तथा नए और नवोन्मेषी पाठ्यक्रमों और पाठ्यचर्या का विकास		
	(क) नवोन्मेषी अध्यापन का विकास	05	05
	(ख) नई पाठ्यचर्या और पाठ्यक्रमों को तैयार करना	02 प्रति पाठ्यचर्या / पाठ्यक्रम	02 प्रति पाठ्यचर्या / पाठ्यक्रम

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

www.bohalsm.blogspot.com grsbohal@gmail.com 8708822674 9466532152

PRINTED MATTER/PRINTING BOOK CLAUSE 121 (A) P & T GUIDE

गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी (रजि.)
द्वारा भिवानी (हरियाणा), काठमाण्डू (नेपाल) से प्रकाशित

ISSN : 2395-7115
Impact Factor : 8.642

बोहल शोध मंजूषा

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL MULTI DISCIPLINARY, MULTIPLE LANGUAGES
PEER REVIEWED, REFREED RESEARCH JOURNAL

Website :
www.bohalshodhmanjusha.com
Email : grsbohal@gmail.com

Editor :
Dr. Naresh Sihag, Adv.
M. : 8708822674, 9466532152

गीना देवी शोध संस्थान
द्वारा श्रीगंगानगर, (राजस्थान), पटियाला (पंजाब) व नेपाल से प्रकाशित

ISSN : 2321-8037
Impact Factor : 7.834

Gina Shodh SANGAM

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL

Website : www.ginajournal.com
Email : grngobwn@gmail.com
Office : 8708822674

Editor :
Dr. Rekha Soni, Vice Principal
Education, Tantia University
M. 9828531975

गिरधारीलाल घासीराम शोधपीठ
द्वारा नई दिल्ली, आगरा, गाजियाबाद एवं नेपाल से प्रसारित

ISSN : 2348-5639
Impact Factor : 6.521

SHODH SAMALOCHAN

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTERLY RESEARCH JOURNAL

Website : https://ginajournal.com/shodh-samalochan/
Executive Editor : Dr. Varsha Rani M. 9671904323
Managing Editor : Dr. Mukesh Verma M. 9627912535

Editor :
Dr. Naresh Sihag, Advocate
M. 8708822674

गिना प्रकाशन द्वारा
जयपुर, भिवानी एवं नेपाल से प्रसारित

ISSN : 2321-0540
Impact Factor : 5.621

KANCHANLATA

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES HALF YEARLY RESEARCH JOURNAL

Managing Editor :
Dr. Mukesh Verma
M. 9627912535

Editor :
Dr. Naresh Sihag, Advocate
M. 8708822674

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक गीना देवी शोध संस्थान भिवानी के लिए डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट ने मनभावन प्रिन्टर्ज भिवानी से छपवाकर कार्यालय #202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड, भिवानी-127021 (हरियाणा) से वितरित की।

ISSN 2321:8037

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate* of Publication for the paper titled

भारतेन्दु हरिश्चंद्र का हिंदी पत्रकारिता में योगदान : एक अंतर्दृष्टि

Authored by

डॉ. लविन्द्रसिंह लबाना

सह आचार्य, हिंदी विभाग,
गुजरात केन्द्रीय विश्वविद्यालय, बड़ोदरा।

Published in SANGAM ISSN : 2321-8037
Impact Factor 7.834, July-Aug. 2026,
Vol. 14, Issue 7-8, Part-3, Page No. 08-10

Director/Editor :
Dr. Rekha Soni

Secretary/Editor-in-Chief :
Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021
8708822674
9466532152
https://ginajournal.com/
grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate* of Publication for the paper titled

कृष्णा सोबती की कहानियों में नारी की संवेदना

Authored by

डॉ. रतिका पंचारपोईल कोट्टायी
सहायक आचार्य, हिंदी विभाग
श्री. नारायणा कॉलेज, कण्णूर, केरल।

Published in SANGAM ISSN : 2321-8037

Impact Factor 7.834, July-Aug. 2026,
Vol. 14, Issue 7-8, Part-3, Page No. 11-15

Director/Editor :
Dr. Rekha Soni

Secretary/Editor-in-Chief :
Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021
8708822674
9466532152
https://ginajournal.com/
grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL

UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate of Publication for the paper titled*

Problems in International Marketing of the Indian Leather Industry: A Study with Special Reference to European Union Countries

Authored by

Ritika Jindal, Author

Dr. Jyotsanna Lokhandde, Research Supervisor & Assistant Professor, Department of Commerce and Management, SHRI KHUSHAL DAS UNIVERSITY, HANUMANGARH, RAJASTHAN.

Published in SANGAM ISSN : 2321-8037

Impact Factor 7.834, July-Aug. 2026,

Vol. 14, Issue 7-8, Part-3, Page No. 16-28

Director/Editor :
Dr. Rekha Soni

Secretary/Editor-in-Chief :
Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

8708822674
9466532152

https://ginajournal.com/

grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate* of Publication for the paper titled

भारतीय राजनीति में सत्ता, धर्म और सामाजिक व्यवस्था वैदिक काल से समकालीन भारत तक एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

Authored by

कुमुदनी कश्यप, शोधार्थी
डॉ. जुल्फिकार, राजनीतिशास्त्र विभाग,
श्री खुशाल दास विश्वविद्यालय, हनुमानगढ़, राजस्थान।

Published in SANGAM ISSN : 2321-8037
Impact Factor 7.834, July-Aug. 2026,
Vol. 14, Issue 7-8, Part-3, Page No. 29-33

Director/Editor :
Dr. Rekha Soni

Secretary/Editor-in-Chief :
Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021
8708822674
9466532152
https://ginajournal.com/
grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate* of Publication for the paper titled

यशपाल के उपन्यासों में स्त्री-विषयक आयाम

Authored by

नेहा सक्सेना

शोधार्थी, हिंदी विभाग,
अलीगढ मुस्लिम विश्वविद्यालय।

Published in SANGAM ISSN : 2321-8037
Impact Factor 7.834, July-Aug. 2026,
Vol. 14, Issue 7-8, Part-3, Page No. 34-39

Director/Editor :
Dr. Rekha Soni

Secretary/Editor-in-Chief :
Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021
8708822674
9466532152
https://ginajournal.com/
grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate* of Publication for the paper titled

Raushanara Bagh Before Roshanara Garden

Authored by

Anjali Rajput
M.A (History),
University of Delhi.

Published in SANGAM ISSN : 2321-8037
Impact Factor 7.834, July-Aug. 2026,
Vol. 14, Issue 7-8, Part-3, Page No. 40-44

Director/Editor :
Dr. Rekha Soni

Secretary/Editor-in-Chief :
Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021
8708822674
9466532152
https://ginajournal.com/
grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate* of Publication for the paper titled

डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम के शिक्षादर्शन का वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में निहितार्थ

Authored by

सोमित सिंह, शोध छात्र (शिक्षा शास्त्र)

डॉ. कृपा शंकर यादव, असिस्टेण्ट प्रोफेसर, शिक्षक–शिक्षा विभाग

नेहरू ग्राम भारती (मानित विश्वविद्यालय), प्रयागराज।

Published in SANGAM ISSN : 2321-8037

Impact Factor 7.834, July-Aug. 2026,
Vol. 14, Issue 7-8, Part-3, Page No. 45-50

Director/Editor :
Dr. Rekha Soni

Secretary/Editor-in-Chief :
Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021
8708822674
9466532152
https://ginajournal.com/
grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate* of Publication for the paper titled

वेदों में राजा और सैन्य व्यवस्था

Authored by

डॉ. अश्वनी कुमार

सहायक आचार्य (अतिथि संकाय),
हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय, क्षेत्रिय केन्द्र, धर्मशाला।

Published in SANGAM ISSN : 2321-8037
Impact Factor 7.834, July-Aug. 2026,
Vol. 14, Issue 7-8, Part-3, Page No. 51-54

Director/Editor :
Dr. Rekha Soni

Secretary/Editor-in-Chief :
Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021
8708822674
9466532152
https://ginajournal.com/
grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate* of Publication for the paper titled

असगर वजाहत के नाटक 'फिरंगी लौट आए' में अभिव्यक्त सामाजिक यथार्थ

Authored by

सुचित्रा जे

शोध छात्रा,

महाराजास कॉलेज, एरणाकुलम।

Published in SANGAM ISSN : 2321-8037

Impact Factor 7.834, July-Aug. 2026,

Vol. 14, Issue 7-8, Part-3, Page No. 55-59

Director/Editor :
Dr. Rekha Soni

Secretary/Editor-in-Chief :
Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

8708822674
9466532152

https://ginajournal.com/

grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate of Publication for the paper titled*

KARMA SIDDHANTA IN AŚVAGHOṢA'S BUDDHACARITA

Authored by

Sharmila K Thankappan
Associate Professor, Department of Sanskrit,
Government Sanskrit College, Thiruvananthapuram, Kerala.

Published in SANGAM ISSN : 2321-8037
Impact Factor 7.834, July-Aug. 2026,
Vol. 14, Issue 7-8, Part-3, Page No. 60-65

Director/Editor :
Dr. Rekha Soni

Secretary/Editor-in-Chief :
Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021
8708822674
9466532152
https://ginajournal.com/
grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate* of Publication for the paper titled

गीतांजलि श्रीकृत माई में स्त्री-विमर्श

Authored by

वी उमारानी, पीएच.डी शोधार्थी,

डॉ. जी. नीरजा, सह प्राध्यापक,

उच्च शिक्षा और शोध संस्थान, दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास।

Published in SANGAM ISSN : 2321-8037

Impact Factor 7.834, July-Aug. 2026,
Vol. 14, Issue 7-8, Part-3, Page No. 66-69

Director/Editor :
Dr. Rekha Soni

Secretary/Editor-in-Chief :
Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021
8708822674
9466532152
https://ginajournal.com/
grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate* of Publication for the paper titled

योगिक ग्रन्थों में वर्णित भक्तियोग की वर्तमान समय में उपादेयता : एक समीक्षात्मक अध्ययन

Authored by

वंदना, शोध विद्यार्थी, योग विभाग,
डॉ. नारायण प्रकाश, प्रोफेसर, योग संकाय
एशियन इंटरनेशनल विश्वविद्यालय, इम्फाल, मणिपुर।

Published in SANGAM ISSN : 2321-8037

Impact Factor 7.834, July-Aug. 2026,
Vol. 14, Issue 7-8, Part-3, Page No. 70-78

Director/Editor :
Dr. Rekha Soni

Secretary/Editor-in-Chief :
Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021
8708822674
9466532152
https://ginajournal.com/
grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate* of Publication for the paper titled

भोजपुरी एवं बघेली लोकगीतों में प्रकृति–चित्रण : एक अध्ययन

Authored by

डॉ. नागेश कुमार त्रिपाठी

प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष संगीत विभाग

गौरी शंकर, शोधार्थी (संगीत)

शास. ठाकुर रणमत सिंह महाविद्यालय रीवा (म.प्र.)

Published in SANGAM ISSN : 2321-8037

Impact Factor 7.834, July-Aug. 2026,
Vol. 14, Issue 7-8, Part-3, Page No. 79-85

Director/Editor :
Dr. Rekha Soni

Secretary/Editor-in-Chief :
Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021
8708822674
9466532152
https://ginajournal.com/
grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate* of Publication for the paper titled

'एक पत्नी के नोट्स' उपन्यास में नारी जीवन का अंतर्द्वंद्व

Authored by

डॉ० रेणु देवी, सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग प्रभारी, रानी धर्म कुँवर राजकीय महाविद्यालय, दल्लावाला, खानपुर, हरिद्वार (उत्तराखंड)

डॉ० राम भरोसे, एसो० प्रो०
हिंदी विभाग प्रभारी, राजकीय महाविद्यालय, मंगलौर, हरिद्वार (उत्तराखंड)

Published in SANGAM ISSN : 2321-8037

Impact Factor 7.834, July-Aug. 2026,
Vol. 14, Issue 7-8, Part-3, Page No. 86-90

Director/Editor :
Dr. Rekha Soni

Secretary/Editor-in-Chief :
Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021
8708822674
9466532152
https://ginajournal.com/
grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate* of Publication for the paper titled

डांग एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

Authored by

दीपशिखा कुमारी

शोधार्थी,

पूर्णिया विश्वविद्यालय, पूर्णिया।

Published in SANGAM ISSN : 2321-8037

Impact Factor 7.834, July-Aug. 2026,
Vol. 14, Issue 7-8, Part-3, Page No. 91-97

Director/Editor :
Dr. Rekha Soni

Secretary/Editor-in-Chief :
Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021
8708822674
9466532152
https://ginajournal.com/
grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate* of Publication for the paper titled

प्रगतिवादी कविता में बदलता ग्रामीण समाज और लोक जीवन की अभिव्यक्ति

Authored by

डॉ. मरजीना, शोध पर्यवेक्षक एवं विभागाध्यक्ष, हिन्दी (कला संकाय)

रघुनाथ मेघवाल, शोधार्थी हिन्दी विभाग,

मौलाना आज़ाद विश्वविद्यालय, जोधपुर।

Published in SANGAM ISSN : 2321-8037

Impact Factor 7.834, July-Aug. 2026,
Vol. 14, Issue 7-8, Part-3, Page No. 98-101

Director/Editor :
Dr. Rekha Soni

Secretary/Editor-in-Chief :
Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021
8708822674
9466532152
https://ginajournal.com/
grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate* of Publication for the paper titled

प्राचीन भारत में मृत्तिका शिल्प

Authored by

मीनू यादव

शोधार्थिनी, प्राचीन भारतीय इतिहास एवं पुरातत्व विभाग,
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ।

Published in SANGAM ISSN : 2321-8037

Impact Factor 7.834, July-Aug. 2026,
Vol. 14, Issue 7-8, Part-3, Page No. 102-107

Director/Editor :
Dr. Rekha Soni

Secretary/Editor-in-Chief :
Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021
8708822674
9466532152
https://ginajournal.com/
grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate* of Publication for the paper titled

Potential Socio-Economic Impacts of an Induced War Between Neighbouring Countries on India

Authored by

Dr.Vinod Kumar Girder, Principal
Dr. Yograj Goswami, Assistant Professor,
Maharshi Dayanand B.Ed. College, Sri Ganganagar (Rajasthan)

Published in SANGAM ISSN : 2321-8037

Impact Factor 7.834, July-Aug. 2026,
Vol. 14, Issue 7-8, Part-3, Page No. 108-113

Director/Editor :
Dr. Rekha Soni

Secretary/Editor-in-Chief :
Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021
8708822674
9466532152
https://ginajournal.com/
grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate* of Publication for the paper titled

'एक कहानी यह भी' : संघर्ष के विशेष संदर्भ में

Authored by

Dr. Sanu Thomas

Assistant Professor,
Dept. of Hindi, Catholicate College, Pathanamthitta,
Kerala,Pin: 689645

Published in SANGAM ISSN : 2321-8037

Impact Factor 7.834, July-Aug. 2026,
Vol. 14, Issue 7-8, Part-3, Page No. 114-119

Director/Editor :
Dr. Rekha Soni

Secretary/Editor-in-Chief :
Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021
8708822674
9466532152
https://ginajournal.com/
grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate* of Publication for the paper titled

साहित्यिक पत्रकारिता के आलोक में पत्रकारिता का स्वरूप एवं अंतःसंबंध

Authored by

बबिता मौर्या

शोध छात्रा, हिंदी विभाग,
महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी।

Published in SANGAM ISSN : 2321-8037

Impact Factor 7.834, July-Aug. 2026,
Vol. 14, Issue 7-8, Part-3, Page No. 120-123

Director/Editor :
Dr. Rekha Soni

Secretary/Editor-in-Chief :
Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021
8708822674
9466532152
https://ginajournal.com/
grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate of Publication for the paper titled*

Preserving Tribal Cultural Identity and Customary Practices through PESA Gram Sabhas in Madhya Pradesh

Authored by

Ravi Verma, Research Scholar, School of Social Sciences, Devi Ahilya Vishwavidyalaya (DAVV), Indore, Madhya Pradesh, India

J.C. Sinha, Principal & Head, Department of Political Science, Pradhan Mantri College of Excellence, Shahid Chandra Shekhar Azad Government Post Graduate College, Jhabua, Madhya Pradesh, India.

Published in SANGAM ISSN : 2321-8037

Impact Factor 7.834, July-Aug. 2026,
Vol. 14, Issue 7-8, Part-3, Page No. 124-130

Director/Editor :
Dr. Rekha Soni

Secretary/Editor-in-Chief :
Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021
8708822674
9466532152
https://ginajournal.com/
grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate* of Publication for the paper titled

समकालीन समाज में परिवार और मानवीय संबंधों के बदलते स्वरूप का मूल्यांकन

Authored by

डॉ. बरखा घावरी

सहायक आचार्य, समाजशास्त्र,
राजकीय मीरा कन्या महाविद्यालय, उदयपुर, राजस्थान।

Published in SANGAM ISSN : 2321-8037

Impact Factor 7.834, July-Aug. 2026,
Vol. 14, Issue 7-8, Part-3, Page No. 131-136

Director/Editor :
Dr. Rekha Soni

Secretary/Editor-in-Chief :
Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021
8708822674
9466532152
https://ginajournal.com/
grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate* of Publication for the paper titled

आधुनिक टोटम के रूप में राष्ट्रीय ध्वज : भारतीय तिरंगे के माध्यम से सामूहिक चेतना और राष्ट्र-निर्माण का समाजशास्त्रीय विश्लेषण

Authored by

डॉ अंशु केडिया

प्राचार्या एवम प्रोफेसर समाजशास्त्र विभाग,
खुन खुन जी गर्ल्स पी जी कॉलेज, लखनऊ।

Published in SANGAM ISSN : 2321-8037

Impact Factor 7.834, July-Aug. 2026,
Vol. 14, Issue 7-8, Part-3, Page No. 137-142

Director/Editor :
Dr. Rekha Soni

Secretary/Editor-in-Chief :
Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021
8708822674
9466532152
https://ginajournal.com/
grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate* of Publication for the paper titled

Identification of the Buddha Footprint and the Kāṣāya-Robe Rock in the Mountain Spring Northeast of Gṛdhrakūṭa Vihāra : A Regional Archaeological Study in the Light of Xuanzang's Account

Authored by

Lalan Kumar Singh, Researchers & Lecturer, Department of Geography, P.M.S. College, Bihar Sharif, Nalanda, Bihar

Prince Kumar, Researcher and Explorer, M.A in Ancient Indian History & Archaeology, Patna University, Bihar.

Published in SANGAM ISSN : 2321-8037

Impact Factor 7.834, July-Aug. 2026,
Vol. 14, Issue 7-8, Part-3, Page No. 143-154

Director/Editor :
Dr. Rekha Soni

Secretary/Editor-in-Chief :
Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021
8708822674
9466532152
https://ginajournal.com/
grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate* of Publication for the paper titled

यात्रा साहित्य में मिश्रजी का योगदान

Authored by

डॉ. रोसी पी. वर्गीस

असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग,
कैथोलिकेट कॉलेज, पत्तनम्तिट्टा, केरल।

Published in SANGAM ISSN : 2321-8037

Impact Factor 7.834, July-Aug. 2026,
Vol. 14, Issue 7-8, Part-3, Page No. 155-157

Director/Editor :
Dr. Rekha Soni

Secretary/Editor-in-Chief :
Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021
8708822674
9466532152
https://ginajournal.com/
grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate* of Publication for the paper titled

सामाजिक परिवर्तन और राजनीतिक चेतना : समकालीन भारतीय समाज में सत्ता, पहचान और भागीदारी का समाजशास्त्रीय अध्ययन

Authored by

डॉ. अर्चना गोदारा, सहायक आचार्य, समाजशास्त्र,
राजकीय नेहरू मेमोरियल महाविद्यालय, हनुमानगढ़।

डॉ. अभिलाषा आबूसरिया, सह आचार्य, राजनीति विज्ञान,
राजकीय कन्या महाविद्यालय, झुंझुनूं।

Published in SANGAM ISSN : 2321-8037

Impact Factor 7.834, July-Aug. 2026,
Vol. 14, Issue 7-8, Part-3, Page No. 158-162

Director/Editor :
Dr. Rekha Soni

Secretary/Editor-in-Chief :
Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021
8708822674
9466532152
https://ginajournal.com/
grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate* of Publication for the paper titled

डॉ. मिथलेश अवस्थी की लघुकथा में कथ्यागत सौंदर्य

Authored by

डॉ. मिनाक्षी सोनावणे

सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभागाध्यक्षा
एल ए डी और श्रीमाती आर पी महिला महाविद्यालय, शंकरनगर
नागपूर, महाराष्ट्र.

Published in SANGAM ISSN : 2321-8037

Impact Factor 7.834, July-Aug. 2026,
Vol. 14, Issue 7-8, Part-3, Page No. 163-168

Director/Editor :
Dr. Rekha Soni

Secretary/Editor-in-Chief :
Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021
8708822674
9466532152
https://ginajournal.com/
grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate* of Publication for the paper titled

पंचायती राज व्यवस्था में अनुसूचित जाति की महिला जन प्रतिनिधि की भूमिका का विश्लेषणात्मक अध्ययन (सतना जिले के विशेष संदर्भ में)

Authored by

डॉ. रश्मि पाण्डेय

Published in SANGAM ISSN : 2321-8037
Impact Factor 7.834, July-Aug. 2026,
Vol. 14, Issue 7-8, Part-3, Page No. 169-178

Director/Editor :
Dr. Rekha Soni

Secretary/Editor-in-Chief :
Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021
8708822674
9466532152
https://ginajournal.com/
grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate* of Publication for the paper titled

बदलती पारिवारिक संरचना में वृद्धजनों की सामाजिक स्थिति : भारतीय समाज का समाजशास्त्रीय अध्ययन

Authored by

डॉ. गोल्डी चुटैल
सहायक प्राध्यापक (समाजशास्त्र)
शासकीय महाविद्यालय खजराना, इंदौर (म.प्र.)

Published in SANGAM ISSN : 2321-8037
Impact Factor 7.834, July-Aug. 2026,
Vol. 14, Issue 7-8, Part-3, Page No. 179-185

Director/Editor :
Dr. Rekha Soni

Secretary/Editor-in-Chief :
Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021
8708822674
9466532152
https://ginajournal.com/
grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate* of Publication for the paper titled

डोगरी क्हानियें च चित्रित परिवार : इक विश्लेशन
(सन् 1991 थमां 2000 तगर)

Authored by

डॉ. प्रीति बाला
उच्च शिक्षा विभाग, जम्मू

Published in SANGAM ISSN : 2321-8037
Impact Factor 7.834, July-Aug. 2026,
Vol. 14, Issue 7-8, Part-3, Page No. 186-188

Director/Editor :
Dr. Rekha Soni

Secretary/Editor-in-Chief :
Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021
8708822674
9466532152
https://ginajournal.com/
grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate* of Publication for the paper titled

औपनिवेशिक भारत में रेलवे का विकास : आर्थिक एकीकरण और साम्राज्यवादी नियंत्रण का ऐतिहासिक विश्लेषण

Authored by

श्रीमती माधुरी मालवीय
सहायक प्राध्यापक (इतिहास)
शासकीय महाविद्यालय खजराना, इंदौर (म.प्र.)

Published in SANGAM ISSN : 2321-8037
Impact Factor 7.834, July-Aug. 2026,
Vol. 14, Issue 7-8, Part-3, Page No. 189-195

Director/Editor :
Dr. Rekha Soni

Secretary/Editor-in-Chief :
Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021
8708822674
9466532152
https://ginajournal.com/
grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate* of Publication for the paper titled

पटना के प्रमुख इतिहासकार : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन

Authored by

हिमांशु कुमार, शोधार्थी,
प्रो.(डॉ.) अविनाश कुमार झा, शोध निर्देशक,
इतिहास विभाग, पाटलिपुत्र विश्वविद्यालय, पटना।

Published in SANGAM ISSN : 2321-8037
Impact Factor 7.834, July-Aug. 2026,
Vol. 14, Issue 7-8, Part-3, Page No. 196-203

Director/Editor :
Dr. Rekha Soni

Secretary/Editor-in-Chief :
Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021
8708822674
9466532152
https://ginajournal.com/
grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate* of Publication for the paper titled

नयी कविता और उसके तत्व

Authored by

डॉ. प्रणव शर्मा

हेमचंद यादव विश्वविद्यालय,
दुर्ग, छत्तीसगढ़।

Published in SANGAM ISSN : 2321-8037

Impact Factor 7.834, July-Aug. 2026,
Vol. 14, Issue 7-8, Part-3, Page No. 204-208

Director/Editor :
Dr. Rekha Soni

Secretary/Editor-in-Chief :
Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021
8708822674
9466532152
https://ginajournal.com/
grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate* of Publication for the paper titled

सांख्य तथा अद्वैत वेदान्त दर्शन में बन्धन और कैवल्य का अवलोकन

Authored by

अंशु भटनागर, शोधच्छात्रा

डॉ० मधु श्रीवास्तव, शोध निर्देशिका एवं एसोसिएट प्रोफेसर,
विभागाध्यक्ष, संस्कृत विभाग, एम०एम०एच० कॉलेज, गाजियाबाद (उ०प्र०)

Published in SANGAM ISSN : 2321-8037

Impact Factor 7.834, July-Aug. 2026,
Vol. 14, Issue 7-8, Part-3, Page No. 209-216

Director/Editor :
Dr. Rekha Soni

Secretary/Editor-in-Chief :
Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021
8708822674
9466532152
https://ginajournal.com/
grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate* of Publication for the paper titled

भारतीय कथा साहित्य में प्रकृति और मनुष्य का अंतर्संबंध : विभिन्न भारतीय भाषाओं की कृतियों के विशेष संदर्भ में

Authored by

डॉ. शबाब के. आर.

सहायक आचार्य, हिन्दी विभाग
जमाल मोहम्मद कॉलेज, त्रिच्ची, तमिलनाडु।

Published in SANGAM ISSN : 2321-8037

Impact Factor 7.834, July-Aug. 2026,
Vol. 14, Issue 7-8, Part-3, Page No. 217-223

Director/Editor :
Dr. Rekha Soni

Secretary/Editor-in-Chief :
Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021
8708822674
9466532152
https://ginajournal.com/
grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate* of Publication for the paper titled

उस्ताद रईस ख़ाँ की सितार वादन परंपरा, शैली एवं कलात्मक योगदान : एक गुणात्मक अध्ययन

Authored by

Prabhjot Kaur, Research Scholar
Dr. Ravjot Kaur, Associate Professor
Lovely Professional University.

Published in SANGAM ISSN : 2321-8037

Impact Factor 7.834, July-Aug. 2026,
Vol. 14, Issue 7-8, Part-3, Page No. 224-228

Director/Editor :
Dr. Rekha Soni

Secretary/Editor-in-Chief :
Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021
8708822674
9466532152
https://ginajournal.com/
grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate* of Publication for the paper titled

वंशावली के वाहक आदिवासियों के 'रावल महाराज, भुवो और खत्री'

Authored by

डॉ. सुरेन्द्रकुमार बी. बारीआ
असिस्टेंट प्रोफेसर, इतिहास विभाग
गवर्नमेंट आर्ट्स कॉलेज, शहेरा, पंचमहल गुजरात।

Published in SANGAM ISSN : 2321-8037

Impact Factor 7.834, July-Aug. 2026,
Vol. 14, Issue 7-8, Part-3, Page No. 229-232

Director/Editor :
Dr. Rekha Soni

Secretary/Editor-in-Chief :
Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021
8708822674
9466532152
https://ginajournal.com/
grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate of Publication for the paper titled*

A Study of the Cultural and Philosophical Significance of Meghaduta

Authored by

Dr. Dhani Jamod

Assistant Professor
Pandit Shambhunath Shukla University, Shahdol
(M.P.) 484001

Published in SANGAM ISSN : 2321-8037

Impact Factor 7.834, July-Aug. 2026,
Vol. 14, Issue 7-8, Part-3, Page No. 233-237

Director/Editor :
Dr. Rekha Soni

Secretary/Editor-in-Chief :
Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021
8708822674
9466532152
https://ginajournal.com/
grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate* of Publication for the paper titled

क्वांटम मैकेनिक्स और अद्वैत वेदांत का तुलनात्मक अध्ययन
(वास्तविकता, प्रेक्षण और चेतना के प्रश्नों का विश्लेषण)

Authored by

ध्रुव कुमार मिश्र, शोधार्थी
पंडित शम्भूनाथ शुक्ल विश्वविद्यालय,
शहडोल–484001

Published in SANGAM ISSN : 2321-8037

Impact Factor 7.834, July-Aug. 2026,
Vol. 14, Issue 7-8, Part-3, Page No. 238-242

Director/Editor :
Dr. Rekha Soni

Secretary/Editor-in-Chief :
Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021
8708822674
9466532152
https://ginajournal.com/
grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate* of Publication for the paper titled

The Psychological Effects of White Beauty Standards, Internalized Racism and the Quest for Identity in Toni Morrison's The Bluest Eye

Authored by

Shamama Bano, Research Scholar,
Dr. Manju Sharma, Guide,
Department of English, Bhagwant University Ajmer Rajasthan, Ajmer, Rajasthan.

Published in SANGAM ISSN : 2321-8037

Impact Factor 7.834, July-Aug. 2026,
Vol. 14, Issue 7-8, Part-3, Page No. 243-259

Director/Editor :
Dr. Rekha Soni

Secretary/Editor-in-Chief :
Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021
8708822674
9466532152
https://ginajournal.com/
grngobwn@gmail.com

गीना देवी शोध संस्थान
Gina Devi Research Institute

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL
UGC Valid Journal (The Gazette of India, Extraordinary Part III, Section 4, Dated July 18, 2018)

Run by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Certificate* of Publication for the paper titled

अशोक के धम्म का स्वरूप

Authored by

Vijay Singh

M.A., UGC-NET

Department of History, University of Rajasthan, Jaipur.

Published in SANGAM ISSN : 2321-8037

Impact Factor 7.834, July-Aug. 2026,
Vol. 14, Issue 7-8, Part-3, Page No. 260-263

Director/Editor :
Dr. Rekha Soni

Secretary/Editor-in-Chief :
Dr. Naresh Sihag, Advocate

*This Certificate is only Valid with the Presentation of the Research Paper/Topic.

202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021
8708822674
9466532152
https://ginajournal.com/
grngobwn@gmail.com